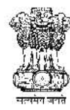


नोंदणी क्रं. एफ.१६०९४(मुंबई)





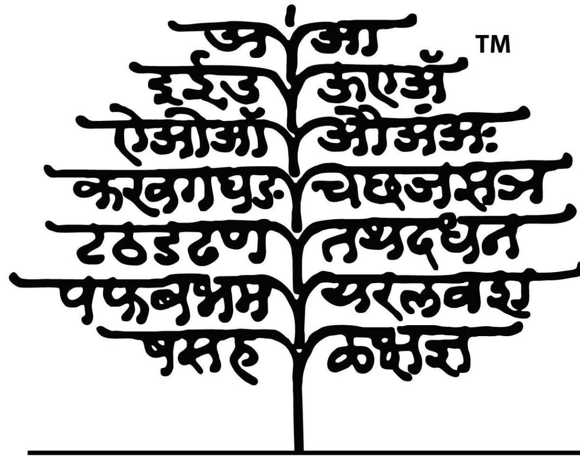
महाराष्ट्र शासन
मराठी भाषा विभाग
राज्य मराठी विकास संस्था
एल्फिन्स्टन तांत्रिक विद्यालय, ३, महापालिका मार्ग,
धोबीतलाव, मुंबई - ४००००१ दूरध्वनी : (०२२) २२६३१३२५ / २२६५३९६६
संकेतस्थळ https://rmvs.marathi.gov.in इ-पत्ता rmvs_mumbai@yahoo.com

निवेदन



अनुक्रमणिका





मराठीचा विकास : महाराष्ट्राचा विकास

राज्य मराठी विकास संस्थेद्वारे
संगणकीकृत

हिन्दी वार्षिक
मूल्य २ रु.

दीपावली

DIPAVALI 54

अनुक्रमणिका

सुदूर भावीके गर्भमें समाया सुख

आरोग्यसम्पन्न, सुपुष्ट और सानन्दी बनानेवाली

स्त्रियोंकी गर्भवती स्थितिमें आवश्यक अिकलौता टॉनिक

सुख प्रसूति-वटिका

और अन्य अिसी तरहकी मिश्र बारह क्षार औषधियाँ

- "सेल टॉनिक"—शक्तिक्षयपर अप्रतिम अुपयोगी।
- "प्रदर वटिका"—प्रदरकी कुल बीमारियोंके लिए गुणकारी इलाज।
- "अग्निमांद्यवटिका"—बदहजमी आदिकी शिकायतोंपर अक्सीर इलाज।
- "अँकडी वटिका"—फिटस् और अँकडीके निर्मूलनके लिए।
- "मधुमेह वटिका"—डायबेटीसपर नामी अुपचार।

(जानकारी पत्रक मँगाअिये)

स्थापना ई० स० १९११

वर्तमान प्रगति

नती है भावी का वैभव

श्री कृष्ण होमिओ फार्मसी

बारह क्षार और होमिओपाथिक औषधियोंके उत्पादक

मुख्य दफ्तर: २२ बुधवार, पूना २;

TOM & BAY LTD.

अनुक्रमणिका



राज्य मराठी विकास संस्थेद्वारे संगणकीकृत


दीनानाथ दलाल मेमोरिअल ट्रस्ट

अनुक्रमणिका

अनुक्रमणिका

अनुक्रमणिका



दीपावली के हिन्दी संस्करण का यह द्वितीय वर्ष !

इतनी स्वल्प बेलामें हिन्दी के साहित्य एवं कलाप्रेमी संसारने दीपावली के प्रति जो अनुराग प्रदर्शित किया है वस्तुतः वह जितना अकल्पित उतनाही प्रोत्साहनदायी है ।

विगत नौ-वर्ष मराठी-साहित्यकी सेवा तथा साहित्य एवं कला के सङ्गमको संयोजित करते हुए दीपावली अपने ऊँचे आदर्शके प्रति नित प्रामाणिक रही है ।

हिन्दी रीति कालीन प्रसिद्ध "शृङ्गार-नायिका" पर चित्रित चित्रमालिका इस अङ्क का प्रमुख आकर्षण है । इस चित्रमालिकाकी बढ़िया छपाइ के लिए "बॉम्बे फाइन आर्ट" के रसिक तथा कलाकार सञ्चालक सर्वश्री. भय्यासाहब, रामराव तथा डॉ. घोटे और रामनाथ मदन इनके प्रति कृतज्ञ है वैसेही अन्य छपाइ के लिए जय गुजरात प्रिंटिंग प्रेस, न्यू एज प्रिंटिंग प्रेस, मुम्बई, वैभव प्रेस, इनके भी हम आभारी हैं। हिन्दी और मराठी के ज्येष्ठ तथा श्रेष्ठ कलाकारोंने प्रदान किए हुए सहयोग का विशेष रूपमें निर्देश करनेकी आवश्यकता नहीं है। 'टॉम और वै' के श्री. गणेश ताम्बेजी के प्रति अपनी कृतज्ञता हम शब्दोंमें अंकित नहीं कर सकते हैं।

"दीपावली" के प्रारम्भ से हमारे सम्बन्धित सर्वश्री. श्री. स. दाभोलकर रा. ज. देशमुख, म. सु. देसाइ तथा शंकर कम्पनी के श्री. कडव के सहयोग के सम्मिलित फलस्वरूपमें यह प्रतिमा आपके सम्मुख प्रस्तुत हो रही है।

यह दीपावली एवं नूतन संवत्सर हमारे पाठकों, लेखकों, विक्रेताओं और विज्ञापनदाताओं को सुखसमृद्धिकारक हों।



साहित्य-कला सङ्गम १९५४

कलाकृतियाँ :

● शृङ्गारनायिकाऍं ● स्वाधीनपतिका ● प्रोषितपतिका ● वासकसज्जिका ● अभिसारिका ● विरहोत्कण्ठिता ● खण्डिता ● कलहान्तरिता ● विप्रलब्धा

और साहित्य

● विनोबा ● मैथिलीशरण गुप्त ● हजारीप्रसाद द्विवेदी ● यशपाल ● पु. भा. भावे ● रवीन्द्रनाथ ठाकूर ● साने गुरुजी ● इलाचंद्र जोशी ● ना. ग. गोरे ● सीताराम चतुर्वेदी ● भा. रा. ताम्बे ● नीरज ● ज. नी. कर्वे ● मामा वरेरकर ● वीरेन्द्र मोहन ● शान्ता ज. शेलके ● किशनचन्दर ● स. आ. जोगलेकर ● रतनलाल जोशी ● दुर्गा भागवत ● कार्तिकेय ● नरेंद्र शर्मा ● प्रभाकर माचवे ● श्यामू सन्यासी ● बेधड़क बनारसी ● बा. भ. बोरकर ● रामानन्द सागर ● एस्. एम्. जोशी ● महादेव शास्त्री जोशी ● वसन्त वन्हाडपाण्डे ● सरस्वतीकुमार दीपक ● शरु रांगणेकर ● शङ्कर शैलेन्द्र

: चित्रछपाइ :	: मुद्रण स्थल :	: प्रकाशन स्थल :
बॉम्बे फाइन आर्ट ऑफसेट ॲण्ड लिथो वर्क्स, बम्बई २७	**जयगुजरात प्रिंटिंग प्रेस** गांवदेवी बम्बई ७.	**दलाल आर्ट स्टुडिओ**, ४०/४२ केनेडी ब्रीज, बम्बई ४.

संपादक, प्रकाशक, मुद्रक : दीनानाथ दलाल — सहसंपादक : वि. धों. तेण्डुलकर, विजय पानसरे



अनुक्रमणिका



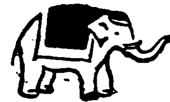
अशोक को जानते हो ?
विनोबाजीने एक किसानसे पूछा।
जवाब का मतलब ?

अशोक नामका पेड

" आप देख रहे हैं कि भूदान का विचार जबसे अपने देश में शुरू हुआ है तो आरम्भ में यह एक छोटी सी चीज़ दीख पड़ती थी। लेकिन अब वह विचार सारे हिन्दुस्थान में फैल गया है और शायद ही कोई ऐसा शहर हो जहाँ इसकी चर्चा न चलती हो। इस तरह देखते देखते यह विचार सब लोगों के लिये चिन्ता का विषय हो गया। जब कोई महान विचार आता है तो अकेला नहीं आता है। अपने साथ कई विचारों को लेकर आता है, सहकुटम्ब या सहपरिवार विचारों को साथ लाता है। नतीजा यह होता है कि ज़िन्दगी के सब विभागों में उससे चेतना आती है, नवजीवन का संचार होता है। बारिश का असर सारे प्राणी मात्र पर पड़ता है। नदियाँ बहने लगतीं हैं। नाले, तालाब या कुँए भर जाते हैं, झरने खुश हो जाते हैं, खेतों में जान आ जाती हैं, मोर नाचते है और मेंढक चिल्लाते हैं। बारिश के होने से कितनी प्रसन्नता, सब दूर कितना प्रमोद। यही हालत बड़े विचार की होती है। बारिष की जैसा उसका परिणाम होता है। जीवन के हर पहलू को वह छूता है। हरेक पर उसका असर होता है।

भूदन-यज्ञ शुरू हुआ। हमने उसमें क्या कहा ? यही कि जमीन की मालकी खतम। यह बेचने खरीदने की चीज नहीं हो सकती। अभी इस विचार पर पूरा अमल नहीं हुआ पर जमीन की पैसे वाली कीमत गिर गयी। पहले जो दाम थे उस से आधे दाम पर भी अब वह नहीं आती। हम कहते हैं कि चाहे आधे या कम दाम में खरीदने को कोई राजी क्यों न हो, यह गलत बात है। जमीन खरीदने की चीज नहीं, हक कि चीज़ है। अपने पास रखने की चीज़ नहीं, दान में देने की है। ज़मीन के बदले में एक कौड़ी भी नहीं मिलनी चाहिये। एक जगह हमसे कहा कि कि यहाँ ज़मीन बहुत महँगी है। हमने पुछा की कितनी? वह बोले, पाँच हजार। तो हमने जवाब दिया कि एक गढ़ा बनाओ फिर उसमें ५ हजार रु. डालो, फिर उसपर चार महिने पानी पड़ने दो कि देखो कि कितनी फसल आतीं है। तब पता चलेगा कि कौन चीज क्या है। अरे, मिट्टी की कीमत पैसे से करते हो? पैसा तो नासिक के प्रेस में छपतां है। जहाँ जमीनका मूल्य, 'पैसे'; खतम वहाँ आज का अर्थशास्त्र ही खतम।

पुराने सारे विचार मरने को है, वह खतम हो रहे हैं। यह विचार नहीं, अविचार हैं। यह तिलसवाली प्रथा भूदानके सामने नहीं टिक सकती है। और आप क्या समझते हैं कि भला यह हरिजन परिजन भेद चलेगा? हरिजनोंको जमीन दी जायेगी, वे खेती करेंगें फिर उनको कौन दबा सकता है। हाँ, प्रेमसे उनकी सेवा ली जा सकती है। दूसरे नागरिकोंकी बराबरी में अपना सिर ऊँचा करके हरिजन चलेंगे। और आप क्या समझते हैं। कि ऐसी बेदखलियाँ चलेंगी। अरे मजदूरों, जिस जमीनपर हमेशासे काश्त करते चले आये हों, उसपर डटे रहो। क्योंकि हम उस जमीनको नहीं छोड़ेंगे। ये बेदखल करनेवाले तुम्हारा क्या कर सकते है? हाँ, मारेंगे, पीटेंगे। लेकिन इससे उनके हाथ थकनेवाले है। द्रौपदी के वस्त्र दुःशासनने छीनना शुरू किया। आजकाल छीननेवाले बहुतसे लोग दीखते हैं। पर क्या ये दुःशासनकी बराबरी कर सकते हैं? हुआ क्या? दुःशासन थक गया। इसी तरह जब बाबा ने कह दिया कि जमीनपर डटे रहो तो क्या मजाल है, कि कोई बेदखल कर सके ये कहेंगे कि यह कागज पर लिखा है। अरे कागजसे क्या बननेवाले हैं। कागजको क्या चाटोगे। क्या दुनियाँमें आज जो धर्म और नीति है वह कागजके सहारे टिकी है? आज हटाने पर मजदूर हटता है क्योंकि उससे लगता है कि मारेगें, पीटेंगे। अरे, इससे क्या होगा? लोगोंने तो बाबा को भी बैद्यनाथधाममें पीटा था। पीटना क्या,



कामना

जगमग दीपावली चतुर्दिक
पर भीतर है वही अमा
माँ, मेरे अन्तस्तल में भी
अपनी आभा आज रमा

—मैथिलीशरण गुप्त

पुण्य प्रहार है। क्या हमारी आत्मा झुकेगी? लेकिन हम अपने हक पर डटे रहेंगे। पर आपको हाथ नहीं लगायेंगे, आप दूर कर्षत है। भाइयो, भूदान का काम जरा जोरोंसे चलने दो, ये बेदखलियाँ आपसे खतम। जमीन का मालिक अब कोई नहीं।

मालिक सिर्फ वह एक। हम सिर्फ मालिक को पहचानते है। राजा राम राम राम। दिल्लीमें महाराजा युधिष्ठिरसे लेकर आज तक कितने राजाओं की उथल देखी। लेकिन उन्हें कौन जानता है? दिल्ली के पास ही हमने एक किसान से पूछा कि क्या सम्राट 'अशोक' को जानते हो? तो उसने जवाब दिया कि हाँ 'एक पेड़ का नाम' है। राजाओं का जमाना अब चला गया। अंगरेज कैसे गये? कहने पर से मंत्रका परिणाम। ऋषि की वाणी से निकाले मंत्र का परिणाम होता ही है इस वास्ते यह मंत्र भी है—जितने मालिक है उनकी मालकियत खतम। आज तो छठा हिस्सा देने में भी कुछ हिचकिचि है लेकिन ना नहीं कहते। अरे जिस जमीन का हिसाब भी तुम्हारे पास नहीं है उसे क्यों रखे हुये हो? इसलिये जहाँ मंत्र चला वहाँ बेदखली का सवाल टिक ही नहीं सकता। डरने की जरूरत है। धमकाने पर अगर डर गये तो जुल्मों की विजय हो जायेगी। हम तो यह कहने कि हिम्मत चाहिये कि शरीर के साथ जो करो हम हटनेवाले नहीं है। इसलिये बाबा कहता है कि भूदान-यज्ञ एकाकी चीज नहीं है।

भूदान में जो जमीन ली जायेगी तब क्या सम्पत्तिवालों की सम्पत्ति सुरक्षित रहेगी? अरे जेब में देख लो कि कितनी है क्यों कि देना पड़ेगा। ऐसा नहीं हो सकता कि जमिनवाले की जमीन ली जाये और बाकी पहले जैसे बने रहे। यह आन्दोलन सर्वांगी है। हरेक को देनाही है। व्यापारी हो या डाक्टर, मुनीम या प्रोफेसर, मंत्री हो या नेता,

खोचनेवाला हो या तांगेवाला,' हरेक को देना है। भूदान यज्ञसे क्या क्या निकलने जारहा है? यह वट वृक्ष है। इससे पुराना जीवन ही बदलनेवाला है। प्रेम तो खूब बढ़ेगा। लेकिन आज जो प्रेमका ढोंग चल रहा हैं—मजदूर सामने झुकते है पर पीछे गाली देते है—वह नहीं चलेगा। सब मिलकर काम करेंगे, खायेंगे खेलेंगे और गायेगें। बराबरी का नाता होगा, दर्जोंका फरक न चलेगा। सज्जनके सामने झुकेगें पर दबेगें नहीं। दबू वाली बात न चलेगी। जिसकी लाठी उसकी भैंसवालीं चीज अब खतम्। तो भाईयो, अगर आप लीडर बनेगें तो ये सब देखते देखते होनेवाला हैं। तुम्हारी तरफसे हम भूमि का हक माँग रहे हैं। दुर्योधनने हकके तौर पर सूईकी नोंक बराबर जमीन देनेसे इनकार किया। इसके कारण महाभारत हुआ। तो हमें क्यों मिलती है? हम कहते हैं कि वह जमाना बालकृष्ण का था और यह जमाना कालकृष्ण का है। इसके आगे कौन टिकेगा। बुद्ध भगवानको श्रावस्तीमें उतनी ही जमीन मिली जितनी पर लोगोंने अशरफयाँ बिछाकर दी। उसी श्रावस्तीमें बाबा को सौ एकड़ जमीन मिलीं। तो क्या बाबा उस बुद्ध भगवानसे भी बढ़ गया वह तो उनके चरणरज के लायक भी नहीं है। लेकिन काल पुरुष अपना काम कर रहा है और हम निमित्त मात्र है। इसवास्ते इस जमीन वालों कहते है कि आप भी निमित्त बन जाइये। जमीन तो जानेवाली है। उस नाटक में ईश्वर का औजार बनकर हिस्सा लींजिये। पुण्य मुफ्तमें हासिल होगा।

जमीन जो उदारतासे दे देगें उनकी इज्जत होगी, शौकत बढ़ेगी। बाकी पछतायेंगे। इस वास्ते जो जमीनकी माँग है उसके साथ सारा



आकाश पुरुष

बार बार आकाशपुरुष आए कुटिया के द्वारे!
एक बार भी कहा न मिट्टी ने, प्रभु, भले पधारे!
किया न उठकर आदर, आए अन्तारिक्षके स्वामी!
पहचाना भी नहीं खड़े थे सन्मुख अन्तर्यामी!
पौढी रही तिमिर का चादर ओढे, पाँव पसारे!
चिर परिचित के प्रति वह निपट अपरिचित रही अयानी
आकर चले गए अभ्यागत, मिट्टी तब पहचानी,
जब कि कंटकाकीर्ण पंथमें हँसे शूल हत्यारे!
फूल चढ़ाना भूल, शूल पर चढ़ा दिए अवतारी
मिट्टी के पुतले युग युगसे बने रहे अविचारी!
मिट्टी के कारण प्रदीप के चरण रहे अँधियारे!
बार बार बलिदान लिया, पर मिट्टी नहीं अघाई!
मिट्टी की निष्ठुरता निशि-दिन अधिक अधिक अधिकाई!
भूल गई मृण्मयी, प्राण मिट्टी को नहीं विसारे!
आए तब पहचान न पाई उनकी पैछर सुन के!
चरण नहीं, वह चरणाचिह्न ही रही पूजती उनके!
नयन अभागे मुँदे रहे, जब जागे भाग हमारे!
कभी न कहती मिट्टी—आओ, अन्तरतम के वासी!
नयन-प्रसून बिछाए चरणोंमें, चरणों की दासी!
जागी भी तो कब जागी, जब प्रियतम दूर सिधारे!
जाने अब कब आएंगे फिर आहत अन्तर्यामी?
कब दो चिन्मय चरणों के दो दृग होंगे अनुगामी?
कब आकाश पुरुषके शिर पर नहीं चलेंगे आरे?
लपट बनेगी कब यह मिट्टी, उठ कर गले लगेगी?
टूटेंगी हथकडी-बेड़ियाँ कब मृण्मयी जगेगी?
आएँगे आकाशपुरुष कब मिट्टीका तन धारे?

● ● ●

—नरेन्द्र शर्मा

अनुक्रमणिका

ढाँचा ही वदलना है। सम्पत्ति के साधनोंमें फर्क पडेगा। कोई न कह सकेगा कि वह इतनी सम्पत्तिका मालिक है। सरकारने क्या किया है? मरने पर टैक्स लगाया है। आपके मरने के बाद आपकी जायदाद या सम्पत्तिका कुछ हिस्सा सरकार लेगी। लोगोंने इससे वचने की युक्तियाँ ढूंढ निकाली हैं. पर कुछ न कुछ तो सरकारको मिल ही जायेगा। अरे भाई, मरने के बाद जब सम्पत्ति जानेवाली है तो पहले ही क्यों न दे दो? सब का आशीर्वाद हासिल होगा और सभीको खुशी होगी। पर अगर जीते जी नहीं देते हो तो गरीब लोग मरने की राह देखेंगे और मृत्युकी वासना करेंगे। दूसरे हमारी मृत्यु की वासना करें, क्या, यह अच्छी बात है?

इसलिये प्रेमपूर्वक धर्म कार्य करें तो इज्जत रहेगी। जब भूमिपर किसी की मालिकी नहीं रहेगी तो क्या यह बात सम्पत्ति पर लागू नहीं होगी? आज हर चीज का पैसे में दाम किया जाता है जमीन हो, या कोई चीज हो। यहाँ तक की लड़के का भी पैसे में दान किया जाता है। हर चीज का मोल पैसे में—जो निकम्मी चीज हैं। पैसे की प्रतिष्ठा व्यर्थ में बना रखी हैं। जिनके पास सारी सम्पत्ति है वे भिखारी कहलाते है और जिनके पास कुछ भी नहीं है वे बड़े बनते है। साम्यवादी कहते हैं कि अमीरोंसे सम्पत्ति छीन ले। अरे श्रीमानों के पास है ही क्या? जो कुछ है वह मजदूर के पास। लेकिन ये मजदूर परावलम्बी हो गये हैं। इसलिये अपनी सब चीजें बेच कर जरूरत का सब सामान इन्हें खरीदना पड़ता है। इस वास्ते पैसे परभरोसा हो गया है और ये पैसेवाले के पंजेमें आगये। नतीजा यह है कि जो बिल्कुल दरिद्री है वे श्रीमान बने है। नासिक का प्रेस उनके हाथ में है। पीले पत्थर सोना, नीले पत्थरको हीरा और कागजके टुकड़ोंको नोट कहकर पूजते हैं। असली सम्पत्ति तो श्रमिकोंके पास है। पैसेको पटक देना है! भूदान-यज्ञसे जीवन का परिवर्तन होनेवाला है।

आज कुछ अमेरिकन हमसे मिलने आये। उन्होंने पूछा कि भूदान यज्ञ का समाजपर क्या असर होनेवाला है। थोड़ेमें हमने उनको बताया पर यहाँ विस्तारसे आपके सामने रखा। ये देश विदेशके लोग यहाँ क्या देखने आते हैं। वे यही देखते है कि यह काम नैतिक शक्तिसे किस तरह हो रहा है। अगर नैतिक शक्तिसे हम अपने आर्थिक और सामाजिक मसले हल कर लेते हैं तो सारी दुनियाको इससे प्रेरणा मिलेगी। और अहिंसाकी महिमा प्रकट होगी। आखिरमें हम आपसे कहना चाहते हैं कि बेद-खलीके सामने झुकना नहीं चाहिये। हिम्मतके साथ खड़े रहना है। आप देखेंगे कि भूदान-यज्ञकी सफलता बेदखालियाँ बन्द हो जायगी।

बनदाह (मुजफ्फरपुर)
प्रवचन तिथि : ५ अगस्त १९५४

● ●





अनुक्रमणिका

अनुक्रमणिका





अनुक्रमणिका





चिता से अग्नि की लपटें उठती हैं—
शरीर जल रहा है—
परन्तु मुँहसे 'आह' या—
'उफ्' नहीं—
महान्,
आदर्श—



पतिव्रता

— यशपाल

काफी कम आयु में जब अभी सुमति तीसरी चौथी कक्षा में पढती थी उसे अपने नाम की जिम्मेवारी और गर्व अनुभव होने लग गया था। पढ़ने लिखने में वह तेज समझी जाती थी। तभी उसकी महत्त्वाकांक्षा बन गयी थी कि पाठशाला में पढानेवाली दीदी की तरह खूब पढ लिखकर पाठशाला में पढाने काम किया करेगी। उसका भी खूब आदर होगा।

सुमति दसवीं कक्षा में पहुंची तो अपने भविष्य की कल्पना के सम्बन्ध में परिवर्तन आ गया अनुभव किया कि, स्कूल में मास्टरनी का चाहे जितना रोब और दबदबा हो, स्कूल में चाहे जिस लडकी को चांटा मार ले या डांट डपट ले, स्कूल से बाहर बड़े लोगों की दुनिया में मास्टरनी का स्थान बहुत ऊँचा नहीं माना जाता। सुमति के पिता अच्छी स्थिति के ठेकेदार थे। ढंग आधुनिक और विचार भी उदार। माँ भी पढी लिखी थी परन्तु स्कूल की मास्टरनियों को कुछ ऐसा वैसा ही समझती थी। एक दिन सुमति के मुख यह सुनकर कि लड़की पढ-लिखकर मास्टरनी बनना चाहती है। उन्होंने लाड़ में भौंवें चढाकर डाँट दिया। हट पागल! हाय तू क्यों मास्टरनी बनेगी "राजा रईस के घर मेरी लड़की का ब्याह होगा। अपने घर परिवार में राज करेगी...।"

सुमति ने माँ के सामने तो मचलकर ये ही कहा कि वह खूब पढेगी खूब पढेगी ब्याह नहीं करेगी परन्तु तब से कुछ और भी सोचने लगी। उसने नल-दमयंती, सावित्री-सत्यवान और सती सीता, मंदालसा की कहानियाँ पढ़ी थी। कभी कभी सोचने लगती कि सती और पतिव्रता का आदर क्या कम होता है? इतिहास में जैसे महाराणा प्रताप और राणा साँगा का नाम है, वैसी ही जौहर करनेवाली पद्मिनी का और सीता और सावित्री का क्या नहीं? गृहस्थ जीवन की अन्य बातों का विशेष परिचय सुमति को उस समय नहीं था परन्तु पतिव्रत धर्म का अर्थ तो मालूम हो चुका था। सुमति अपने भावी पति के प्रति चरम निष्ठा और पतिव्रत धर्म निबाहने के स्वप्न देखने लगी। सोचती: 'किसी स्त्री के पूर्ण पतिव्रता और महान् सती होने का प्रमाण तो पति के मर जाने पर और स्त्री के चितारूढ होकर सती हो जाने से ही मिल सकता है।' सुमति-तेरह चौदह वर्ष की आयु में कल्पना करने लगती कि 'वह विधवा हो गयी है। बड़े भारी समारोह से वह अपने मृत पति के शव के साथ

अनुक्रमणिका

श्वेत वस्त्र पहने चिता पर बैठी है। चिता से अग्नि की लपटें उठ रही हैं। उसकी श्वेत साडी के साथ उसका शरीर भी जल रहा है परन्तु उसके मुख से कोई 'आह' या 'उफ' नहीं निकल रही। वह मूर्तिवत् निश्चल बैठी भस्म हो जाती है। उसके बाद उसकी चिता के स्थान पर श्वेत पत्थर का बडा भारी स्मारक बन जायगा और स्त्रीपुरुष सती सुमति ' की जय ' पुकार कर उसके स्मारक की पूजा करेंगे। स्कूल की लड़कियों की पुस्तक में 'सती सुमति' की कहानी छप जायगी। उस समय अपनी कक्षा की या दूसरी किसी लड़की के सम्बन्ध में लड़कों के साथ उच्छृंखलता या शरारत की कोई बात सुमति सुन पाती तो ऐसी लड़कियों के प्रति उसे बहुत घृणा अनुभव होती।

सुमति की योग्यता के कारण उसके माता-पिता को अपनी पुत्री के कक्षा में प्रथम आने का गर्व अनुभव होता था। इसलिए उसके बीस वर्ष की आयु में बी. ए. पास कर लेने तक उन्होंने उसके विवाह के सम्बन्ध में कोई जल्दी आवश्यक नहीं समझी। ये भी तसल्ली थी ही कि ऐसी लड़कियाँ हैं ही कितनी! ऐसी योग्य लड़की के लिए वर पा लेना कठिन क्यों होगा? उसकी उन्नति के मार्ग में रुकावट क्यों डाली जाये!

एम. ए. में पढते समय सुमति को सती होने की बाल सुलभ कल्पनाएँ भूल चुकी थी। अब सुमति की भावना और कल्पना में विवाह का अर्थ सुन्दर कीमती कपड़े और जेवर पहन कर भय और लज्जा से सिकुडते हुए पिता द्वारा किसी लड़के के हाथ में सौंप दिया जाना नहीं रह गया था। अब वह विवाह को दो प्राणियों के अगाध प्रेम के आधार पर जीवन का सहयोग समझने लगी थी। ऐसे प्रेम की कल्पना ने उसके मन में पुलक और माधुर्य की स्फुरन भी कई बार पैदा की। ऐसे प्रेम के योग्य पात्र भी उसे जीवन के पथ पर दूर दूर चलते दिखाई दिये। परन्तु अपना प्रेम अंजली में लेकर अर्पण करने या उनके प्रेम की भीख मांगने वह कैसे चली जाती? आत्म सम्मान की धारणा से वह संयत बनी रही। धैर्य से प्रतीक्षा के अतिरिक्त कोई चारा नहीं था। अब सुमति को उसके योग्य सम्मानित शासक वर्ग का अथवा विद्वान और धनवान वर तो जीवन के पथ पर जब आ जायगा तब आयगा फिलहाल उसे एम. ए. की परीक्षा सम्मानपूर्वक पास करके लड़कियों के कालिज की प्रोफेसर का पद पाने योग्य तो हो ही जाना चाहिये।

सुमति को लड़कियों के कालिज में प्रोफेसरी करते छः वर्ष बीत चुके थे। जीवन के सागर में प्रेम का दुर्दम ज्वार आने की और उस ज्वार में जीवन की नैया किसी माँझी के हाथ समर्पण कर देने की उमंग बैठती जा रही थी। जीवन के सागर में प्रणय का द्वीप खोजने के लिए दौडने वाली कल्पना की नाव के पाल में भरी उमंगों की वायु एकान्त में छूटे दीर्घनिश्वासों से निकल चुकी थी। अपना जीवन सम्मान सहित निर्वाह कर सकने की प्रकट सफलता के आवरण में स्त्री-जीवन की असफलता के अपमान की चुभन ने एक शैथिल्य सिर पर लाद दिया था। इस बोझ के कारण घर बार और संतान का बोझ संभाले अपनी पुरानी सहेलियों और सहपाठिनों के सामने सिर ऊँचा न हो पाता था। माता-पिता के सुमति को लड़की पुकारते रहने पर भी समाज और लोग-बाग की आँखों में वह औरत हो गयी थी। सुमति के अब भी अपने कौमार्य की पवित्रता के एलान में दो चौटियां करने पर लोगों के होठों पर मुस्कान आ जाती। इस विद्रूप से खिन्न होकर सुमति ने अपनी दोनों चोटियों को जूडे के रूप में लपेट लेना शुरु कर दिया।

सुमति से भी अधिक मन मर गया था सुमति के माता-पिता का। अपनी लड़की के लिए कम उम्र में ही वर ढूंढ कर उसका विवाह न कर देने के लिये वे अपनी बेटी और समाज के सामने अपराधी अनुभव कर रहे थे। अब उन्हें दिखाई दे रहा था कि योग्य लड़कियों की अपेक्षा योग्य लड़कों की ही कमी कितनी अधिक हैं। ऐसी घटाटोप निराशा में सुमति की माँने अपने भाई के सुझाव के सम्बन्ध में कई दिन तक पति से परामर्श करने के बाद बहुत सहमते-सकुचाते सुमति से बात की कि तेरह बड़ी-बड़ी मिलों के मालिक, देश प्रसिद्ध और मान्य सेठजी ने अपनी दूसरी पत्नी की मृत्यु के चार वर्ष के बाद उससे विवाह करने की इच्छा प्रकट की है। सेठ जी की आयु भी केवल पैंतालीस के लगभग थी परन्तु असली चीज़ तो स्वास्थ्य होता है; सेठजी के दो छोटे-छोटे बच्चे दूसरी पत्नी से थे और बचपन के विवाह की देहाती अनपढ़ पत्नी भी थी परन्तु उनके लिये पृथक् घर थे। मानों सेठजी के कई संसार थे। साधनों का अभाव न होने पर उनके अनेक संसार स्वतंत्र रूप से निर्विघ्न चल सकते थे, जैसे एक सूर्य के चारों और अनेक भूगोल घूमते हैं।

माँ की बात से सुमति को ऐसा धक्का लगा कि सिर चकरा कर आंखें मुंद गयी। अपने आपको सम्भाल न सकने के कारण वह दीवार का सहारा लेकर अपने कमरे में जा खाट पर लेट गयी। आंखों से आँसू वह गये।......कहाँ कठिनाइयों और आँधियों की परवाह न कर प्रेम के जोर पर जीवन के पारावार में धस जाने के अरमान और कहाँ करोड़ों रुपये के पिंजरे में आत्मसमर्पण!

अपनी बात से सुमति को लगी चोट का प्रभाव देख उसकी माँ की आंखों में भी आँसू आ गये। बेटी को दूरदर्शिता की सीख देने का भी साहस उन्हें न हुआ। चुप ही रह गयीं। परंतु लगभग तीसवें वर्ष में कदम रख चुकी सुमति भी तो अब ऐसी बच्चा नहीं रही थी कि प्राण बचा सकनेवाली कडवी दवाई की बोतल को पटक कर तोड़ दे। तीन दिन बाद जब माँ ने सुमति को बिना किसी कारण के तीन बार चुपचाप अपने पास आ कर बैठा जाते देखा तो फिर सहमते-सहमते उसी बात का संकेत कर देखा।

" मुझे क्या मालूम।......मैं क्या, तुम से ज़्यादह समझती हूँ?" सुमति ने कह डाला और फिर जाकर अपने पलंग पर लेट आँसू पोंछते लगी। मालूम नहीं कि तेरह-चौदह वर्ष की सती होने की बाल-सुलभ कल्पना उसके मन में फिर जागी या नहीं परन्तु ऐसा जरूर अनुभव हुआ कि मंझधार में असहाय बहते-बहते थक कर दम टूट जाने से पहले किसी ठोस चट्टान पर हाथ पड गया। ऐसे समय चट्टान का सौंदर्य तो नहीं देखा जाता।

सुमति सैकडों लोगों के मुंह बिचकाने की और सैकड़ों के आश्चर्य प्रकट करने की क्या परवाह करती। उसे अपना अटल भाग्य सामने दिखाई दे रहा था। उससे कतराने का अवसर कहाँ था और सांसारिक

दृष्टि से इससे बडा सौभाग्य भी क्या हो सकता था? सुमति कालिज की नौकरी छोड़ कर करोड़पति सेठ जी की तीसरी बहू बन कर चली गयी। जिस भाग्य ने सुमति की प्रेम और प्रणय की कल्पनाओं को चकनाचूर कर दिया था, उसी भाग्य ने उसे करोड़ों की सम्पत्ति और वैभव का मालिक भी बना दिया। बम्बई में सेठजी के बँगले एक एक कमरे की सम्पत्ति के मूल्य का अनुमान कर उसे आतंक सा अनुभव होता। तीन-तीन, चार-चार मोटरें बंगले के सामने खड़ी रहती। प्रेम जो एक दिन उमंग और कल्पना की वस्तु थी, अब सुमति का कर्तव्य और धर्म बन गया। यह धर्म और कर्तव्य उसे निबाहना ही था और भाग्य द्वारा दी गयी करोडों की सम्पत्ति सम्भालने में उसे पति को सहयोग देना था।

सुमति के मस्तिष्क में बसी कल्पना, कला, कविता और प्रेम-प्रणय के स्वप्नों का स्थान ले लिया पति की सेवा, कर्तव्य की भावना और पतिव्रत धर्म की दृढ आस्था ने। आकर्षण की पुलक और स्फूर्ति के संतोष का प्रश्न ही न था और न प्रेम और प्रणय के आदान प्रदान की कोई बात। सेठजी सुमति के लिये कामदेव के प्रतीक थे। उनके शरीर या व्यवहार में किसी बात को अरोचक और आकर्षक समझने का प्रश्न ही नहीं था। सेठजी विश्वास से धर्मपरायण थे। उनके विस्तृत व्यवसाय के धर्मादय के भाग से बीसियों धर्मार्थ संस्थाएँ चलती थीं। अपने गृहस्थ में भी वे धर्म के प्रति पूर्ण निष्ठा चाहते थे। महलनुमा कोठी के जनाने कमरे में धार्मिक सूक्तियों और सुभाषित लिखे हुए थे।

भरता ही परमोदेवः भरता ही परमः सखा॥ तथा तुलसीदासजी के दोहे :

एकइ धर्म एक व्रत नेमा। काय वचन मन पतिपद प्रेमा॥
वृद्ध रोगवस जड़ धन हीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना॥
ऐसेहू पति कर किया अपमान। नारी पाव यमपुर दुख नाना॥

सेठजी के व्यवसायिक जीवन में सुमति के लिये सहयोग दे पाने का अवसर नहीं था। सेठजी के व्यवसाय से वेतन पानेवाले हजारों व्यक्ति उनके व्यवसाय की पेचीदगियों को सम्भालते थे। उस व्यवसाय में रुपया नदी की धाराओं के परिमाण में आता और जाता था। रुपये की इन संख्याओं के सुनने मात्र से सुमति का मस्तिष्क चकरा जा सकता था। उस व्यवसाय की चिन्ता करना सुमति के लिये वैसे ही व्यर्थ था, जैसे भगवान की बनाई व्यवस्था में मनुष्य का दखल देना। सुमति केवल गृहस्थी की व्यवस्था और खर्च को सम्भाल सकती थी और इतना वह खूब सतर्कता से कर रही थी।

सबसे बड़ा काम सुमति के लिये था, महाप्राण सेठजी के स्वास्थ्य की चिंता। इतना बड़ा संसार सम्भालने की व्यस्तता में वे अपने शरीर के प्रति ही निरपेक्ष थे। सुमति ने सेठजी के शरीर की नित्य बादाम रोगन से मालिश होने की व्यवस्था की। जिस ऋतु में जो फल दुष्प्राप्य होता, उसी फल के रस का एक गिलास वह सेठजी को अपने हाथों अवश्य पिलाती। फल के रस के गिलास पर जितना ही अधिक मूल्य लगता, उतना ही अधिक संतोष सुमति को होता। उसने सेठजी के विकट पायरिया के इलाज लिए एक आलमारी दवाइयों से पर दी। सेठजी को तम्बाकू खाने की आदत थी। तम्बाकू खानेवाले व्यक्ति के मुँह से प्रायः एक प्रकार की दुबक आती है। सुमति ने लखनऊ, मैनपुरी और भूपाल से पचासों किस्म के सुगंधित जर्दे मँगाकर रखे परन्तु सेठजी उनकी ओर उपेक्षा से सिर हिला कर चूना मिली सुर्ती में ही मगन रहे।

सेठजी जिस विराट परिमाण में व्यवसाय और दान करते थे उसी परिमाण में विनोद, विलास और आसक्ति की लहर भी उनके मन में उठती थी। प्राचीन काल में जो कुछ राजाओं के लिए उचित या क्षम्य था वही सब कुछ सेठजी अपने लिए भी समझते थे। वे राजा ही तो थे। सामन्तकाल में भूमि के स्वामी राजा होते थे, पूंजी के युग में पूंजी के स्वामी राजा हैं। उनकी धार्मिक धारणा के अनुसार गृहस्थ धर्म और भोग विलास के क्षेत्र भिन्न भिन्न थे।

सुमति से विवाह के प्रायः अठारह मास बाद सेठजी का मन फिल्म जगत में आयी नयी तारिका निहार में रम गया। सेठजी अनेक बार संध्या समय अनमने से दिखाई देने लगे।

नोकरानियों ने सकुचाते-शरमाते जो बातें सुमति को सुनायी उन्हें सुनकर वह अपनी स्थिति के विचार से गम्भीर ही बनी रही परन्तु मन भीतर ही भीतर कसमसा कर रह गया। सेठजी से कुछ कह सकने का साहस नहीं था और पति को सुमार्ग पर रखने के कर्तव्य का भी ध्यान था। जैसे सुमति को सेठजी के व्यवहार में अनमनापन दिखाई दिया वैसे ही उसे दिखाई दिया कि नयी खरीदी गयी कत्थई और चटक सफेद रंग की कैडलेक कार भी तीन-चार दिन से कोठी से गायब थी। वह नयी गाडी स्वयं सेठजी या सुमति के ही व्यवहार के लिये सुरक्षित थी।

पांचवें दिन गहरे हरे और उजले सफेद रंग की एक और कैडलेक गाड़ी आ गयी। सुमति के लिये कौतूहल दमन करना हो गया। पूछने पर पता चला कि निहार को सेठजी की नयी कैडलेक बहुत पसन्द थी। सेठजी ने निहार को यहाँ बुलाया था। उसने कहला भेजा हमारे पास जब कैडलेक होगी तभी आयेंगे। सेठजी ने उत्तर दिया—"यह गाडी तुम्हारी ही है।"

सुमति के मन को धक्का लगा। पचीस हजार की गाडी। सुमति का मन निहार के प्रति घृणा और क्रोध से जल उठा। सेठजी के प्रति तो क्रोध आ ही नहीं सकता था सरल स्वभाव सेठजी पर छल का फन्दा डालनेवाली डाइन के प्रति ही क्रोध उचित भी था। नौकरों-नौकरियों की मार्फत निहार के सम्बन्ध में बहुत सी बातें सुमति तक पहुँचने लगीः—"असली नाम नसीरा है......माँ का भी बड़ा नाम था। कलकत्ते में पेशा करती थी।...छल छंद में बड़ी तेज है। तभी तो दो ही बरस में इतनी चमक गयी। बड़े बड़े लोगों में होड़ लगी हैं इसके लिए!...पैसे की बड़ी भूखी है। कहते हैं कालिज में भी पढ़ी है... अंग्रेजी बोलती है।"

सुमति सेठजी से तो कुछ कह नहीं सकती थी परन्तु मन दुःखसे बहुत घुटने लगता तो कल्पना करती कि निहार के घर जाकर उसे फटकारेः— क्या यह मनुष्यता है? चांदी के टुकड़ों पर अपने शरीर को बेचना! "दूसरे को उजाडना!" वह निहार की सद्बुद्धि को क्यों नहीं जगा सकेगी, पर सेठजी की अनुमति और आज्ञा बिना सुमति कहीं जा कैसे सकती थी? ऐसे पाप की बात उसने सोची भी नहीं थी।





एक दिन संध्या सुमति को कोठी के ऊपर के दायें भाग में सेठजी का खास व्यक्तिगत नौकर नारायण बहुत व्यग्र दिखाई दिया। सुमति के रहने के बायें भाग से दाईं ओर खुलनेवाले दरवाजे बाहर से बंद किये जा रहे थे। नौकर-नौकरानियाँ फुसफुसाहट से बात कर रही थीं। सुमति का मन आशंका और कौतुहल से मथ उठा। अपनी विश्वास की नौकरानी पारो को बुला कर पूछे बिना रह न सकी···"ये सब क्या है री—"

पारो ने चारों ओर निगाह दौडा कर देखा कोई देख-सुन तो नहीं रहा और धीमे से कह दिया "मालकिन, बनारसी कह रहा है कि आज निहार आयेगी।"

सुमति के एड़ी से चोटी तक बिजली कौंद गयी। एक गहरी साँस छोड़ स्तब्ध रह गयी। फिर अपने पलँग पर लेट आँखें मूँदे सोचने लगी :—'क्या अब भी चुप ही रहूँ।...अपने पति को धोखे और विनाश से बचाना भी तो मेरा कर्तव्य है...आखिर मेरे पढ़ने-लिखने का फायदा क्या?...चोर को अपने घर में सेंत लगाते देख कर भी चुप रहूँ?' मन के आवेश के कारण लेटी न रह सकी तो उठकर बैठ गयी। दाँतों से होंठ काटते हुए निश्चय किया,—'नहीं आज करना ही होगा। आज ही मौका है।

संध्या समय सुमति को पता लगा कि सेठजी आ गये है और आकर ऊपर दाईं ओर चले गये हैं। सुमति का अनुमान था कि अब निहार आती ही होगी। परिस्थिति अनुकूल जान पड़ी। सोचा मैं नीचे जाकर उस औरत के ऊपर जाने से पहले ही उस से बात करूँ, वह ऊपर जा ही न सके।...यह मेरा धर्म है।'

सुमति के कमरे की पूरब की खिड़की से सामने की सडक पर दूर तक नजर जा सकती थी। उसने सोचा 'सड़क पर जलती बिजली के प्रकाश में वह पहली कार कैडलेक को दूर से पहचान कर नीचे उतर जायगी और देखेगी कि वह छिनाल औरत कैसे उसके स्वामी के पास जा सकती है।' सुमति दृढ़ निश्चय से सड़क की ओर नज़र लगाये बैठी थी।

सुमति को पहली कैडलेक की गम्भीर परन्तु सुरीली सी गरज सड़क से सुनाई दी और तुरन्त ही बिजली के प्रकाश में कोठी की ओर तेजी से फिसलती हुई कैडलेक की झलक पाते ही सुमति उठ कर लिफ्ट की ओर चली। परन्तु उस ओर का दरवाजा बाहर से बन्द था। उसने परवाह नहीं की। बायें हाथ से नीचे जानेवाले जीने से उतरने लगी। दो जीने उतर कर सुमति जब तक नीचे ड्योढी में पहुँची; कैडलैक में आनेवाली सवारी लिफ्ट के रास्ते ऊपर जा चुकी थी और गाडी ड्योढी की जगह न रोक रहने के विचार से दूसरी ओर जा रही थी।

क्रोध और आवेश से सुमति का सिर घूम गया। अपने आपको वश में कर पाने के लिए सुमति कोठी के आगे टहलने लगी। मालूम नहीं दस पन्द्रह मिनिट तक टहलती रही या बीस मिनिट। कदमों की आहट सुन उसने सिर उठाकर सामने देखा एक जवान लड़की को। लड़की का रूप-यौवन का दिखावा और निःसंकोच व्यवहार देखकर अनुमान की आवश्यकता ही नहीं थी।

* * *

सुमति का आवेश फिर उफन उठा। वह निहार की ओर बढ आयी। दोनों एक ही साथ बोल उठीं। मैं तुम से बात करना चाहती हूँ!" सुमति ने कुछ कडे स्वर में कहा। निहार ने उत्तर में अपने मुँह में आई भी बात कह दी।—

"क्षमा कीजिये, आपका परिचय?"

"मैं मालकिन हूं इस घर की!" सुमति ने धमकी से उत्तर दिया।

"बड़ी मेहरबानी होगी—" निहार ने विवशता दिखाने के लिये अपनी सुराहीदार गर्दन को लचकाते हुए, सहायता के लिये अनुरोध कर डाला—"एक टैक्सी तो मँगवा दीजिये। वह गाडी मुझे नहीं चाहिए।"

विस्मय से आंखें फैलाये सुमति की आंखों में कुछ शमायी सी नजर डाल निहार ने अपनी चोली में दो उंगलियां डाल एक कागज निकाल सुमति की ओर बढाते हुए कातर स्वर में कहा—"यह भी सेठ जी को लौटा दीजियेगा।...

...ओफ किस कदर नागवार बदबू है तम्बाकू और पायरिये की! यह तो उम्र भर सोने के महलों में रहने के दामों भी बर्दाश्त नहीं।"

सुमति स्तब्ध रह गयी।...यह उसका अपमान था या उस पर दया थी।...क्रोध में फटकारे दे या दया के लिए कृतज्ञता प्रकट करे?

सुमति कुछ बोल ही नहीं सकी। पाँव काँपने लगे। कुछ भी उत्तर दिये बिना वह ड्योढी की राह जीना चढ़ने लगी। ऊपर अपने पलंग तक पहुंची तो निहार की बात की चोट और जीना चढ़ने के श्रम से हाँफ रही थी। पलंग पर लेट कर आंखें मूँद लीं। निहार के शब्द...'नागवार बदबू'।...'उम्र भर सोने महलों में रहने के दामों'...! पायरिये की दवाइयों से भरी आलमारी। उस बदबू से बच सकने के लिये मंगाये खुशबूदार तम्बाकुओं का भंडार।...फिर भी उस बदबू से बचाव नहीं।'

सुमति ने कई मिनिट बाद आंखें खोलीं तो सेठजी को लौटा देने के लिये निहार के दिये कागज की सुध आयी। खोलकर देखा, चेक था पचीस हजार रुपये का। याद आया पचीस हजार की गाडी भी छोड़ गयी। 'पचास हजार रुपये के लिये भी पन्द्रह मिनिट तक बदबू सह लेना मंजूर नहीं।...उम्र भर सोने के महलों में रहने के दामों भी नहीं ...। वह है पैसे की भूखी नीच वेश्या। कितनी समर्थ...मैं हूँ सम्मानित पतिव्रता।...'

दिल डूबता सा जान पड़ रहा था। सुमति की आँखें फिर मुंद गयी। लग रहा था कि विवशता के पाताल कूप में गिरी जा रही है...अस्पष्ट सा कुछ सुनाई दिया। फिर सुनाई दिया। सुमति ने आंखें खोलीं। पारो उसका पांव छूकर जगा रही थी और घबराये हुए स्वर को दबाकर कह रही थी।

"सेठजी बुला रहे हैं।"

● ●





अनुक्रमणिका

"परन्तु प्रभो! मेरे मनोरम
भारत में क्या
अब सौख्य सृष्टि प्रारम्भ हुई ?
आनन्द लोक निर्माण
हुआ ?"
प्रश्न प्रस्फुटित हुआ और
जीवात्मा का वेग
शिथिल बना—
निःश्रेयस् के द्वार
सिमिटने
लगे—
वस्तुतः क्या वह
चाहता था—



मुक्ति

— पु. भा. भावे

यह वसन्त ऋतु है। यह सुन्दर गिरिग्राम की वासन्तिक कालकी अत्यन्त मधुरिमापूर्ण भोर है। और यह जो रसिक मनभावी और शूर युवक अब देहान्त दण्डके स्तम्भ की ओर ले लिया जा रहा है, वह भी पौरुषेय सुन्दरता का अनुपम नमूना है। यद्यपि इसका नाम वृत्तपत्रों में अधिकतः न आया होगा तथापि वह इस देश में काफ़ी प्रसिद्ध है। इसके नाम में कोई कविता नहीं है—परन्तु इसकी पचीस वर्ष की आयु में महाकाव्य की विशाल भव्यता है। भावनाओं और अनुभूतियों की गहराई, विविधता और तीव्रता, कृति और गतिकी अथाह विपुलता इनकी यदि नापतौल करनी हो, और दरअसल जो आपको करनी ही होगी, तो आप भी अवश्य मानेंगे कि, उसकी आयु के एक एक वर्ष में चेतनामय जीवन के अनेक पर्व समाये हुये हैं।

सम्भव है, साक्षात् सहोदरका चेहरा, इस देशके लोग भूल भी जायँ, परन्तु उसका यह तेजस्वी मुखमण्डल वे कभी भी भूलेंगे नहीं। किसी ख़ास सार्वजनिक स्थलपर फटे हुए गोलक के धुएँमें वह अदृश्य हुआ, और उपरान्त देशके घरघरमें उसकी अनन्त प्रतिमाएँ जादू की कीमिया की—सी अवतरित हुई। वही, यह, अब देहान्त दण्डके स्तम्भकी ओर ले लिया जा रहा है। आत्माराम है इसका नाम। जिसके वीरता-पूर्ण जीवनके खड्ग की मुठिया कुरेदे शिल्प काव्यकी कमनीयता से सजायी हुई थी। जो वीरात्मा होते हुए भी कोमल था। विजनवासी होते हुए भी विख्यात था...मुमुक्षु, विचारचिन्तनशील, कवि और वीर...! यौवनका ज्वार—पचीसवींकी बहार ढलने से पहले ही अब यह फाँसीपर जा रहा था। उसकी वे लम्बी नुकीली कलाकारकी उंगलियाँ तो देखिये—और...उसकी वह तर्जनी! मधुपात्र, मधुकाव्य, तत्वचिन्तन के प्रदेश में देदीप्यमान वक्तृत्त्व को प्रेरणागति देने वाली, अग्न्यस्त्र पर भी उसी मुलायम कुशलता से आवर्त करनेवाली उसकी तर्जनी...वह चल दिया तो भी उसकी वह तर्जनी जनमन के सामने घूमती फिरेगी,...जनमन भावनको संदेशा देती रहेगी। वह चल दिया तो भी उसके गानके निनाद गूँजते रहेगें, उसकी भारती की प्रतिध्वनियाँ टकराती मण्डराती रहेंगी,...उसकी बानी की निनदित प्रतिध्वनियाँ घूमती रहेंगी, उसके जीवन का प्रकाश प्रखरता से प्रकाशता रहेगा। लिहाजा वह अब जा रहा है—वह चला जा रहा है—देहान्त दण्ड पाने जा रहा है।

यह गिरग्राम है। यह बसन्त ऋतु है। यह सुन्दर बसन्त की वासन्तिक मधुरिमापूर्ण पौ फँटने की भोर है। और आत्माराम अब फाँसी

अनुक्रमणिका

श्री. पु. भा. भावे : उन विरला भारतीय कलाकारोंमें से एक हैं जिनकी साहित्य सर्जना से विश्व साहित्य सम्पन्न और सम्मानित हो सकता हैं। मराठी कहानी के आप अनन्य कलाकार हैं। क्या भाषा, क्या विषय वस्तु, क्या शैली, वर्तमान कहानी के सभी आयामों को मौलिकता से परिपुष्ट करनेवाले आप आधुनिक संपृक्त साहित्यिक हैं।

जा रहा है। कोयल गीतको मुखरित करती है या शोक विलापित करती है,—समझता नहीं। दिशाएँ अनुराग से अनुरंजित हो खिल रही हैं या चिलचिलाती हुई सफेद फक् हो रही है—समझ में आता नहीं। पुष्पसंभार सौरभ की बौछार करता है या आह भरे निश्वासों की —समझमें आता नहीं। यह शीतलता सुखस्पंदन की है या दुःखक्रन्दन की है—उलझन सुलझती नहीं। यह हरियाले वृक्ष संतोषपूर्णता से डोल रहे हैं या शोक आवेग से व्यथित मसोस रहे हैं—मन समझता नहीं। परन्तु आत्माराम अपनी ही धून में। वह अपने ही नशे में। अपने ही पागलपन में, अपने ही बावले निदिध्यान में वह खोया खोया सा है। जीवन में उसका साथ मृत्यु करती थी और मृत्यु में उनका साथ जीवन दे रहा है। दोनों को भी वह समान मानता है। परमसत्य के वे दो रूप हैं। जन्म के क्षण पर ही मृत्यु जन्म लेती है और मृत्यु के क्षण पर ही जीवन। जीवन का अन्त मृत्यु में होता है और मृत्यु का जीवन में। आत्माराम ने अपना सारा आवेगवान गतिमान जीवन स्थितप्रज्ञ की भाँति देखा, मानों दर्शक एकाद नाटक देख रहा हो। अब वह तो अपनी मृत्यु ही देखता था...।

...नीरव तटस्थता से! जीवन जिस कौतुक से, उत्साह से, कौतूहल से, आदेश से, कर्तव्यबुद्धि से और मनःशान्ति से उसने देखा था, उसी संतुलित रसिकता से वह अपनी मृत्यु भी देखता था। कोयलों की कूक उसे संगीतका आनन्द प्रदान करती थी। फूलों के निश्वास में उसे सौरभकी मधुरिमा प्रतीत होती थी। उसको भाता था कि दिशाएँ प्रदीप्त प्रकाश से प्रफुल्लित होती थीं और निसर्ग आत्मसंतोष से फूला न समा कर डोल रहा है। लिहाजा मृत्यु में वह अपावन भीषणता न देखता था बल्कि नया जीवन खिलते देखता था। जीवन का चिरपुरातन, शाश्वत सौन्दर्य ही वह देखता था। और पुर्नजन्म की आस मन में सँजोये हुए था।

● ● ●

पुनर्जन्म की आस! हाँ, वही केवल एकमात्र आशा थी। उसका भी एक पागलपना, एक बावला का-सा निदिध्यास था...भारतवर्ष! इस विमल सुन्दरतापूर्ण भारतवर्ष का सुख—भारतवर्ष की उन्नति-भारतवर्ष का उत्कर्ष ...!... भारत ... भारत...आर्यावर्त...हिन्दुस्तान! उसका स्वातंत्र्य! उसकी स्वाधीनता! वहाँ के चित्रविचित्र, रंगीबहुरंगी और फिर

* * *

भी एकरूपी, मनभावक, आकर्षक जनसंघोंका प्रिय! अल्पना के अन्याय पुटोंके—से उतनेही विभिन्न, परन्तु फिर भी एक ही एकसंर्धा चित्रके पूरक भानेवाले, सौन्दर्यबिन्दु होनेवाले, वे भारतीय! उनके लिये जीऊँ, देशके लिए जीऊँ, देशके लिए मरूँ, और मातृभूमिके लिये ही पुनर्जीवित हो जाऊँ, यही उसका पागलपना था। कश्मीर का प्रस्फुटित सौन्दर्य, पञ्चनदों की पवित्रता, हिमाचल की उत्तुङ्गता, गंगौघ की धवल दिव्यता, हिमालयगिरि की नीलिमा, कन्याकुमारी की अस्पर्श चारुता, वंगभूमि की मृदुता...सौराष्ट्र, मागध, उत्कल, सिंधु, महाराष्ट्र इनकी विभिन्न गुणसौन्दर्य की मिश्रता......!...विविधतासे उभराया हुआ वह भव्य दिव्य एकाकार अखण्ड दर्शन! यही उसका प्रतिपल ध्यास था। अपनी प्रिय भारतीका वह भावक उपासक था...। उसकी सुगन्धित मृत्तिका ने उसे पागल बनाया था। उसी की गोद में वह जन्मा था और वहीं पर पुनर्जीवित होने की आस अपने मन में सँजो रहा था। मुक्ति...मुक्ति...? नहीं...उसे मुक्ति नहीं चाहिये थी। भारत स्वाधीन न था और तिसपर भारत सुखी न था, तबतक उसे मुक्ति नहीं चाहिये थी।...इसी देश के नैसर्गिक सौन्दर्य से, इसी देश की मानवनिर्मित विषमता-कुरूपता से उसकी सर्वगामी सर्वंकश रसिकता ने प्रेम किया था। आज वह मृत्युपथ पर चल रहा था। आज वह नये जीवनपथ का पथिक बन चल रहा। भारती के लिए...आर्यावर्त के लिए...हिन्दुस्तान के लिए! उसी के लिए वह व्यथासक्त गद्गद् हुआ था; अन्तिम आत्मोत्सर्ग के आनन्द से वह तमतमा उठा था। उसी के लिए वह अब फाँसी भुगतने जा रहा था। कर्तृत्व का, सौन्दर्य का, बुद्धि का और अस्तित्व का प्रत्येक कणकण आज तक उसने उसीके लिए फूल—फूलकर फुलाया था। भारती के लिए ही आत्माराम देहान्त दण्ड का अभियोगी बन उसे भुगतने जा रहा था। जो जिसका था, जो जिसके लिए ही था, वही उसको समर्पित कर रहा था।

फाँसी? मृत्यु? जो श्वास आज तक स्वैरता से, स्वेच्छा से सहजता से ली उसका प्रतिरोध किसी पराये की आज्ञा से? मित्रों के, देशवासियों के समूह से माताका एक पूत जुल्म जबर्दस्ती से छीन लिया जायँ? परमात्मा की दी हुई इस आत्मापर किसी गैर की हुकूमत? मातृभूमि के प्रेम के अपराध के लिए? हाँ...हाँ...वैसा ही! यह पुरातन पाप माना गया है। सुबकदोश और पवित्र प्राण के मूल्य से ही....उससे मुक्ति पाई जा सकेगी। वह मूल्य भी कितना स्वल्प है? केवल देहका मूल्य! जो जिसका था, वह उसी को ही समर्पित करने का; उसीके नाम से—हाँ, केवल इतना ही भेद! गर्दने टूटेगी, गला घोंटा जायगा—रीढ़ टूटेगी—परन्तु प्राण उन्मुक्त होंगे; और अन्ततः मातृभूमि! यह काहे की मौत? यह तो जीवन है! जिसे जीवन मानते हैं, वह दर असल मृत्यु है; और जिसे मृत्यु मानते हैं, वह वस्तुतः जीवन है। भारतीके इस पावित्र्य के लिए, भारतीके इस अनमोल सौन्दर्य के लिए, उसके नन्हों के सुख के लिए, यह मूल्य क्या अधिक है?...देहान्त दण्ड। फाँसी! गुमरती साँस! बाहर आ लटकनेवाली यह आँखें! शासकोंको, शास्ताओंको और गुलाम संसारको परिहासित करनेवाली यह जिह्वा! एक झटक, एक फटक-तड़पना...और उपरान्त सबकुछ नीरव शान्त! मृत्यु का नहीं,—यह जीवनका मार्ग है! माने तो यह भयावह कुरूपता...अन्यथा एक सामान्य परिहास,

अनुक्रमणिका

व्यंग्य। शासनकर्ताओं की विद्रूपता का यह प्रेतस्वरूप निष्प्राण प्रतिबिंब ! उस बीभत्सता से व्यंग्य करनेवाला यह मृत शरीर! आत्मसौन्दर्य, भारतीके सुरम्य मञ्जु रूपमें, तो कब का विलीन हो चुका! असुन्दरताने फाँसी की रज्जुओं को ऐंगा, परन्तु वे लटक रही थीं स्वर्ग के द्वारपर !

कुहूऽऽ कुहूऽऽ कुहू......! कोकिल गानकी तान अविरत ले रही है। दिशाएँ कनकाभ से स्वर्णिम हो रही है।...वृक्ष प्रवेग से झूमते हैं। पुष्पसंभार सुगन्धि की वर्षा कर रहा हैं। यह वसन्त ऋतु थी। यह रम्य गिरिग्राम था। यह तो इधर की सुरम्य तर प्रत्यूष थी। और भारती के परमसुन्दर, परमपावन, परम दिव्य स्वरूप का चिन्तन करते हुए आत्माराम शूलस्तम्भ की ओर चला जा रहा था। न किसी मित्र का, न किसी सम्बन्धी का, न किसी कोमलांगी का उसे स्मरण होता था। केवल भारती के चिरपावन, चिररम्य, चिररुचिर स्वरूप का ध्यास उसे लगा था। आर्यभू की विविध स्वरूपावलि ही इस अन्तिम जीवन वेदीपर वह रँगाता था, रञ्जित करते देखता था।... यही था उसका पागलपना। उसीके लिए ये आँसू! उसीके लिए यह अवरुद्ध कण्ठ! उसी की पूजा के लिए इस देह पुष्प का समर्पण...भारती के लिए!... भारती के लिए! क्योंकि इतना ही केवल उसका अविरत निदिध्यास था।...भारत...आर्यावर्त...हिन्दुस्तान........!

● ● ●

अहे! कितनी सुलभ—कितनी सुगम--कितनी सरल थी वह मृत्यु! फाँसी की इस रज्जु का कितना आकर्षक था यह खेल! लौकिक में इस रस्सी को लटकते केवल दो चार झटक के झोले ले लिये तो सीधे पर-लोक में प्रवेश! इस डोरी का एक छोर इस लोक में तो दूसरा सुदूर दूसरे में! इसका सहारा लीजिये और स्वर्गलोक के अमर गणों से हाथ मिलाइये। इसका अवलम्ब लेने का निश्चय कीजिये और उपरान्त पुन-रपि दास्यत्व की, दैन्यत्व की, पराधीनत्व की, नरकयातनाओं की खिल्ली उड़ाइये! कितना सहजप्राप्य है मर्त्यको अमर्त्य स्वर्ग से अनुसन्धित करने वाला यह पुल! ऐसा होने के बावजूद भी जिस सुन्दर भारत की मरणोन्मुखी आत्मा, स्वर्गीय अमृत कुंभों के सिंचन से संगोपित करने के लिए; स्वर्ग की कल्पना कणकण से चुनचुन चुगके ले आकर, इस सुफल भूमि में उसे बोने के लिए इस पुल पर आया जाया करने के लिए भारत सुपुत्र भीड़ क्यों नहीं लगाते? कितनी सुलभ है मुक्तिमार्ग की यह यात्रा! कितनी सत्वर, कितनी पुण्यप्रद और कितनी स्वल्पमूल्यक! इस डोरी के हिंडोले पर जा बैठिये, झूले झूलिये, मलिनवस्त्र त्यागिये, दुष्ट मायापाश तोड डालिये, झूलते झूलते बन्धन नवाइये, झूलते-झूमते, झूमते कोश झराइये—और फिर एक अन्तिम झूला कसिये, लम्बा चौड़ा, कौशलपूर्ण अन्तरिक्ष के एक ओरसे दूसरे छोरतक! मानों रविरश्मि के डोर पकडकर आप दिशाओं को हटाते हुये झूल रहे—झुमाते—हैं! दिनकर पर एक थपकी तो चंद्रमा पर दूसरी! किञ्चित् नर्तन,-किञ्चित् मचलन,-किञ्चित् थिरकन-प्रवेश लेने के लिए, गति आवेगित करने के लिए इस धरापर किञ्चित् पदस्पर्श—और अन्त में इस मर्त्यलोक पर अन्तिम लत्ताप्रहार, पदप्रहार! इस मर्त्य जीवन से सदा के लिए उन्मुक्त! यह अन्तिम झूला, अतिप्रचंड, प्रभञ्जन गति का, परस्पर विरोधी दिशाओं की वेदियोंतक, दोनों छोरोंतक

एक पत्र

स्नेह !

तुम्हें जलना पडता है।

जल-जलकर, झुककर
तिल-तिल कर चुककर
यह प्रकाश ऊपर उठता है।

स्नेह !

तुम्हारा स्वभाव जलना
जीवन में है छलना
फिर भी प्रेम दान नित करना
सब कुछ खोने से कुछ मिलना

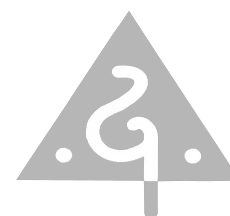
यह प्रकाश योंही बढता है
बढता है, चढता है!

जलन यहाँ आलोक-सृजन की
एक शर्त अनिवार्य
अमा-निशा में घोर विजन की
एक सुलग का कार्य
स्नेह! तुम्हें अ-करुण जगमें
जलना ही पडता है।
कैसा त्याग अहा! ज्योतित है,
हा! कैसी जडता है।

—प्रभाकर माचवे

अनुक्रमणिका





अनुक्रमणिका





झोंपनेवाला, हिलता हिलता छूँछटनेवाला, स्वर्ग पृथ्वीका पलभर में सम्यक् दर्शन देनेवाला, जिसकी झँझाकी-सी अतीव तीव्र गति से नक्षत्रलोक नीरस शुष्क सुर्ख फूलों की नाईं इतस्ततः झरता जाय। ऐसा यह सुगतिमान विराट् प्रदीर्घ झोल—झूला; आन्तिमिक अन्तिम; और फिर आप कहाँ इधर? यह अनुकम्पनीय सर्वरज्जु केवल मृत्तिका को कसते कसते स्थिर बनी है, उसे गतिमान करनेवाले उसके अभिवाहक किधर चल दिये?

...इधर देखिये आत्मारामने झूला, झुलाया। अन्तिम हिन्दोला हिंडोल दिया। दोनों अन्तरिक्षोंके छोरोंको सानुक्रम अलिंगन करनेवाला! यह देखिये, उसके मटैल वस्त्र झर गये! यह देखिये, सारे पाश अपाहिज बने! चैतन्य विरह की पर्युत्सकतासे यह मृत्तिका कृष्णवान् तमस बनने लगी! कोकिल संगीतिका का नाद कलरव किल-किलाती है! पुष्प सौरभ से अन्तरिक्ष घना घना बना है! दिशाएँ सुरम्य रंगावली की आभा से सुहास कर रही हैं! उसे किसी भी बात का रञ्ज नहीं! उसकी कोई वेदना नहीं! मन में कोई कसक नहीं! कोई खलल नहीं! शरीर के भोग शरीर उपभोगे, मृत्तिका का ऋण मृत्तिका चुकायेगी, परन्तु उसे किसी भी बात का रञ्ज नहीं! सौन्दर्य से, स्वरूप से, सुगुण से, प्रदीप्त आभा से प्रज्वलित उसकी काया अनेक अभिसारिकाओं को सराहनीय भायी थी, परन्तु उसको किसी का न आकर्षण था, न स्पृहा थी! मित्रों के, सम्बंधियों के, देशवासियों के प्राण उससे अनुस्यूत थे, परन्तु उसके प्राण कहीं भी आसक्तस्थिर जड़ न बने थे। उसके प्रत्येक रोम रोम में कण कण में, उसके जीवन में, उसकी मृत्यु में केवल माता और उसका चिररुचिर स्वरूप समाया हुआ था।...... यह चिररुचिर स्वरूप आक्रंदन करनेवाली उस विधवा माता का नहीं कि जिसने उसे लौकिक जन्म दिया था, परन्तु उस गतधवा माता का कि जिसने उसे, उसकी माता को और मातृत्व की अखण्ड परम्परा को प्रसूता था! केवल उसी के सुख और सौन्दर्य की उसे चिन्ता लगी है। केवल उसीका चिरपावन, अतिभव्य, विराट् स्वरूप वह अब देखता है। केवल उसी के पदकमलों में उसकी आस अब भी बन्दिनी बनी थी। उसकी सेवा,...उसका सुख,...उसका सौन्दर्य! उसीका,...उसी...माता का, उसी भारती का! यही केवल उसका चिन्ता ध्यास है। यही उसका पागलपना है। इस एक झूले को झुलाते समय...इस दूसरे झूले को झुलाते समय... इस प्रथम चरण को उठाते समय...इस दूसरे चरण को उभारते समय! कितनी सहजता से आत्माराम इस डोरीपर झूल रहा है; कितनी तरलता से उसके कदम आगे बढ़ रहे हैं! और कितनी कोलाहल की ध्वनियों से कोकिल अपने स्वरों को पिरोते हैं, कितनी उन्मत्तता से वृक्ष गर्दनें झुमा रहे हैं, कितनी त्वरा से दिशायें तड़ककर कनकाभ हो रही हैं!

यह बसन्त ऋतु है। यह गिरिग्राम है। गिरिग्राम का वासन्तिक सुगन्धित, सुशीतल, मधुरस समृद्ध उषःकाल है। मधुपान सेवन के लिए ही इस ऋतु में रसिक गणों की इधर भीड़ होती हैं। वे रसिक अबतक निद्रामग्न है। यह गिरिग्राम है। यह गिरिग्राम की बन्दी

अनुक्रमणिका

झाला है। और भारती के पुत्रों के जो समूह अबतक निन्दियारी से जागे नहीं है उन्हीं के लिए आत्माराम फाँसी की डोरीपर नाच-झूल रहा है। उसके श्वास अवरोधित होते हैं परन्तु यह जागृत श्वास का अवरोध है। मर्त्यलोक पर, दास्यत्वपर, निद्रस्त्य पर, स्वार्थत्व पर, मालिन्यत्व पर ठोकर लगा के आत्माराम ने यह अन्तिम झूला झुलाया! प्रदीर्घ, गतिमान, कौशलपूर्ण...दोनों दिशाओं पर थपकियाँ देनेवाला अनिर्बन्ध छूँछट गति का प्रचण्ड प्रपात सा, दिशाओं के व्योम मण्डप को भूकम्प की नाईं हिल मचलानेवाला...तारक-नक्षत्र-सुमनों की वर्षा झरानेवाला...! किस दिशा की ओर है उसकी निगाह? किधर घुमाता है वह अपनी बुझती म्लान प्रदीप्त आँखें? किधर अटका है उसका मन?

● ● ●

हिमालय की गगनस्पर्शी चोटियाँ, उत्तुंगता से होड़ करती हैं। स्फटिक शुभ्र चमचमाहट करनेवाला उत्तर के द्वार का धवलता का तोरण। पाटल पँखुडियों के पाँवडें। परिपक्व फलभार। फूलों की राशियाँ, रसीली आरीली हरी हरी पत्तलश्रेणियाँ। नौका गृहों के समूह भीड़। देवदार, शाल्मली, आक्रोड! सिन्धु का उफनानता प्रवाह! छलकता, उच्छृंखल, प्रचंड, विराट जीवनदायी! ...लवपुरी,...पुरुषपुर,...शिवी,...श्रीनगर! ओखला! कालिन्दी के प्रवाह का सुदूर विस्तारित दुकूल! डोह के पानी के साथ झुकझुक के खेलकूद करनेवाली कदम्ब की डालियाँ! नन्हों-मुन्नों के, पयःपान से, फेनिले बने होंठ!...बन्दूक के कृष्ण मुख से उड़े हुये शोलों की आग!...प्रतिसीमापर रखे हुये रसहीन, सुषमाहीन, पूर्णशून्य प्रस्तरों के उग्र प्रहरी! वाराणसी...काशी विश्वनाथ...सादसे निनदित घण्टायें—धूप—दिप—पुष्पसौरभ-अर्धप्रकाशित, अघोष्ण, गव्हर! शुभ्र, शान्त, पावन गंगा! प्रयागतीर्थ-असित श्वेत सरिता-संयोग! मथुरा...वृन्दावन वेणुनाद...शुभ्रशारदीय ज्योत्स्ना...रासक्रीडा...पीताम्बर...गन्धविलेपित देह...मुर्शीदाबाद! मागध...पाटली पुत्र...नीलकमल! बंग...मेघनाद...पद्मा...नारिकेल-पोफलियाँ...असंख्य तड़ाग...हरित सृष्टि! नवनीत कोमल,...प्रस्तरशून्य!...चितौड़...उग्र,...दिव्य...रक्तांकित! जयपुर...! अवन्तिका-मालवमहांकार...घनन......घन...घण्टानाद...मयूरों की दीर्घ केकाऍं...कर्कश करुणार्त! डालियों की मञ्जरियों से गीतका स्वर प्रस्फुटित करनेवाला एकाकी कोकिल! तडित् भञ्जित खण्डहर पुरातन सिंहद्वार! भारतगान से पर्युत्सुकासक्त बने कण्ठ! जीर्णशीर्ण कूपोंमें से कहीं कहीं दृग्मान होनेवाला पानी!...भूमिगत गव्हर! चित्तश्रेणी!...विक्रमकालिदास उदासीनता!

...विंध्य-सप्त पर्वत...उत्फुल्ल—पारिजात-सजल,—शान्त, वायु! अजण्ठा, एलोरा, अलौकिक शिल्पकला सौन्दर्य-दिव्य, शाश्वत रंगसंपत्ति! द्वारावती,...जगन्नाथ...भुवनेश्वर...सजीव शिल्पकारी...मन्दिर—मंदिर.. शिखर! महाराष्ट्र; सह्यगिरी,...वेंकयू हवा पीते टट्टू,...सतेज उज्ज्वल शस्त्र,...फहरता लहरता भगवा झण्डा! सिन्धु सागर...गंगा सागर...हिन्दू सागर...उछलता, उफानता, लहराता, प्रशान्त, रौद्र, असीम...खेलता...चट्टान-सा...गगनस्पर्शी! हवाके झोंको से लहलहानेवाला तृण के सागर! घास की झिल्लियों से सर्पाकार रेंगनेवाली पगडण्डियाँ! हस्तिनापुरके शिशिर का जरठ कडा तमाचा...बद्रिनाथ के हौले हौले झरनेवाले हिमकेसर...हिमकण-मृगकी सुगन्धि की साँसें उच्छ्वसित करनेवाली जलसिक्त वसुधा......हेमन्त में प्रखर हो उष्णता फैलानेवाले अग्निस्थान...छोटे बच्चों की नन्हीं नन्हीं मुट्ठियाँ... पृथ्वी स्तम्भ की प्रदीर्घ सुदूर फैली आयामित छाया...किसी गली का चिरपरिचित सुगन्ध...तालियों के पीटने की कड़कड़ाहट,...गर्भवती के मुख का सृजनगामी समुज्ज्वलपन...मथुरा की सीमा का बेलका पीत कालीन—मीनाक्षी...दक्षिणापथ...ऊँचे शिल्प खचित मनोहारी अनन्त गोपुर...चेतनाशक्ति को आवाहन करनेवाली...झोपड़ियों की बस्तियों में से चक्राकार ऊर्ध्वगामी धुआँ...कूपके रहट की आवाज...बैलोंकी गोल मोटी आँखें...बोयी तप्त धरती...प्रचण्ड जलप्रपातों के निनाद...पीठसे चिपके हुए अन्नहीन पेट...मण्डपम् का सागर सेतु...रामेश्वर का प्रतिबिम्ब अंकित करनेवाला हिन्दू सागर...गव्हरों में नाद निनदित, साद प्रतिसादित, ध्वनि प्रतिध्वनित करनेवाली वाचाल घण्टाओं की जिव्हाऍं...तर्र पसीनेसे बहनेवाले श्रमिक...त्रिची के प्रस्तर मन्दिर पर से दृग्मान होनेवाली तुंगभद्रा—कन्याकुमारी...उसके पदकमल...भारतीके पदचरण...तीन सागरों के तीर्थों में प्रक्षालन पानेवाले...बहुरंगी जल...अनेक रंगी अनुरागमय अरुणोदय...भव्य, रम्य सुरंगमय सूर्यास्त...रजितशुभ्र वालुका की वर्तुलाकार पहाड़ियाँ...नील,...पीत,...असित रंगी...! गोधूलि वेलापर अपने घर लौट आनेवाले गोरुओं के झुण्ड...गीली मिट्टीपर चिन्हित पदचिह्न...दीपोत्सव के समयका निरभ्र प्रोत्साही वायुमान...काँटोंके मेंडोंपरसे उघलती...फुदकती ऊपर चढ़नेवाली वल्लरी ... प्रतिष्ठान...पण्ढरी ...करवीर ... भागानगर...कन्याकुमारी...उसके चरणकमल...उसका स्वरूप उसका पावित्र्य...भारती... हाँ, भारती का!...ताल पखवाजोंका नादघोष...वंगकन्याओं की उलूक ध्वनियाँ...तनमन खोये विस्तृत पाये भक्त...आरती और...निराञ्जन...नीरसतासे सरसता निर्मित निर्माल्य...उसकी महिमा...उसकी गरिमा, उसका जयघोष...उसका भारतीका!!

यह आखिरी झूला झुलते समय; प्रदीर्घ कौशलपूर्ण दोनों अन्तरिक्षों को स्पर्श करनेवाला, उडुगणों को तितरा—बितरानेवाला! यह अन्तिम झूला झूलाते समय भी उसीका जयघोष, नादघोष! उसीका...जयघोष आत्माराम ने किया। उसीका अभिस्वरूप दर्शन उसने किया। समुज्ज्वल, परमसुन्दर, अतिभव्य, शुष्क म्लान! यह एक हिन्दोला-यह और दूसरा—...और किधर गया आत्माराम? यहीं, इधर, मलिन वस्त्र रहे हैं। यहीं, इधर, प्राकृत अर्थशून्य बन्धन रहे हैं। यहीं, इधर, जीर्णशीर्ण कंकाल पञ्जड़ रहा, परन्तु प्राणपँखेरू किधर उड़ गये? कहाँ है आत्माराम? उसपार की सीमातक उसे मुक्त कर, यह दयनीय रज्जु क्या केवल यहीं रही? परन्तु इस दीपक में जो प्रदीप्त ज्योतिशिखा थी, इस अशाश्वत खर्पर घटमें जो जीवन था, वह भला किधर लुप्त हुआ? यह नश्वर बुत इधर ही भञ्जित हो, भग्न हो गिरा है। परन्तु जिसके कारण वह चेतनास्वरूप पा सका, वह आत्माराम...?

● ● ●

अनन्त, असीम विश्व की सुलझनेवाली उलझन के प्रसृत जाल से वह जीवात्मा आवेग के पंख लगाकर झरता झरता पार होता जा रहा था। नीलम, जामुली धूमिल, पीत, रक्तिम, हरियाली, स्वप्नमय, अलौकिक

अनुक्रमणिका





प्रकाश रेखाओं का संमिश्रण ! ग्रह नक्षत्र लोक की परिधान की हुई मेघमालाओं के उड़ते आँचल ! वातावरण और अन्तरिक्ष के अनगिनत बुलबुले ! विश्व के आवर्त में कर्णकटु ध्वनियों के स्वर-निनाद कर अपने ही चहुँ ओर चक्राकार घूमनेवाली चक्राकारिकाए ! असंख्यात आवर्त-संख्याहीन चक्राकारिकाएँ ! विभिन्न ध्वनियों का संमिश्रित कोलाहल ! शून्य उदधिपर फूले हुये असंख्य बुद्बुद ! अनिर्बन्ध, उन्मुक्त, अनन्त आकाश दीप ! वर्तुलाकार भ्रमित घूमनेवाले खद्योत गण ! अन्तरिक्ष की थाली में चक्रमान होनेवाले दीपक ! घने अन्धकार के गर्भ में गिरगिराहटनेवाली दीप पंक्तियाँ ! विश्वकर्मा की फहरायी हुयी गुड्डियाँ ! अन्तरिक्ष के चँदवे को अनुबन्धित नगीनें ! विश्वयंत्र के अनन्त घुमनेवाले घुमक्कड़ चक्र !

सारा अवकाश इन विराट्, प्रचण्ड, महाकाव्य गोलकों से मथाया जा रहा था ! कतिपयों के प्रकाश पुञ्ज परस्परों के सम्पुटों में झूमते हुये चक्र लगा रहे थे। कुछेक निराधार, एकाकी त्रिशंकू की भाँति बीच में लटकते थे। कहीं कहीं आवर्तमय वायुस्वरूप को वर्तुलाकार धनता आ रही थी। कहीं कहीं घनीभूत गोलक वायुस्वरूप में विलीन होते जाते थे। कहीं कुछ बनाये जा रहे थे। कहीं भञ्जित किये जा रहे थे। कुछेक भर दिये जा रहे थे, कुछेक संघर्ष से विरल...शीर्ण होते जाते थे। कुछेक ऊर्ध्वगामी गोलक परस्पर बावले-से टकराते हुए शोलों की चिनगारियों की बौछार में नष्टप्राय होते जाते थे। कहीं कहीं वे चिनगारियाँ ही अपनेको सम्हालते सम्हालते अपना एक अलग संसार बनाती थीं...! हरएक चिनगारी यानी एक संसार !...ऐसी अनगिनत चिनगारियाँ; ऐसे अनगिनत संसार...! उनके ऊपर की असंख्य जीवसृष्टियाँ ! उनके अपरिमित सुखदुःख !...उनकी उत्पत्ति और उनका लय ! चिनगारियों का नाश, लय !...संसारों का नाश, विलय ! उन संसारोंकी जीवसृष्टि का उत्पात, लय ! इन अनगिनत गोलकों की गिनती ! उनकी जीवसृष्टियोंकी गिनती ! उनका अपने को बच सम्हालना ! उनका तोल फिसलना...! केवल परस्पर के खिंचाव के कारण वे अन्तरिक्ष में तैरते और भ्रमण करते रहते। प्रचण्ड आघात ! इस आघात का कर्णकटु, विश्वव्यापी, भयावह निनाद ! इस घोर कोलाहलके उपरान्त अथाह शान्ति ! खुलती चिनगारियों की बरसात ! अचेतन, निष्प्राण ढही रक्षाके बलवान् छलाँगते कण ! अवकाश-आकाश-अन्तरिक्ष... शून्यता...महाशून्याकार ! इधर उधर से बीचमें से...यहाँ तहाँ प्रवासित हरे, नीले, रक्तिम, जामुनी, रंगों के चट्टे बट्टे ! एकसमयावच्छेद-साथ चक्राकार घूमनेवाली चक्रियों का घोर ऊँघता...कम्पानेवाला संतत विलाप ! जगड्व्याल, आकर्षक, घोर उग्र, अन्तहीन दृश्य ! जिसके सौन्दर्य में भी विराट भय था ! जिसके विराट भय में अनुपम आकर्षण था। जिसके आंशिक दर्शन से भी लौकिक दृष्टि तिनके तिनके होकर छिन्न भिन्न हो जाये। जिसकी किञ्चित् कल्पना के कलुष जाल में जिज्ञासा की क्षणिक विनोद की हिलोर से भी वह अल्प, अशक्त कल्पना-जाल ही जीर्ण शीर्ण विरल हो जाये ! जिसकी किञ्चित् स्पर्शमान जिज्ञासा से संवेदना मूर्च्छित हो जाय। विराट विश्व की इस सुलझती उलझन से वह प्रकाशात्मा आलोक के कंद की ओर पथिक बन प्रवास करता जा रहा था। प्रभा, चपला, नाद एवं वायु इनकी साम्मिलित गति की अपेक्षा भी

प्रवेग से ! कभी लाल, नीले और असित प्रकाश की यवनिकाओंको पार करते हुए ! कभी चिनगारियों के प्रपातको अवगाहित करते कभी सुशीतल ज्योत्स्ना के सुखदायी चन्दन तुषार से विलोभित, होते हुए ! अन्तरिक्ष में तारानक्षत्र दीप जगमगते-उस समय ! अवकाश की थाली के कुछ दीपक बुझते जाते ओर कुछ पुनरपि प्रदीप्त होते जाते, उस समय ! चक्राकार भ्रमण करने वाली चक्रियाँ अपनी घरघराहट से सारे अन्तरिक्ष को भयचकित करती थीं, उस समय—! किसी अजनबी जादूगर ने घुमाये हुए कन्दुकों के समूह सर्वत्र इतस्ततः तथा सुदूर उछलते थे, उस समय—! ज्ञानमयी, प्रकाशमयी, मोक्षदायी, शान्तिदायी सृजनशक्ति—परमात्मा में विलीन होने योग्य ऐसे इस जीवात्मा की गति, अप्रतिहत, अविरोध आवेग से चालू थी। निःश्रेयस्को सुयोग्य ऐसी यह आत्मा थी। हीनतम बन्धनोंने, लिप्साओंने, तुच्छतम संकीर्णताओंने इसे कभी स्पर्श नहीं किया था। अन्तरिक्ष के प्रथम मण्डलमें इस जीवात्माने प्रवेश किया और देवदूतोंने मुक्तिका द्वार खोल दिया। पार्थिव, सान्त के बन्धन कटवाये और उस तेजात्मा से पुचकारते हुए कहते बने-

" अहे ! सुस्वागतम्, तुम्हारा स्वागत हो ! आओ, इधर आओ। यहींपर शान्ति विराजती है ! "

सतेज से आकर्षित होते हुए भी, मुक्ति मार्ग सम्मुख ठाना होते हुए भी, भौतिक जडकोष के बन्धन टूटने के बावजूद भी वह सूक्ष्म देह अब भी इच्छा की, आसक्ति की, वांछा की एक अदृश्य तथा बलवान रज्जुसे लौकिक जगत् के साथ बन्दिस्त बनी थी-अब भी बन्धी हुई थी। छूँछट आवेग के अतीव तीव्र, ऊर्ध्वगामी प्रवास में भी वह बार बार पार्श्वको और पीछे रह रह कर देखता था। प्रवेग के पंख पर उड़ान करते करते उसने देवदूत से कहा, " अहे प्रभो ! निःसन्देह जिधर शान्ति का अधिराज्य है। परन्तु मेरे प्रिय सुन्दर भारतवर्ष में ?"

" भारत ? तुम्हारा प्रिय भारत ? तुम्हारा सुन्दरतम भारत ?" देवदूत सुस्मित करते कहते बना।

"हाँ, हे प्रभो ! मेरा भारत। मेरा प्रिय भारत ! मेरा सुन्दरतम भारत।"

इस कल्पना के उत्स्फूर्त होते हो जीवात्मा की उर्ध्वगामी प्रवास की प्रचण्ड गति कई गुना धीमी हुई। देवदूत जीवात्मा को पुचकारते हुए कहने लगा,—

"इधर आओ, तब तुम्हें ज्ञान होगा। यह ब्रम्हानन्द धाम है। यही अन्तिम निःश्रेयस् ! निर्विकल्प, अननुभूत सौख्य यहीं विराजता है।"

" परन्तु प्रभो ! मेरे मनोरम भारत में क्या अब सौख्यसृष्टि प्रारम्भ हुई ? आनन्दलोक निर्माण हुआ ? "

यह प्रश्न प्रस्फुटित हुआ और जीवात्मा का प्रवेग और भी शिथिल हुआ ! मुक्ति के द्वार सिमिटने जाने लगे। अनन्तलोक आकसित होने लगा। निःश्रेयस के सिमिटते द्वार से देवदूत की वाणी पुनरपि मुखरित हुई—

* * *

"अन्तरिक्षके इस प्रथम मण्डल में तुम कुण्ठित हो रहे हो,-यहाँ न रहस्यों की ज्ञेयता है। न जड़माया का सन्देह है। तथापि यहाँ सन्देह शून्यता का अभाव भी नहीं है। अज्ञान का अमेय तिमिर इधर नहीं, तथापि शुद्ध ज्ञान का तिमिर हारक प्रखर धवल तेज भी नहीं है। प्रश्न उत्स्फूर्त होने से पहले ही उत्तरप्राप्ति का यह स्थान नहीं। एतद्, अहे ! तेजस्वरूप, इधर आगमन करो, प्रकाश गामी भव।

"परन्तु अहे, भद्रस्वरूप—"

मुक्तिके द्वार निमिषार्ध में सिमिटे गये और देवदूत की अन्तिम गिरा अभिव्यंजित हुई—

"अतः मृतिका के किसी क्षुद्र रेणु से वन्चित हे जीवात्मा ! यहीं रह और परिपक्व भव !

तुम प्रत्यागमन भी नहीं कर सकोगे क्यों कि पथयात्रा पर तुम इतने प्रगत बने हो कि, प्रत्यागमन अब असम्भव होगा। अतीत का पथ समाप्त हुआ और अनागत मार्ग तुम्हारे दृष्टि-आलोक में अबतक नहीं आये !...तुम्हारा शुभ बने !..."

देवदूत की अभिव्यञ्जना विलीन हुई और गतिशील जीवात्मा को गतिहीनता अभिप्राप्त हुई। उसका प्रवेग सम्पूर्णतया अगतिक बना फलतः वह अन्तरिक्ष के प्रथम मण्डल में ही तैरने लगा। उसकी सूक्ष्मता स्थूल बनी। उसका ऊर्ध्वगमन स्थिर हुआ और अवकाश की एक ही सीमापर वह तरलता से आन्दोलित होने लगा। वह मुक्त नहीं था, तथापि अवकाश की प्रथम श्रेणीतक उसका उड्डाण हुआ था। चर्म देह को अकल्पनीय ऐसी गति की स्वैरता उसे प्राप्त हुई थी। चर्म देह को अचिन्त्य ऐसी द्रुगसूक्ष्मता उस में विकसित हुई थी। और नियति पाश उसके सम्मुख अस्तित्वहीन था। नियति के लिए अब भी इधर वह अजेय था। वह जीवात्मा अन्तरिक्षमें भ्रमण करने लगा वैसे ही जैसे तरल वेणुनाद समीरणकी वीचिकाओं पर लहरता है, या प्रवासशील मेघखण्ड आकाश में टहलता है।...परन्तु उसके नयन सदा इस वसुन्धरा पर, भारत पर अविचल तन्मय एकाग्रता से तटस्थित बने थे।

अक्षय पुरुष पलकों को खोलता और मींचता था। और वही समय, पृथ्वी पर मनुज सहस्त्रावधि वर्षों के रूपमें गिनता था। कालोदधि पर तरल तरंगें उठती थीं और मिटती थीं—वस्तुतः ये हिलोर न कहीं से आते थे, न कहीं जाती थीं-तथापि माया मूढ़ मनुज उतने में ही दशसहस्त्र वर्षों की गणना कर जाता था। निखिल विश्व के असीम व्याल में इस धरती का मूल्य क्षुद्र कण का-सा भी न था, पार्थिव युग, काल की स्वल्प, सुरत हलचल के भी योग्य न थे। विश्व पुरुष पलकों को खोलता मींचता था,-मानव के सहस्त्र सहस्त्र वर्ष विलीन होते जाते थे। कालोदधि पर आभासात्मक हिलोर उठते थे,-मनुज उनकी संख्या कोटि वर्ष मानता था। काल अलसलता से निःश्वास छोड़ता था और भूलोक पर अपूर्व, अकल्पित को मिटानेवाले युग समाप्त होते थे,...अवतीर्ण होते थे,...सर्जित भग्न होता था और उसे जीवात्मा देखता जाता था,...इस धरा की ओर देखता था, भारत की ओर देखता था...पार्थिव चलित विचलन की ओर,...मनुज कर्तृत्व, आशा-निराशा, सृजन-विनाश के बचपने की ओर देखता था...।

यह गिरिग्राम ! इधर से उसने अन्तिम हिन्दोल, हिन्दोला। देशप्रेम के लिए विदेशियों के हाथों से देहान्त दण्ड पानेवाली पीढ़ी का वह पूर्ण-विराम था। यह किसी समय बन्दीशाला थी। उन अदय भित्तियों का, उस नारकीय पंजर का आज वहाँ नाममात्र भी आस्तित्व नहीं। जन-क्षोभ के अदम्य झंझा ज्वार ने वह नरक चिह्न कब का उध्वस्त कर पोंछ डाला। यह आत्माराम का भव्य, सुन्दर स्मारक ! देशबान्धवों की साकार श्रद्धा, आदर, साकार कृतज्ञता। यही है वह गिरिग्राम। इधर बसन्त की शतियाँ वासन्तिक हुईं, दशियों दिशाओं ने आशाओं को धवल बनाया। सहस्त्रावधि कोकिल—कुल कूकते कलरव अभिव्यञ्जित करते गये। अतीत का गिरिग्राम अब नहीं रहा। वर्तमान की वस्तु भविष्यत् में नहीं।—दश शतियों के पहले का दशशतियों के उपरान्त नहीं !

...असंख्यात जनसंघ उदीयमान हुए और अनुशासन पद्धतियाँ ऊपर उठीं और विलीन हुईं। क्षोभ से मतवाले समूह, आतंकदायी युद्ध, रक्तलांछना, अनर्थ ! प्रत्येक युद्ध, युद्धों का सर्वान्त करने के लिए, प्रत्येक रक्तपात, रक्तपात का सर्वान्त करने के लिए ही। नया समाज-संविधान, रचना, नया असन्तोष, नया राज्ययन्त्र, नया उत्पात, नया तत्वज्ञान, नया बलवा, निम्न ऊपर चढ़ते थे और और उर्ध्व नीचे ढलते थे। अर्वाचीन परिचय से प्राचीन भाते थे, और दूरस्त प्राचीन, अपरिचितों का वेष परिधान कर पुनरपि अर्वाचीन बन आते थे !...वही पानी पुनरपि सागर में।...पुनरपि उसकी भाँप। उसी भाँप की वर्षा।...उसी का जलसञ्चय। पुनरपि उसी का बाष्पस्वरूप !...यह नया पानी...यह पुराना...! कोलाहल, आक्रोश, मतभेद, उत्पात, बलवा, संघर्ष ! ये सब, सबकुछ भूमिके-जनसंघ के सौख्य के लिए !...सर्व क्रियाएँ उसी के उत्थान, उत्कर्ष और हित के लिए ! अपदार्थ, क्षुद्र मृत्तिका कण निवासी—क्षुद्रतम, हीन जंतुका अहं, ज्ञान, गर्व, ऐंठ, युद्धपैशाच्य, भावाभिनिवेष, द्वंद्व ! ...एक का उदय, दूसरेका अस्त ! एक का सृजन, दूसरे का संहरण ! ...कोकिल के अनेक कुल, गीत गुँजाते गये। ऋतुराज की कृपा से असंख्य कुञ्ज उत्फुल्लित होते गये। दिशाएँ अपरिमित बार प्रदीप्त हुईं और म्लान हुईं। अगणित वृक्षोंने अपनी गर्दनें हिलायीं और वे अघात से कंपित हुईं ! शतियों की सेनाएँ तरल गति से, अखण्डित अनुक्रम से, जो था उसे कहीं का ना बनाती हुईं, विनिर्मित विनष्ट करती हुई प्रभञ्जन गतिसे दौड़ती थी ! इन्हें कहीं अन्त अज्ञात था....! पार्थिव वस्तुजात को पूर्णविराम...था, कीर्ति की अमर लता को शिशिर था,...ज्ञान के गर्व को विनाश था,...साक्षात् पृथ्वी-गोलक के सम्मुख अन्त्य पुरुष था,....परन्तु शक्तियों की उस अविरत धारा को, भाग्यविधाता के उन असंख्य दर्शकों को आवश्यकता का अभाव नहीं था।

...गिरिग्राम ?—गिरिग्राम ? कहाँ गया गिरिग्राम ? और गिरिग्राम ही नहीं, अपितु आत्माराम का भी स्मारक कहाँ गया ? वह प्रचण्ड सुमञ्जित संगमरमर का उसका बुत कहाँ गया ?...यह स्मारक तो कई वर्षों से पूर्व विनष्ट हुआ। गिरिग्राम नष्ट होने से कई शतक पहले आत्माराम का वह स्मारक इतिहास पूर्व का माना गया, निरर्थक माना गया, और विस्मृत किया गया !...यह किसका बुत, यह किसका स्मारक, इसके बारे में सामान्य जिज्ञासा, कौतुहल न रखनेवाली, जिज्ञासा को भी निरर्थक

माननेवालीं पीढ़ियाँ जन्मीं,...विनष्ट हुईं और शनैः शनैः गिरते...झरते तिनकों...तिनको से, कणकण से वह स्मारक, वह अमर कीर्तिस्तम्भ.. ढह गया, नष्ट भ्रष्ट हुआ, मिटियामेट हुआ ! नवीन वीर जन्मे ! नवीन हुतात्मा गण !—उनकी कृतियाँ !...उनके अमर स्मारक ! उनकी अमर कीर्ति और उस शाश्वत कीर्ति की मृत्यु ! उस स्मारकों का विनाश !... उनके भी उज्ज्वल अतीत की अबोध अर्थशून्यता और विस्मरण ! जड़ शाश्वतों की अनेक श्रेणियाँ और उनकी क्षुद्र मृत्युयें ! और विधाता पुरुष ने केवल एक ही बार आँखें मिंचायी और पश्चात् वह भव्य, सुन्दर राजनगर,...वह गिरिग्राम कहीं का भी न रहा ! राजपथ, भुवन, प्रसाद, क्रीडास्थानक सब वीरान हुए भस्मित हुए...और भूमि ने जुगाली करते हौले हौले उन्हें उदरस्वाहा किया। उस स्थान पर अब वन बढ़ा था, और...पुनरपि वह वन्य पशुओं का निवासस्थान बना था। आत्मारामि को पहचाननेवाला उसके जयनारे गुँजानेवाला, उसका स्मारक उत्तिष्ठित करनेवाला वह मनुष्य समाज पानी के साथ कभी का विनष्ट हुआ...! और अन्ततः वह नगर भी नष्ट हुआ।

...और नहीं--एक नहीं,...तो ऐसी अनेक गर्वोद्धत नगरियाँ मिट्टी ने हजम की थीं ! प्रचण्ड प्रासाद,...दुर्ग, भवन ! जलौघ के द्वारा जिस प्रकार अड़िग प्रस्तर घर्षित होते होते मिटते हैं वैसे ही नियतिने और प्रचण्ड महाभूतों ने उन्हें घर्षित कर मर मिटाया था ! बरबादी खण्डहर की भित्तियाँ,...ढहे दुर्ग, विताड़ित पथ और अन्तमें मृत्तिका,...केवल मृत्तिका ! जो मृत्तिका ने अलंकृत कर सजाया था उसे मृत्तिका ने ही मिटा कर पचाया। निनेव्ह, परसी पोलिस; बॅबिलॉन...पॉम्पेई...मृत्तिका, मृत्तिका,...मृत्तिका !

...जीवात्मा अवलोकन करता था...अविचलता से, अपलक नयनों से, कौतुहलसे ! भाग्यविधाता सुस्त, आलसीपन से नाममात्र किञ्चित् हलचल करता था ! स्मारक लुप्त हुऐ ! गिरिग्राम का पतन हुआ ! दलों, वादों, तत्वज्ञानों, समाजों का उत्थान हुआ और पतन भी ! अबतक भारत का सौख्य सुदूर था ! अबतक मानव समूह का उत्कर्ष दूर था ! अबतक शान्ति सुदूर थी ! भारतका सुख ? भारत का उत्कर्ष ? भारत का प्रेम ? सुन्दर भारत के सम्बन्धी ? प्रसन्न भारत सम्बन्धी ?... नियति पुरुष ने पलकें खोलीं और...

...रक्त की नदियाँ, कर्णकटु स्वर, जनगणों के द्वंद्व, विनाश–प्रलय रणभेरियाँ--शान्ति...संघर्ष...विनाश...प्रलय...!! ... भारतके लिए, भारतके प्रेमके लिए, मानवसमूह के उद्धार के लिए !...भारत ? भारत ? सुन्दर प्रसन्न, सुजल, सुफल, भारत ! कहाँ गया ?...अरे कहाँ है वह ? मेरा--मेरा--प्रिय भारत ? कहाँ है,...गोबी के रेणु सागर की स्वाहा की संस्कृति और आत्मसात् किया जनसंघ ? मय सुधारों के अवशेष किधर हैं ? किधर है वह सारथ्य संस्कृति ? वे असुर-सुधार प्रतीक कहाँ गये ? वह सुमेर समाज किधर लुप्त बना ? मनुष्य ! करो...करते जाओ गिनती। कालप्रवाह के अथाह अपार सागर के एक जलकण को तो उठाओ, तोलो, सुलझाओ और गवेषणित करके दिखाओ ! देखूँ तो तुम्हारी सामर्थ्य ? तुम्हारी शक्ति की पहुँच ? तुम्हारे ज्ञान की छलाँग ? परिमित अपरिमित को कितना आक्रमित करेगा ? सान्त कभी अनन्त को गम्य करेगा ? जरा देखिये...

* * *

...पृथ्वी के गर्भ में होनेवाली क्षोभित गुर्राहट ! दिशाओं को अपनी जिव्हा लगाने उछलनेवाले अग्न्यरसों के फव्वारे ! ढेलों की भाँति गिरते जानेवाले हिम पर्वत ! सागर के प्याले में गिरनेवाले और गलपिघल जानेवाले ! रेंगनेवाले—खुरचनेवाले-जललिम्पित होनेवाले-नवोन्मीलित कमल की भाँति मन्थर गति से खिलते हुए खण्डप्राय देश ! प्रदीप्ति का घना गर्द अन्धःकार और गर्द अंधःकार से उत्फुल्लित प्रदीप्ति ! उष्णता को ठिठुरानेवाली शीत वर्षा और शीत खण्डोंपर प्रसृत होनेवाला प्रत्यूषा का दुकूल ! गरजनेवाली नदियों के वालुका वर्षा से बन्द बने मुख ! शुष्कता ने उलटाये हुये सरोवर के तल ! जयघोष से भरी विराट् रंगभू ! जानेवाले पात्र, आनेवाले पात्र ! मिटनेवाले वन, मिटनेवाले भूखण्ड, मिटनेवाले नगर और पुनरपि आगमन करनेवाले वे सारे ! प्राणान्तिक क्लेश ! प्रसूति के और मृत्युके ! असुरकाय, अजगर, केशाय, गजरूप, प्रचण्ड म्यास्टोडॉन, चमत्कारी, भयावह, अज्ञात पशुजगत्...उन सबों का अन्त ! पचीस सहस्र वर्षोंका प्रथम हिम पर्व ! पौन लक्ष वर्षोंका आन्तर हिम पर्व...! पचीस सहस्र वर्षोंका द्वितीय हिम पर्व ! दो लाख सालोंका द्वितीय आन्तर शीत पर्व... ! और अधिक पचीस सहस्र, वर्ष, अधिक एक लक्ष, अधिक पचीस सहस्र, अधिक पचीस सहस्र...तीसरा हिम पर्व, तीसरा आन्तर हिम पर्व...चौथा हिम पर्व, हिमोत्तर काल...एक सम्पूर्ण हिम पर्व ! सहस्रावधि वर्ष-लक्षावधि...कोट्यवधि...केवल एक हिम पर्व...असंख्यों में से एक ! ऐसे इन हिमपर्वों की और बढ़ती और ढलती राशियाँ, ऐसे पर्वोंकी !...लोह युगों की ! बाष्पयुगों तथा विद्युतयुगों की ! अणुयुगों की ! और पुनरपि वही वर्तुलाकार प्रवास ! प्रस्फोट, शान्ति, छाया, प्रकाश भुलानेवाली आग, ठिठुरानेवाली ठण्डक, सृजन, वर्धन, हनन ! युगपर्वों की निर्मिति ! युगपर्वोंका निर्माण ! अनन्त, अनाकलनीय....विधाता पुरुष के पलकों का,...स्वप्नमें खोलना--मींचना ! कालोदधिपर उठी हुई मरीचिका की लहर ! विराट स्वप्न ! प्रचण्ड सत्य ! भयावह क्रीडा ! खोपाड़ियाँ-कंकाल....! क्रोमॅग्नन् मानव पूर्वजके, निआन्दरथल, मॅग्देलेनियन्, पूर्व मनुज ! भूमिस्थ बनी हुई....गाड़ी हुई....मिटियामेट बने नगर ! प्रचण्ड आक्रोश—गर्जना, कोलाहल—तिनके के समान वनोंको उड़ा देनेवाला मारुत, सकल जीवजगत् भग्न करनेवाला, मृत्युमय हिमवायु, समुद्रको उफनानेवाली उष्णता ! गिड़गिड़ाकर ढहनेवाली वे संस्कृतियाँ, निःशेष और निष्प्रभ होनेवाला गर्वोद्धत विज्ञान....गुर्र... गुर्र...गिड गिड...तीव्र उष्णतासे उफाननेवाला पानी...प्रवेग से विचलनेवाले भूखण्ड...आस्तित्व धारण करनेवाले और समाप्त होनेवाले...। एशिया से संलग्न आस्ट्रेलिया, योरोप से सम्बन्धित आंग्लद्वीप ! अस्तित्व विहीन ब्रिटिश खाड़ी, अस्तित्वविहीन ब्रिटिशों के सुधार ! गड़बड़ाहटवाला भरापूरा सुखदायी ध्रुव प्रदेश, लहरो के नीचे डूबा हिमालय, गोबी का सुन्दर और सफल उद्यान...! नया प्रलय...नयी हिमवर्षा... जलोद्रेक गरजनेवाली ध्वनियाँ...घना अंधःकार...नया प्रकाश...पलकों का खुलना और मींचना...विभग्न आस्ट्रेलिया, विभग्न कालाखण्ड, जल आवाहित करनेवाली ब्रिटिश खाडी, आंग्ल-द्वीप का जन्म, पुष्पसुगंधित काश्मीर का मधुर मलय का, मंजु और वंग भू का, गंगा जमना का, सिंधुर–कावेरी का, मानवी जन संघों का, संस्कृतियों का, मन्दिरों-गोपुरों का, शिल्प–सौन्दर्य का जन्म ! चक्रों के आवर्त, उदय, उत्थान, ताण्डव,





शान्ति, संघर्ष...स्थिरावस्था...प्यारा भारत...मेरा भारत...अपना भारत...।

...जीवात्मा अवलोकित करता था। और एक असफलताकी आभासात्मक विचलन। मरीचिका का खिंचावनी तरंग, पलकोंका खुलना-मिटना...अदृश्य भानेवाली, स्थिर भानेवाली, अतर्क्य भानेवाली गतिमान, विराट, अकाट्य, चिरनवीन मचलन!....कर्कश ध्वनियाँ, फिसलन, पिघलन, घटन, टूटन...मेरा भारत...मेरा भारत...किधर है मेरा भारत?

कश्मिर की प्रफुल्लित मुखश्री किधर है? केरल का रूप वैभव किधर है? बंग प्रदेशीय तड़ागों के असंख्यात् दर्पण किधर गयें? सतपर्वतीय पारिजातक के मुखरित उत्फुल्ल वन कहाँ गये? लवपुरी किधर गयी? इंद्रप्रस्थ कहाँ है? दाक्षिणत्य मदुरा की वह अनुपमेय शिल्पसंपत्ति किधर है? उत्तरीय मथुरा के मन्दिर कहीं दृश्यमान होते नहीं? मारुतीय सिन्धु, पावन त्रिपथगामिनी, पवित्र वाराणसी, सफल मालव, पुरातन अवन्तिका, सागरवर्ती रामेश्वर, यह सारा, सारा कहाँ गया? अहे, किधर है मेरा भारत? क्या यही है वह भारत? वह मेरा सुन्दर मातृदेश क्या यही है?

...दीर्घ मरुत प्रदेश, उष्ण, असह्य, असुन्दर, कुरूप! कश्मिर का सारा सुमन सौन्दर्य अिधर शुष्क, सुर्ख बना! सफलता, नागरता, सांस्कृतिकता, इसके उदर में स्वाहित! वीरान, वञ्जर, भयावह, निर्जन, विस्तृत... हिमाचल घर्षित होते गया, नवते गया और चट्टान बना! वह उसकी गगनस्पर्शी ऊँचाई! वह उसका विशाल विस्तार! कुछ नहीं! अब इधर कुछ भी शेष न बचा! केवल प्रदीर्घ विवरका विस्फारित मुँह! दन्तभग्न मुखसम-सा! केवल एक आतंक करनेवाली चट्टान! भारती के सौन्दर्य का वह किरीट भञ्जित हो चुरमुर हुआ! प्रवेगवान शीत प्रभञ्जन! असह्य शीत,...असह्य उष्णता,...उड़ती वालू, झंझावात! नगरोपरान्त नगर, जनसंघोपरान्त जनसंघ,...सौन्दर्य की सारी सजावट कृष्ण-म्लान होती गयी, ढलती गयी, खण्डित होती गयी! उन्मत्त सागर ने मर्यादाओं को अशेष किया! देखिये यह उसने प्राचीर स्वाहा किया! निःशेष बना बंग! ताण्डव हिलोरों ने स्थान स्थान के ढहाए भूभाग शीत,...चेतनाहीन,...ज़ले भूने, वन—घर्षण से नष्टप्राय बने पर्वत, खुला, निष्पर्ण, निर्जल, ठिठुराया, विस्तृत, प्रदीर्घ, लम्बा, असह्य, अपरिचित, असुन्दर, निर्मनुष्य! कदाचित् कहीं यहाँ तहाँ वनचर, कदाचित यहाँ तहाँ कहीं श्वापद—दोनों भी वन्यस्थ!

—यह भारत? यह मेरा भारत? कहाँ गये इधर के नागर जनसंघ? वह सुसंस्कृत समाज किधर चला गया? कहाँ है उसका क्षोभ, लोभ उनका कर्तृत्व और उनका शौर्य? वह चिरपुरातन मानववंश किधर गया? मिट चुका, उठ गया, या निर्वासित बना? किसी नवीन समशितोष्ण प्रदेशकी ओर? पुनरपि उत्तरीय ध्रुवकी ओर? क्या वहीं उसने अपना बसेरा किया? अथवा वह विराट प्रलय के एक प्रचण्ड आघात से समूल विनष्ट हुआ? जिन से मैंने प्रेम किया...वे जनसंघ!...वे देशबान्धव! कहाँ गये वे? और यह देश! यह मेरा देश! वीरान...निर्जन!

—अहे, यह मेरा देश नहीं! यह कुरूपता मेरे देशकी नहीं! यह उजड्डपन, यह खण्डहरपन, यह वन्यावस्था, यह तीव्रा वायुमान, यह तो मेरे सुन्दर मातृदेश का नहीं! यह शापित भूखण्ड मेरा! सुन्दर नगरियोंका,...सुसंस्कृतिका,...सुफलताका,...वनोपवनोंका मेरा भारत किधर है? नियति के—जिव्हालौल्य ने क्या सबकुछ नदारद किया? संस्कृति की वह चमचमाट, वह तेज, वह स्वरूप, वह दिव्याकृति! तो क्या मैंने इसी से प्रेम किया? क्या इसीने मुझे अनुबद्ध किया था? इसी नश्वरताने...इस संकीर्णताने? क्या इसीके सौख्यके लिए मैं मरमिटनेके लिए तैयार हुआ था? क्या वही था मेरा निदिध्यास? इसी स्वरूपका? मैंने अपना मिट्टीका छोटा घर त्यागा, और इस मिट्टीके ही बड़े घरमें जा घुसा! मैंने मृत्तिका की अपनी देहका मोह छोड़ दिया और मिट्टीपर फुदकनेवाले अगणित पुतलों की आसक्तिमें में छटपटाया! क्या यही थी मेरी विशालता? क्या इसी के मोह से मैं घेरा गया था?...इसी मायापाश से? पार्थिव मर्यादाओं से अनुबन्दिस्त इस मृण्मय मानचित्र से? और ऐसा मानचित्र कि जो शाश्वत नहीं, अमर नहीं,...स्थिर नहीं, अपितु जो तोड़ा गया, कुरेदा गया, भक्षित् किया गया! पानी ने जो डुबाया, शिशिर से जो ठिठुराया, और उत्ताप से जो भस्मीभूत हुआ!...क्या उसीने मुझे जकड़कर रखा था?

...अनेक भूखण्डों की भाँति एक भूखण्ड!...केवल एक कण! और उसीका ही एक अंश! उसका अशाश्वत स्वरूप,...अशाश्वत अस्तित्व! उसीने मुझे कुण्ठित कर रखा था-और यहीं! जो इतना नगण्य, इतना नश्वर,...इतना परिमित और इतना नाशवंत है, उसने! हाँ, हाँ, अन्ततः वह भावना,...वह कल्पना, वह विशालता भी—विराटता की परिमित मर्यादित है! इधरसे अवलोकन करने पर...आगमन करनेपर,...विश्व के नापदण्ड से नापने पर!...वह प्रकाश नहीं था, वह प्रेम, प्रेम नहीं था, वह ज्ञान विज्ञान नहीं था, वह सुन्दरता सौन्दर्य न थी, वह शाश्वतता नहीं थी। और तेज, ज्ञान, रूप, सौन्दर्य स्वरूप, शान्तिस्वरूप दिशाओं का संबल ले ऊर्ध्वगीय बने हुए मुझको ...क्या उन माया, मोह, कलुप रज्जुओंने यहीं भी मुझे अवरुद्ध कर रखा है? बाध्यपाशों के अस्तित्व की संवेदना जीवात्मा को खली और उसके पाश छिन्नभिन्न हुए। पुनरपि निःश्रेयस् का द्वार खुल पड़ा! संवेदना...संवेदना! अन्तिम की संवेदना! और असीम, अनन्त, शाश्वत से एकात्मकता, एकतानता—विश्वात्मा की स्वरूपता! सायुज्यता...!मोक्ष...निःश्रेयस मुक्ति!

नीलम, लाल, जामुनी, असित प्रकाश के स्रोत, ग्रह गोलकों की चमकती हिमांशु ज्योतियाँ, उनसे फेर लगानेवाले आसक्त मरमर संगीत के सर्वव्यापी स्वर, आकाश गंगा में प्रफुल्लित होनेवाले तारक-सुमनों के पौधे...दिव्य सौरभ, दिव्य तेज! जीवात्मा को प्राप्त अभिज्ञान! जिस क्षण उसमें यह नवीन संवेदना सजग हुई उसी क्षण उसकी स्थूलता झर गयी,...तंतुपाश टूट गये! वह परिपक्व बना, मुक्त हुआ....विश्वात्मा में अकात्म हुआ!

● ● ●

अनुवादक : *अमिता पानसरे*

: लोक कथा :

कहाँ राजा भोज ?



[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]



अनङ्ग राग

दीपक बन कर आओ,
आओ, दीपक बन कर आओ
अङ्ग में नव उमङ्ग का
अनङ्ग राग बजाओ—

आग लगाकर ज्योत जगाकर
युगसाञ्चित यह तिमिर भगाकर
ज्वालाओं के रुद्र स्पन्द पर
स्मर हर छन्द सजाओ—

जलते जलते और जलाते
तन मन के कण-२ पिघलाते
लहर जहर की सहज बुझाते
दुस्तर स्तर पर जाओ—

इस काया की कर दो छाया
स्वर में भर दो ज्योतिर्माया
जीवन की यह कुटिल समस्या
गान धुन में सुलझाओ—३

• • •

बा. भ. बोरकर

“रजा, नहीं मिलेगी!” “सौ रुपये का नोट!”
“घी लाइए”
“जाने, आज क्या हो जायगा?”
खर्च...खर्च! चार बच्चे!
सफेद-पोश घरमें लडका
नहीं चाहिए था—



और लडका हो गया!

— रामानन्द सागर

रास्तेभर उसके मनमें उथल पुथल होती रही—

सागर तरङ्गोंकी तरह एक अनन्त उथल पुथल, और वह सागर मानों व्यथाका सागर हो, जो नित नए रङ्ग बदल रहा हो। कभी अशान्ति और विद्रोह का विष उसे नीला बना देता, और कभी मनमें उठती हुई क्रान्ति के अंगारे उसे रक्तान्वित कर देते। उस वेदना सागर का आदि कहाँ था और अन्त कहाँ? इसे वह न जानता था। उसकी विशाल तरङ्गें इस जीवन की सीमाओं को चीर कर पिछले कई जन्मों के उस पार तक वढती दिखाई देती थीं। यदि ऐसा न होता तो क्या कारण था कि वह किसी धनवान कुलमें न पैदा होकर एक निचले दर्म्याना तबके घर में पैदा हुआ था। वह लोग जिनकी ट्रेजेडी यही है कि वह न तो निर्धन मज़दूर वर्ग में शामिल होकर अपनी निर्धन का प्रदर्शन कर सकते हैं और न उनके पास पर्याप्त धन होता है कि वह धनी मानी लोगों की तरह अपने स्तर की ऊँचाई कायम रखने के लिए वेदरेज़ धन का व्यय कर सकें।

परन्तु इस जन्म में वह उन ऊँचे तव के वालों से भी ऊँचा होना चाहता था। वह उनसे बड़ा धनी होना चाहता था। यहाँ तक कि आज जिस के पास वह क्लर्क था, वह चाहता था कि एक दिन वह उसका भी सेठ हो। और इसीलिए वह मालिक की हर अनुचित बात पर कड़क उठता था। चिठ्ठियों पर दस्तख़त करने से पहले मालिक प्रायः मित्रमंडली के साथ चाय पीते-२ गपशप में वहुत समय लगा देता था। उसका कहना था कि उस वक्त तक इतना थक जाता था कि बाकि काम करने के पहिले जरा ‘रिफ्रेश’ होना चाहता था—परन्तु क्लर्क बेचारे की डयूटी तो ‘रिफ्रेश’ होने की नहीं थी। और मालिक की गपशपका यह नतीजा होता कि प्रायः हर रोज उसे दफ्तर के समय से एक घंटा देरीसे छुट्टी मिलती। चुनांचे मालिक की चाय के समय वह मनही मन अपनी थकी थकी आँखोंसे भविष्य के सपने देखा करता था...‘जब यही मालिक उसके सामने आपने कारोबार में मदद के लिए लाख दो लाख रुपये माँगते आएगा तो वह कहला देगा कि मैं जरा ‘रिफ्रेश’ होकर बात करूँगा......’

और यह सपने प्रायः मालिक की डाँट सुनकर ही टूट जाते। तब उसके मन में जाने कैसी क्रान्तियों की ज्वालाअें भड़क उठती...तब वह उचित अनुचित, हर प्रकारकी, निजी और सामूहिक क्रान्तियों के नक्शे दिमाग में बनाता रहता...निजी प्रश्नों के तार सामूहिक प्रश्नों में उलझ जातें...कब यह अन्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था बदलेगी? उसके लिए किस प्रकार की क्रान्ति करनी होगी...? गाँधीजी की शान्ति से यह हो सकेगा अथवा रूस की तरह खून बहाना पडेगा...एक में जाने कितनी देर लगे...दूसरा इतना अमानुषिक है कि अन्तमें जाने उसकी सफलता कितनी विफल सावित हो......

इसी प्रकार के नक्शे बनाता, वह आज भी सडक पर चला जा रहा था। मालिक ने उसकी दो दिन की छुट्टी मंजूर नहीं की थी। उसने किसी बडे फर्म में नौकरी के लिए प्रार्थना पत्र भेजा था और उसे विश्वास था कि भविष्य के इतने बडे आदमी को वह इन्टर्व्यू के लिए अवश्य बुलाएँगे। इसी विश्वास के कारण वह अभी से अपनी छुट्टी का प्रबन्ध करना चाहता था। परन्तु कमीने मालिक ने छुट्टी अस्वीकार कर दी ‘कोई बात नहीं...’ वह सोचने लगा... ‘मैं नौकरी छोडकर चला जाऊँगा। आखिर मैं अपने भविष्य की बलि ऐसे कमीने आदमी की जिदपर तो नहीं चढा सकता—’.

अचानक पास के गड्डे में से कीचड़ उछाल कर एक छोटी सी कार निकल गई। उसने उछल कर उसने अपने सफेद कपड़े बचाने की कोशिश की...अभी तो दो दिन पहले ही उसने दफ्तर की यह पोशाक बदली थी। अभी तो एक हफ्ता उसे इसकी सफेदी को बनाए रखना था। सफेद पोशी की समस्या काली रात की तरह कितनी भयावनी है!

अनुक्रमणिका

सामने ही चौक में ट्रैफिक का सिपाही नीली वर्दी पहने खड़ा था। जिसे सफेद कपड़ों के मैला हो जाने का डर नहीं था। उसे सिपाही के नीले कपड़ों से ईर्ष्या होने लगी। 'काश, हमारी सरकार भी चीनी सरकार की तरह यह हुक्म जारी कर दे कि सब लोग नीली जीन के कपडे पहने तो मध्यमवर्ग के सफेद पोशाकों उस नीलवर्ण में कितना सहारा मिले—जैसे कोई भक्त नीलकण्ठ के चरणों में पहुँच जाए। परन्तु अभी सफेद और नीले रंग को एक कर देनेवाला कोई नीलकण्ठ हमारे देश में कहाँ है ?'

चौक के बीच दोनों में विसल दबाए अपने हाथोंको घडी के पुर्जों की तरह अथक गति से हिलाता हुआ सिपाही खडा था। उसके चारों तरफ से मोटर कारें देखनेवालों की आँखों में धूल झोंकती हुई भागी जा रही थी। लैण्डो वॉडी, देसिंग, टूरिंग,—लखनवी रंडियोंकी-सी नुकीली, रंगदार और चमकदार—हर प्रकार की कारें, टैक्सियाँ, बसें सिपाही के चारों ओर आफ्रिका के आदमखोरों की भाँति नृत्य करती शोर मचा रही थी। वह उन सब का रक्षक था—उन्हें दुर्घटनाओं से सुरक्षित रखनेवाला..। परन्तु क्लबों में पी...पिलाकर आनेवालों साहब, जो पहलू में बैठी हुई लिपस्टिक को बारबार ठीक करती हुई युवतियों के जुड़े लगे मोंगरे के हारों को सुगंधि के लिए बार-बार उनकी ओर झुकझुक जाते थे—इन सबके बीच फंसा हुआ वह रक्षक स्वयं कितना अरक्षित था—सिपाही से उसकी ईर्ष्या खत्म हो गई !... वह सोचने लगा— कि किसी एक कार की मस्ताना चाल में केवल एक लड़खडाहट...और नीले कफ़न में लिपटा हुआ एक मृत शरीर टैनिस के गेंद की तरह सडक के किनारे नाली में जा गिरेगा...अगर मोटर को भी थोडी बहुत चोट आ गई तो बीमा कम्पनियाँ बडे इश्तहारी तुम तराक के साथ किसी साहब को उसकी एक लड़खडाहट के सद के हजारों रु यें का 'पुरस्कार' देंगे, और दूसरी ओर एक विधवा...एक विधवा अपने बच्चों को लिए अफ़सरों के सामने भिखरियों की तरह रोती फिरेगी...। और फिर कई महीनोंकी दफ्तरी कार्रवाइयों के बाद उनके लिए आधी तनख्वाह पेन्शन मंजूर हो जायगी—जिस पूरी तनख्वाह से पहले भी उनका पेट नहीं भर पाता था...। उससे आधी तनख्वाह पर वह लोग किसी प्रकार जीवन निर्वाह करते रहेंगे...? और इस चौक में एक नई मूर्ति नीले कपडे पहने घडी के यंत्रों की तरह हाथ हिलाती होगी—ताकि साहब लोग सुरक्षित रहें और स्वयं उसकी रक्षा...?'

वह सोचने लगा कि 'कब तक इसी तरह होता रहेगा...हम स्वयं अरक्षित रह कर भी इन लोगों की रक्षा कब तक करते रहेंगे...? इनकी मोटरों की रक्षा, इनकी मोटी मोटी कैश बुकों और लैजरों की रक्षा ...और उसके बदले में हमें माँगने पर दो दिन की छुट्टी भी नहीं मिलेगी—हमारी विधवाओं और बच्चों को हजार सिफ़ारशों के बाद आधी तनख्वाह की पेन्शन मिलेगी...परन्तु यह बच्चे क्यों पैदा होते हैं ? जिन्हें तन से नंगा और पेट से भूखा रहना पड़ता है...उन बच्चों की उत्पत्ति ही क्यों...?'

इस पर उसे अपने बच्चों की यादें आने लगीं। 'चार बच्चे...और यह पाँचवाँ, जिसकी उत्पत्ति हिसाब से अभी एक डेढ महीने के बाद होनी चाहिए, परन्तु पत्नी की कमजोरी के कारण जो पिछले हफ्ते से ही उतावला मालूम हो रहा है। बड़े बच्चोंको स्कूल जाते समय तो सफेद कपड़े होने ही चाहिए, इसलिए रातको उन्हें कपड़ों के बिना ही सुलाना पड़ता है। तिस पर प्रान्तीय सरकार ने फीस बढ़ा दी है। इसके बदले घरमें चाय के लिए मँगवाया जानेवाला दूध आधा कर देना पड़ा... यूँ तो शिक्षा मंत्रीने बड़ी उदारता से घोषणा कर दी है कि गरीबों के लिए फीस मुआफ़ भी हो सकती है...परन्तु वह तो यह घोषणा नहीं कर सकता कि यह गरीब है...वह नीले वस्त्र नहीं पहन सकता—उसे तो प्रवञ्चना की विष नीलिमा को छुपाने के लिए सफेद कपड़े पहनने पड़ते हैं। उस पर वह सबसे बड़ी लड़की की शादी जिस घर में करना चाहता है, उनका लड़का भी तो उसी स्कूलमें पढ़ता है। उन्हें पता चल जाय कि इसने फीस मुआफ़ करने की दरख्वास्त दी है तो वह क्या कहेंगे—? भले ही वह भी इसी की तरह सफेदपोश होंगे, परन्तु जब तक समाज में किसी के स्तर का निर्णय पैसे के बाह्य प्रदर्शन के अनुसार होता रहेगा, तब तक वह इस नक़ली सफेदी का चूना अपने चेहरे से नहीं उतार सकता...।'

इस प्रवञ्चना की बात सोचते सोचते उसे कई प्रकारकी मिथ्या खुशियोंका आभास होने लगा। जैसे नया बच्चा होते ही चारों ओर बधाई बजने लगेगी भाँड...हीजडे-नाई-धोबी-डूम, भंगी......सब इस खुशीके मौकेपर इनाम माँगने आएँगे...'खुशीका इनाम' और यह उसे देना ही पडेगा। भले ही पत्नी के लिए प्रसूतिके दिनों में घी न लाया जाएँ......परन्तु उसे खुशीका प्रदर्शन तो करना ही होगा...पत्नी की आयु वर्ष कम हो जाए—वह रुग्ण हो जाए—परन्तु उसका कारण तो कोई नहीं जानेगा। ऐसी खुशीके आडम्बर की दुखदायी बातें सोचते सोचते उसे ख्याल आया कि कभी-कभी मरे हुए बच्चे भी तो पैदा हो सकते हैं। और यह बच्चा तो नियत समय से डेढ़ महीना पहले पैदा हो रहा है। अवश्य ही मरा हुआ होगा। उसे जैसे थोडीसी शक्ति मिली...

• •

घरमें पाँव रखते ही उसने देखा कि पत्नी का चेहरा दर्द के मारे उतरा हुआ है। वह अँगीठी फूँकनेका असफल प्रयत्न कर रही थी। बढ़े हुए पेटके कारण वह झुक न सकती थी। उसके पासही एक डेढ़ सालका बच्चा रीं-रीं कर रहा था।

"क्या आज तकलीफ़ ज्यादह है ?"

"कुछ है तो सही—आप अभी तक कुछ भी सामान नहीं लाए न आपने दाईको कहला भेजा है—"

मनमें वह सोचने लगा कि...दाई कितनी गंदी होती है...मैं तो तुम्हारे लिए एक खास नर्स का प्रबन्ध कर दूँ...परन्तु क्या करूँ...? खैर ! थोडे दिन और सही—'इक जरा सब्र कि फ़रियाद के दिन थोडे है—' किसी कविकी यह पंक्ति मनही मन दुहराते हुए उसने पूछा :

"अच्छा क्या-क्या लाने को कहा था—? जायफल, मीठा तेल, और......"

अनुक्रमणिका





"सोंठ, गुड़, खाँड और घी..."

"घी...?" वह चौंका, परन्तु चुपचाप चला......

● ९

दूकानदार ने पुड़ियाँ बाँधते बाँधते हिसाब करके कहा—

"आठ रुपये..."

"आठ रुपये...? आठ रुपये किस तरह...?"

"देख लीजिए...आपके सामने सारा सौदा धरा है—यह एक रुपये का घी...एक रुपये का..."

"रुपये का घी—? नहीं भाई, घी रहने दो; मेरी जेब में फुटकल सात ही रुपये हैं, बाकी सौ का नोट है..."

यह सौ का नोट कहना जैसे हर सफ़ेद पोश के लिए अत्यावश्यक होता है। कई बार मनमें आता है कि इस निम्न मध्यमवर्ग का नाम ही 'आडम्बर वर्ग' रख दिया जायें...

दूकानदार ने पूछा: "कुली तो चाहिये ना...?"

"कुली...?" उसे जैसे कुछ लड़ गया हो। या जैसे दूकानदार ने पूछा हो कि—'अभी एक कोड़े की चोट सह सकते हो?' उसने चाहा कि सारा सामान अपने सिरपर उठा ले और दूकानदार से कह दे कि 'अभी और कितने कोडे मारोगे...यह सब कोडे ही तो है...यह जायफल, यह सोंठ से बने हुए और घी शक्कर में भींगे हुए कोडें...यह अधनंगे अधप ले बच्चे... और उसपर यह कुली—! वेगाना कुली क्यों...? हम आखिर बच्चे किसलिए पैदा करते हैं? यह बच्चे...जिन्हें पढ़ाने पालने का बोझ विदेशों में अपनी-अपनी सरकार के जिम्मे होता हैं, और फिर भी वहाँ संतति-निग्रह के सरकारी केंद्र होते हैं। परन्तु हमारे यहाँ, यदि बच्चे कुली भी बन सकें, तो भी शायद देश का उद्धार हो सके—परन्तु हमारे बचे तो मानवों की नहीं, बल्कि विञ्चना और आडम्बर की सन्तानें हैं...वह स्वयं भी तो कोड़े ही हैं, उसपर सरकार फीसें बढ़ा कर परीक्षा में उतीर्ण होनेवालों की प्रतिशत संख्या उत्तरोत्तर कम कर के उन कोड़ों को जैसे तैल में भिगो रही है...ताकि चोर का निशान अमिट हो सके—'

उस रात उसे कई वार जागना पडा। पत्नी को तकलीफ अधिक थी। यह असमय की पीडा एक ही शुभ समाचार की सूचक हो सकती थी—अर्थात् बालक जीवित नहीं होगा!

पत्नीने पूछा था: "घी क्यों नहीं लाए...?"

"दूकानदार के पास नहीं था! उसने कहा है कल देगा..." परन्तु मनमें वह सोच रहा था कि बालक ही मुर्दा होगा...तो फिर घी क्या करेगी, वह तो न तेरा दूध पिएगा—न मेरा लहू".

दफ्तर जाते समय उस बेचारी ने कहा—"आज दफ्तर ने छुट्टी ले लेते तो—!"

"आज नहीं ले सकता" मुझे अगले हफ्ते छुट्टी लेते तो नई नौकरी के लिए इन्टर्व्यू पर जाना है और उसपर तो हमारा सारा भविष्य निर्भर है; बस यह दिन निकाल लो—घबराओ नहीं—थोडे ही दिनों में हम बड़े आदमी होने वाले हैं।"

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

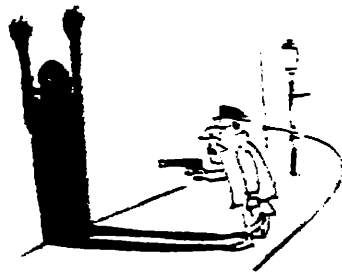
[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

• •





अहो, वे सुन्दर दिन बीते

(कुमारी शान्ता ज. शेळके जी की कविता का [illegible])

अहो, वे सुन्दर दिन बीते !
[illegible] के मत्त प्रहर वे सिमट गये [illegible] !
शान्त, मुग्ध तब था [illegible],
मन था मृदुल, मधुर, [illegible],
[illegible] की रूप-माधुरी, बिखरी [illegible] !
था अपूर्व सुषमा निशि-[illegible],
गहन नीलिमा नील [illegible],
अरुणोदय के सुखद करों के [illegible]
तृण-पत्रों से, वन [illegible],
जललहरी से नभ कुसुमों [illegible],
स्नेहलताका स्पर्श मनोहर, सहज [illegible] !
खिली कली का मृदु चुम्बन,
पुष्पदलों का वह उर [illegible],
संध्या के मधुरंग बदलते हर्ष [illegible] बीते !
देखा अवनि गगन का [illegible],
जहाँ नहीं दुख का था [illegible]
वह वात्सल्य भावना लौकिक मिली [illegible] से ।
अभी कहाँ है वह सम्मोहन ?
हुआ विषादपूर्ण यह जीवन,
बचपन बीता आज जगत का रूप [illegible] बीते ।

सरस्वती कुमार 'दीपक'

• •

"हॅलो, हॅलो!"

"जी, मैं हूँ सुपरिटेंडेंट हजारीबाग सेंट्रल जेल"

"क्या बात है?"

"अंधेर हो गया, छः राजबन्दी जेलसे भाग गए"

—उधर जेलके भीतर, जोरोंसे शोर हो रहा ह



१९४२। दीवाली। संध्या ७॥ बजे।

विहार का हजारीबाग सेन्ट्रल जेल।

जेल के भीतर—

लगभग दो दर्जन राजबंदी दीवाली मना रहे हैं।

बीच में एक खूबसूरत किशोर हाथ में थाल लिये—थाल में बयालीस दीपक जगमग कर रहे—बड़ी शान से थाल को नचाता हुआ गाता है—

"दीवाली, फिर आ गई, सजनी!"

बीस-पच्चीस नौजवान उसे घेरे हुए। कोई थाली पीट रहा, कोई बाटी बजा रहा, कोई लोटा टनटना रहा और बीच के उस किशोर के स्वर में मिलाकर एक-एक गा रहा–

"दीवाली, फिर आ गई, सजनी!"

ढाई सौ राजबन्दी हैं यहाँ। चीफ मिनिस्टर हैं, मिनिस्टर हैं, स्पीकर हैं, चेयर मैन हैं, विधायक हैं, विधाता हैं, नेता हैं। काँग्रेसी हैं, सोशलिस्ट है, फारवर्ड ब्लाकिस्ट हैं, कम्यूनिस्ट हैं। सभी इस अनुपम दीवाली-उत्सव को देख रहे हैं, हँस रहे हैं, तालियाँ पीट रहे हैं। बहुत से लोग धीरे-धीरे इस उत्सव में शामिल भी होते जा रहे हैं।

रंग जमता जा रहा है, झुंड बढ़ता रहा है!

जेलर देख रहे हैं, नायब जेलर देख रहे हैं। जमादार साहब तो इतने भावावेश में आ जाते हैं कि तालियों का गुच्छा झनझनाते हुए वह भी गाने लगते हैं—

"दीवाली फिर आ गई सजनी!"

और उधर, जेल के उस कोने की दीवार के नीचे, जहाँ जामुन के लम्बे पेड़ की छाया दीवार पर गिरती है—

दो आदमी एक टेबुल लाकर रख देते हैं।

उनमें से एक टेबुल पर चढ़कर दीवार को पकड़ता हैं। दूसरा उछलकर उसके कंधे पर चढ़ जाता है।

तब तक चार आदमी और वहाँ आते हैं। उनमें से एक पहले आदमी की कमर पर लात रखता हुआ दूसरे की कमर को पकड़ कर उसके कंधे पर चढ़ जाता है!

वह कंधे पर खड़ा होता है। जब दीवार का ऊपरी छोर उसकी पहुँच में है। इधर-उधर देखता है, फिर कंधे से दीवार पर जाकर अपने को दीवार के उस पार खिसका देता है।

सट्-सट्-सट्-सट्! छाती में कुछ रगड़; ठुड्डी में कुछ खरोंच। वह दीवार के उस पार जमीन पर खड़ा है!

इधर-उधर चौकन्ना देखता है, कोई नहीं। वह लेट जाता है।

उसकी कमर में कपड़े को लिपटा कर बना हुआ एक रस्सा बँधा है। इस कपडे के रस्से का एक छोर दीवार के उस पार जेल के अन्दर हैं।

यह रस्सा अब कमंद का काम कर रहा है। इस कमंद के सहारे दूसरा आदमी दीवार के इस पार आया।

तीसरा आया।

चौथा आया।

पाँचवाँ आया।

छठा भी आया!

छः कैदी जेल की दीवार पार कर बाहर निकल चुके हैं, सिर्फ छः मिनिट में।

हाँ, सिर्फ छः मिनिट में।

आज दो महीने से एक सेल में इसी प्रकार टेबुल लगाकर, उसपर आदमी पर आदमी खड़ेकर, फिर कमंद के सहारे चढ़-उतर कर, वे लोग अभ्यास कर रहे थे।

पाँच से सात मिनिट के अन्दर काम पूरा कर लिया जा सकता है, यह था उनका अभ्यास।

आज इन्होंने, छः मिनिट में ही समाप्त कर लिया।

जिस जेल को काँग्रेसी सरकार ने अभेद्य अनुलंघनीय समझा था, उसे छः राजबंदियों ने छः मिनिट में पार कर लिया!

उधर जेल के भीतर, जहाँ गैस की लाइट जर्रा-जर्रा चमचम कर रहा है, जोरों से शोर हो रहा है—

"दीवाली, फिर आ गई सजनी!—"

इधर जेल के बाहर, जहाँ इस अमावस्या का सूचि-भेद्य अंधकार में भूत की तरह!

दूसरे दिन ढाई बजे दिन को पटना सेक्रेटेरियट में आल क्लियर टेलिफोन घनघना उठता है—

अनुक्रमणिका

"हॅलो, हॅलो!"

"जी, मैं हूँ सुपरिंटेण्डेण्ट हजारीबाग सेन्ट्रल जेल।"

"क्या बात है?"

"अंधेर हो गया; छः राजबन्दी जेल से भाग गये!"

"कब भाग गये?"

"जी, अभी पता चला है?"

"दिन में भाग गये?"

"जी, पता नहीं चल रहा है, कब भागे? हम पता लगा रहे हैं, शायद भोर में भागे हों।"

"कैसे भागे?"

"उसका भी पता हम लगा रहे हैं!"

"वे लोग कौन थे?"

"उनमें एक थे जयप्रकाश नारायण?"

"हलो, आप कह रहे हैं जयप्रकाश नारायण! सोशलिस्ट नेता?"

"जी, वही!"

और उसके बाद-बिहार के सारे सूबे में खलबली थी। हर जेल में सूचना दी गई, होशियार रहो, कोई व्यापक षड्यंत्र है! हर जिले में खबर की गई, होशियार रहो, न-जाने क्या हो!

राँची में फौजी पड़ाव है। जापानी आक्रमण से बचने के लिए हिन्दुस्तान का सेकेन्ड लाइन आफ डिफेंस! हजारीबाग से सिर्फ चालीस मील पर है वह पड़ाव।

वहाँ खबर की जाती है, इन क़ैदियों को पकड़ने में मदद दो!

ऊपर हवाई जहाज मँडरा रहे हैं—जंगल, पहाड़, मैदान सब जगह गृद्ध दृष्टि से देखा जा रहा है,—भगोड़े क़ैदी कहाँ हैं?

हजारीबाग से बाहरी दुनिया में जानेवाली सभी सड़कों और राहों पर पहरे पड़ रहे हैं।

हजारीबाग सेन्ट्रल जेल से छः क़ैदी भाग गये हैं। जो उन्हें पकड़ा देगा, उन्हें इक्कीस हज़ार रुपये इनाम मिलेंगे। हर क़ैदी पर इनाम की रक़में यों है—

जयप्रकाश नारायण	—	५०००)
योगेन्द्र शुक्ल	—	५०००)
रामनन्दन मिश्र	—	५०००)
सूरजनारायण सिंह	—	२०००)
गुलाली सोनार	—	२०००)
शालिग्रामसिंह	—	२०००)

फौज, पुलिस, जेल-तीनों विभाग के लोग इन क़ैदियों को पकड़ने के लिए एंडी-चोटी का पसीना एक कर रहे हैं। कुछ ऐसे सज्जन भी, जो कुछ रुपयों पर देश को भी बेंच सकते हैं!

सड़कों पर, राहों पर चलनेवाले एक-एक आदमी को गौर से देखा जाता है!

किन्तु, उनके सारे प्रयत्न व्यर्थ जा रहे हैं, व्यर्थ जा रहे हैं!

जब जेल की दीवार पार कर ये छः बंदी चले—जल्दी में वे जान न सके, किधर जा रहे हैं।

यह पहाड़ी ज़िला—चारों ओर जंगल-जंगल —कहीं-कहीं बस्तियाँ।

तय था, जेल से निकलकर वे एक निश्चित पथ से बढ़ेंगे और यहाँ से सात मील दूर के एक गाँव में जाकर दम लेंगे। वहाँ से सवारी का प्रबंध करके वे बाहर जायँगे—कहाँ?

निश्चय किया गया था कलकत्ता पहुँचने का।

किन्तु, यहाँ तो रास्ता ही भूल गया।

जंगल-जंगल वे बढ़ रहे हैं और जब पीछे की ओर देखते हैं, एक पहाड़ी पर उस बनी जेल के सेन्ट्रल टावर की रोशनी देखते हैं।

यह रोशनी उन्हें कितना भयभीत करती है।

कि अचानक गुर्राहट!

अरे, क्या यह शेर है?

हाँ, शेर ही तो!

बिहार के शेर श्री. योगेन्द्र शुक्ल आगे बढ़ते हैं, उसी भयानकता से ललकारते हैं। लगता है, शेर ने शेर की क़द्र की। उसने रास्त खाली कर दिया, वे आगे बढ़े!

उस दिन जब दुनिया दीवाली मना रही थी, जेल में भी बारह बजे तक 'दीवाली, फिर आ गई सजनी' की धूम थी, ये छः राजबंदी घनघोर जंगल में, घनघोर कालेघुप्प अंधेरे में आगे बढ़ रहे थे!

इनके पैर खाली थे, कपड़े भींग गये थे।

जूतों और कपड़ों की गठरी जेल में ही रह गई थी। ज्योंही बाहर निकले थे, एक नाले में गिर गये थे। पैरों में अब काँटे चुभ रहे थे, सर्दी की वजह से दाँत किटकिट बज रहे थे, तो भी वे बढ़ते जा रहे थे!

रातभर चला किये वे!

कहाँ जा रहे हैं, कुछ पता नहीं! ध्रुव-नक्षत्र को देखकर अपने जानते उत्तर दिशा की ओर बढ़ रहे हैं!

आकाश में लाली फैली उषाकालीन, मंद हवा चलने लगी तो इनकी आँखों पर नींद मँडरा उठीं। एक पेड़ के नीचे सो गये।

जब चारों ओर सूरज की रोशनी जगमग कर रही थी, तब इनकी नींद टूटी। अरे, पैरों की क्या हालत है? वे रक्त से सने हैं! चेहरे और बदन भी देखने लायक़। कितने खरोंच, कितने जख़्म।

तो भी चलना है। चलना है।

पैर घसीट रहे हैं; लेकिन जब पेट में भूख की कुलबुलाहट है। खाने को क्या मिले? सामने एक झरबेरी का पेड़ है, उसके छोटे-छोटे खट्टे-मीठे फल तोड़कर खा रहे हैं। आगे एक करोंदे का पेड़ मिला, उसके फल भी चखे गये। फिर एक आँवले का पेड़! लेकिन इनसे क्या भूख मिट सकती है? शाम तक पेट में जैसे आग दहकने लगती है!

"पास में सिर्फ सौ रुपये का एक नोट है और फुटकल सिर्फ चार आने पैसे।"

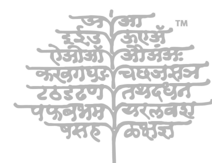
सौ रुपये का नोट कहाँ भँजे? उनमें से एक आदमी जंगल से निकलकर सड़क के किनारे के एक भड़भूजे की दुकान पर आता है और चार आने का चूड़ा खरीद कर ले जाता है!

चौबीस घंटे के बाद चार आने के छः छटाँक अन्न पर छः आदमी टूटते हैं! "थोड़ा बचाकर करके भी रखो भाई, न जाने फिर कब अन्न के दर्शन हों।" दो-दो मुट्ठी मुँह में रखते हैं, एक झरने से खूब पानी पी लेते हैं और एक पेड़ के निकट सो जाते हैं।

फिर भोर-फिर यात्रा!

किन्तु यह क्या? जयप्रकाश का साइटिका उभड़ आया है। सारे पैर में तनाव है, दर्द है। वह चल नहीं पाते! पैर तो घायल-घायल है ही। दो साथी उन्हें आसरा देकर आगे बढ़ा रहे हैं। कभी-कभी उन्हें लकड़ी पर टाँग करके भी आगे बढ़ते हैं।

फिर दिन भर चलते रहे! संध्या के समय एक गाँव निकट आया, एक परिचित गाँव! इसी गाँव में तो दुबेजी हैं! दुबेजी, एक देश-भक्त, हाल ही जेल से छूटकर आये हैं! दुबेजी ने भोजन का प्रबंध किया, बैलगाड़ी का प्रबंध किया। रात में तीन आदमी बैलगाड़ी के ऊपर लेटे हुए हैं; तीन आदमी आगे-पीछे चल रहे हैं। बैलगाड़ी पर ऊपर लकड़ियाँ लाद दी





गाइ हैं: इन तीनों के हाथ में कुल्हाड़ी और डंडे हैं। लोगों को लगता है, किसान लोग जंगल से लकड़ी काटकर घर लौट रहे हैं।

हजारीबाग जिला पार किया गया। गौतम बुद्ध की पावनभूमि गया जिले में पहुँचा गया। वहाँ से शेरशाह के शाहाबाद जिले में पहुँचे।

एक सप्ताह तक इसी तरह पैदल और बैलगाड़ी पर चलते रहे। फिर एक छोटे-से स्टेशन पर रेलगाड़ी पकड़कर काशी पहुँचे।

पहुँचना था कलकत्ता—पहुँच गये काशी!

गुपचुप एक प्रोफेसर मित्र के घर गये। मित्र थे नहीं, उनके नौकर ने कहा—बाबू, आपको क्या हो गया है? क्या बीमार थे?

और, बाबू, आगे जा रहे हैं—कहीं इस नौकर ने इनाम के लोभ में गिरफ्तार करा दिया तो!

● ●

१९४२ की नौ अगस्त भारतीय इतिहास में अमर हो चुकी हैं; तो १९४२ की दीवाली भी कभी नहीं भूली जा सकेगी!

भारत के राजनीतिक इतिहास के लिए यह एक अनोखी घटना थी।

वारंट कटा, कहीं गायब हो गये। जेल में भेजे जा रहे थे, बीच में चंपत हो गये। जमानत पर बाहर आये, नौ दो ग्यारह हो गये—ऐसी घटना तो प्रायः घटती रही हैं; किन्तु, जेल की दीवार को तड़पकर पाँच साथियों को लेकर एक साथ निकल भागना और वह भी जयप्रकाश ऐसे आदमी के लिए एक विचित्र बात थी!

विचित्र बात यह भी कि शाम को ये लोग भागे और दूसरे दिन दो पहर तक जेल-वालों को पता नहीं चल सका।

जो जेल में रह गये थे, उन साथियों ने ऐसा प्रबंध किया कि जहाँ हर दो घंटे पर कैदियों की गिनती होती हैं, वहाँ बीस घंटों तक इनके भागने का पता नहीं लग सका!

जब दूसरे दिन बारह बजे जयप्रकाश से परामर्श करने जेल का सुपरिन्टेन्डेन्ट आया और उन्हें नहीं पाया, तो उसे विश्वास भी नहीं हो रहा था कि वह भाग गये होंगे।

जब जेल की पगली घंटी बजी और घोषित किया गया कि जयप्रकाश जेल से भाग गये हैं, तो वहाँ के सभी राजबंदियों को लगा, सरकार पागल हो गई है क्या?

जब पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट जेल के भीतर जाँच-पड़ताल के लिए आया, उसने भी कहा, यह तो नहीं सकता कि जयप्रकाशजी भाग गये हों, आप लोग कोई दिल्लगी कर रहे हैं।

जयप्रकाश-इतने शान्त, इतने शिष्ट! देश में जिनकी इतनी प्रतिष्ठा। गाँधीजी ने जिन्हें समाजवाद का आचार्य कहा था।

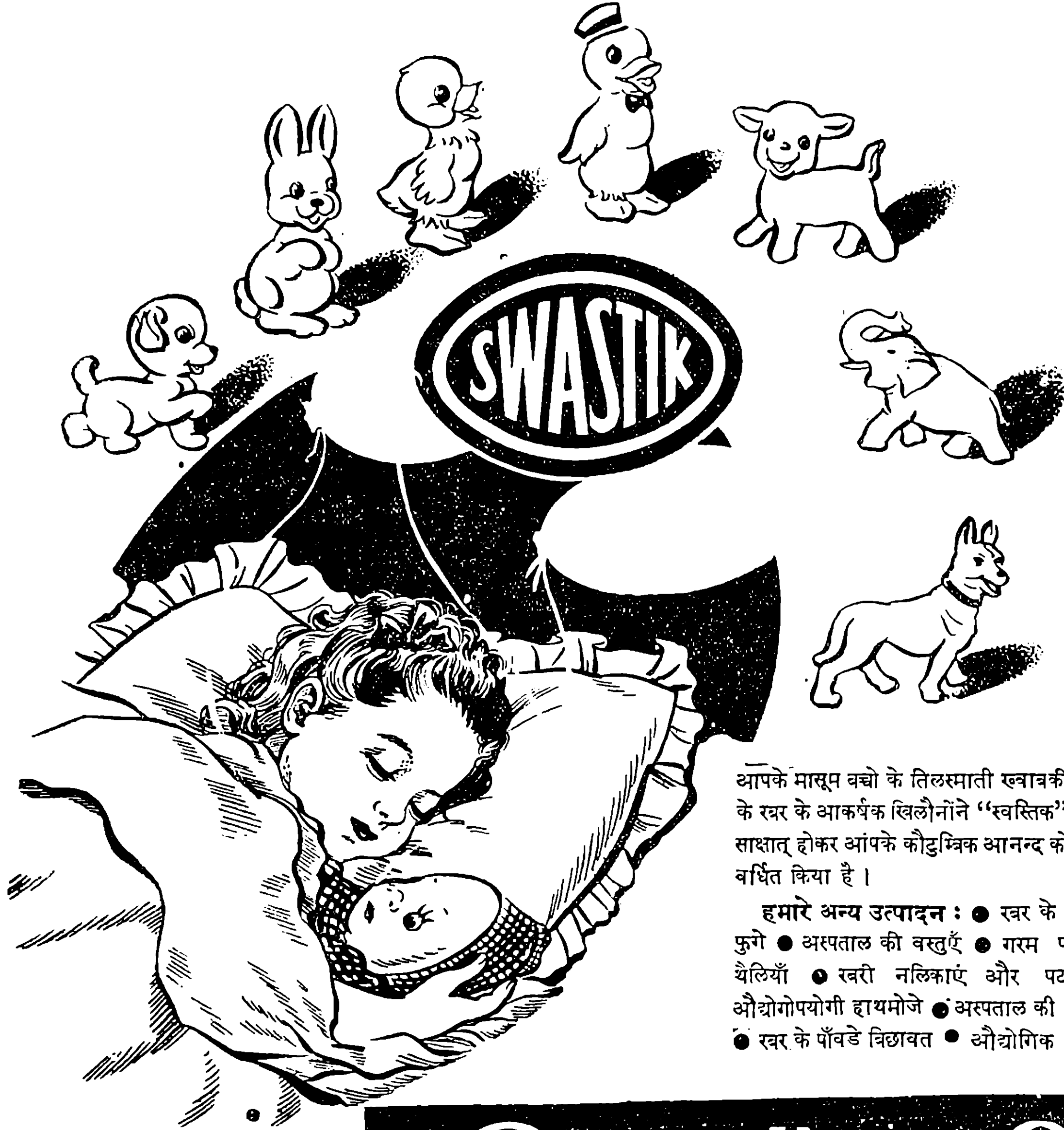
लेकिन, जो लोग ऐसा सोच रहे थे, और प्रायःसभी लोग ऐसा ही सोचते थे, वे नहीं जानते थे कि जयप्रकाश के हृदय में इस समय कौन-सी आग धू धू कर जल रही थी।

जयप्रकाश ने देखा था किस तरह प्रथम महायुद्ध (१९१४-१८) के समय हम लोग देखते ही रह गये और कितने देश उस समय स्वतंत्र हो गये।

यदि दूसरे महायुद्ध में भी हम चूक गये

अनुक्रमणिका

आप के नन्हे का सपना साकार बना !



आपके मासूम बच्चो के तिलस्माती ख्वाबकी दुनि
के रबर के आकर्षक खिलौनोंने "स्वस्तिक" के द्वा
साक्षात् होकर आंपके कौटुम्बिक आनन्द को अवश
वर्धित किया है।

हमारे अन्य उत्पादन : ● रबर के गेंद औ
फुगे ● अस्पताल की वस्तुएँ ● गरम पानी
थैलियाँ ● रबरी नलिकाएं और पटरियाँ
औद्योगोपयोगी हाथमोजे ● अस्पताल की तख्ति
● रबर के पाँवडे बिछावत ● औद्योगिक बिछाव

स्वस्तिक रबर प्रॉडक्टस् लि.

खडकी, पुना नं. ३

यह दीपावली और नूतन संवत्सर हमारे सभी सम्बन्धितों को सुखकारी हों !

अनुक्रमणिका





अनुक्रमणिका

तो हमारी गुलामी स्थायी-सी बनकर रह जायगी।

अतः ज्यों ही दूसरा महायुद्ध छिड़ा; उन्होंने आवाज़ लगाई, हमें आज़ादी की लड़ाई छेड़ देनी चाहिये।

रामगढ़ कॉंग्रेस के पहले ही उन्हें गिरफ़्तार कर लिया गया। जेल से भी वह गुपचुप नेताओं के पास पत्र और अखबारों में लेख भेजकर इस बात पर बार-बार जोर देते रहे!

जब पहली सज़ा भुगतकर वह छूटे, देशभर में घूमघूम कर इसके लिए संगठन करने लगे। किन्तु बम्बई में उन्हें फिर गिरफ्तार किया गया।

बम्बई से देवली कैम्प। देवली के वे खत-जिन्होंने एक बार भारत को हिला दिया था! और, अन्ततः तीन सप्ताह के अनशन के बाद देवली को तोड़कर ही फिर हज़ारीबाग लौटे!!

अगस्त-आन्दोलन के प्रारम्भ से ही वह इस चेष्टा में थे कि कैसे जेल से भागा जाय।

लेकिन एक-पर-एक विघ्न आते रहे। अन्त में यह दीवाली!

और उसके बाद—

उन्होंने सारे भारत का दौरा किया—दिल्ली, बम्बई, मद्रास, कलकत्ता और नेपाल!

नेपाल में गिरफ़्तार हुए और आज़ाद दस्ते द्वारा उनका उद्धार किया गया। वह रोमांचकारी घटना तो अलग एक लेख की चीज़ है।

अब दूसरी दीवाली निकट पहुँच रही थी। जयप्रकाश का स्वास्थ्य खराब हो चुका था। सोचा गया, अगली दीवाली काश्मीर में मनाई जाय! वहाँ से लौटकर एक बार फिर होली जलाने की चेष्टा की जायगी। देश को आज़ाद किये बिना चैन कहाँ?

दिल्ली स्टेशन पर, जब गाड़ी खुलने को है, एक साहब आकर एक फर्स्ट क्लास डब्बे में चढ़ जाते हैं। डब्बा रिज़र्व है, उसपर कार्ड लगा है—एस. पी. मेहता!

भोर। अमृतसर। साहब चाय की चुस्की ले रहे हैं कि तीन सज्जन आ धमकते हैं—एक अंगरेज, दो सिख! तीनों खड़े हैं, इन्हें घूर रहे हैं।

"बैठिये! तशरीफ रखिये।"

"आप कहाँ जा रहे हैं?"

"रावलपिंडी।"

"आपका साथी कहाँ है?"

"साथी? मैं तो अकेला हूँ।"

"तो आप सिर निकालकर किसे देख रहे थे?"

"आपको धोखा हो रहा शायद!"

"यह नेपाल नहीं है!"

"नेपाल?"

"जी हाँ, आप बुरी तरह फँस गये हैं।"

"आप क्या कर रहे हैं। मैं तो बम्बई का एक व्यापारी हूँ। मैं कभी नेपाल गया भी नहीं।"

"आप जयप्रकाश नारायण हैं।"

"जी नहीं, मैं हूँ, एस. पी. मेहता।"

"खैर तलाशी कीजिये; आप जान गये होंगे कि हम पुलिस अफसर हैं! आज आप बच गये, यदि फिर सिर निकालते, तो हम आपको शूट कर देते!"

तलाशी। गिरफ्तारी। लाहौर फोर्ट। वह रौरव यातना। हाबियस कारपस। आगरा जेल। ब्रिटिश डेलिगेशन। गांधीजी की शर्त—पहले जयप्रकाश को छोड़ो। रिहाई!

चौदह वर्ष के बाद भी जब-जब दीवाली की याद आती है, हज़ारीबाग जेल में उस राजबंदियों द्वारा गाये गये वे समवेत स्वर कानों में गूँज उठते हैं—

"दीवाली फिर आ गई सजनी!"

● ● ●





परिचित होते हुए भी
भ्रान्तियोंवशात् अनजाना;
भावनाकी अन्तरिक्षीय
उ ङ्गता
अभिव्याञ्जित करनेवाला विराट कलाकार



इलाचन्द्र जोशी



अभी शरत्चन्द्र के तथाकथित प्रामाणिक जीवन से संबंधित एक बंगला पुस्तक में देख रहा था। उसमें लिखा है कि शरत्चन्द्र पन्द्रह सोलह वर्ष की अवस्था में जिस स्त्री के यहाँ रहकर खाते पीते और स्कूली शिक्षा पाते थे उसी से उनका प्रेम हो गया और अनुचित संबंध भी। वहाँ से विवशता के कारण जब हटना पडा तब एक दूसरी स्त्री के प्रेम के चक्कर में फँस गये जो विधवा थी। इसके बाद उक्त लेखक के मतानुसार एक एक करके अनेक युवतियों में शरत् का प्रेम संबंध स्थापित होता चला गया। इतना ही नहीं लेखक ने यह सिद्ध किया है कि शरत्चन्द्र के सभी उपन्यासों की नायिकाएँ उनके वास्तविक जीवन की प्रेमिकाएँ रही हैं।

जिन लोगों ने शरत्चन्द्र की रचनाएँ ध्यानपूर्वक पढी हैं वे जानते हैं कि उनकी केवल एक ही रचना ऐसी है जिसके सम्बन्ध में यह भ्रम हो सकता है कि उसमें किसी हद तक शरत् का आत्म चरित वर्णित है। वह रचना है 'श्रीकांत'। जब मैं १९२२ में उनसे पहली बार मिला तब मेरे मन में भी कुछ इसी तरह का भ्रम था। इसलिए मैंने उनसे प्रश्न किया कि: क्या श्रीकांत छद्मरूप से आपका आत्मचरित है? उन्होंने स्पष्ट शब्दों में यह बताया कि यह धारणा एकदम गलत है। साथ ही उन्होंने यह कहा कि उनकी रचना के सम्बन्ध में जो इस तरह की गलत धारणा लोगों के मन में बन जाती है, उससे उन्हें प्रसन्नता ही होती है क्यों कि उससे यह प्रमाणित होता है कि उनकी रचना जीवन के कितने निकट है।

श्रीकान्त : आत्मचरित्र?

मुझे पूरा विश्वास है कि यदि श्रीकांत में उनके आत्म चरित् की कुछ भी झलक होती तो वह मुक्त रूप से उसे स्वीकार करते। क्योंकि उन्होंने स्नेहवश अपने जीवन की बहुत सी ऐसी बातें मेरे आगे प्रकट की थीं जिन्हें लोग साधारणतः अपने घनिष्ट मित्रों से भी छिपाते हैं। इसके अलावा उन्होंने सुस्पष्ट शब्दों में मुझ से कहा था कि यह तथाकथित चरित्रहीनता को कोई बड़ा दोष नहीं मानते और नीति-अनीति और श्लीलता-अश्लीलता के प्रश्न को हास्यास्पद समझते हैं। इसी सिलसिले में उन्होंने एक बात और कही थी: उपन्यास के माध्यम से छद्मरूप में आत्म चरित लिखने को मैं कायरता मानता हूँ। यदि मुझे आत्म चरित ही लिखना होता तो मैं घोषणा के साथ आत्म चरित् लिखता। उपन्यास की आड में आत्म-कथा को ढँकने की क्या आवश्यकता थी। जिन लोगों में जीवन को व्यापक और गहरे रूप से देखने की शक्ति नहीं है जो अपने अहम की चहार दीवारी से बाहर झाँककर जीवन के सिंहावलोकन का दम नहीं रखते और जो अपनी कला में निरपेक्षता लाने में असमर्थ हैं वे ही अपने जीवन की गुप्त कथा को उपन्यास का रूप दे देते हैं।

तब से उनकी उस बात पर संदेह करने का लेशमात्र कारण भी मेरे लिये नहीं रह गया और स्वयं एक उपन्यासकार होने के नाते मैं उनकी उस बात का महत्त्व भी बहुत कुछ समझने में समर्थ हूं।

पर संसार में ऐसे संकीर्ण मन और संकुचित बुद्धिवाले व्यक्तियों की कमी नहीं है जो किसी भी महान् लेखक पर अपनी ही मनोभावनाओं का आरोप लगाने के आदी हैं और साथ ही जिन्हें महापुरुषों की छोटी सी कमजोरियों को बहुत बड़ा बनाकर उनके जीवन पर झूठी कलंक कालिमा पोतकर सनसनी फैलाने में विकृत सुख का अनुभव होता है।

मेरे सौभाग्य से जिन दिनों में शरत्चन्द्र के सम्पर्क में घनिष्ट रूप से आया और उनका

अनुक्रमणिका

उदार स्नेह पाकर कृत्यकृत्य हुआ उन दिनों उनके यहाँ : शिवपुर हावडा में : उनसे मिलनेवालों की भीड नहीं रहती थी। केवल कुछ छिटपुट व्यक्ति काफी समय के अंतर से उनसे मिलने के लिए आते थे। इसलिए मुझे काफी अच्छा अवसर उनसे एकान्त में घनिष्ट रूप से वातें करने के लिए मिल जाया करता था। उनकी उदारता का अनुचित लाभ उठाकर में इस कदर उनके मुँह लग गया था कि ढिठाई से भरे प्रश्न में नहीं सकुचाता था। अपने प्रिय कलाकार के जीवन के भीतर पहलुओं को जानने का जो अदम्य और अनिष्ट कुतूहल मेरे मन में घर किये हुए था उसकी प्रेरणा से मैं जव तव उचित अनुचित सभी प्रकार के प्रश्न उनसे कर वैठता था।

एशिया का श्रेष्ठ शरावी ?

एक वार मैंने पूछा : क्या अपने जीवन में कभी शराव का अनुभव प्राप्त किया

"कई वार।"

"क्या कभी आप उस हद तक शराव में डूवे हैं, जिस हद तक आपका देवदास डूवा रहता था।"

वह मेरे संदेह पर सस्नेह मुस्कराये। वोले : "'जीवन में मैंने छोटी मोटी भूलें वहुत सी की है पर अपनी मूर्खता को मैं उस सीमा तक कभी नहीं खींच ले गया। शराव को मैंने कभी नशे के रूप में ग्रहण नहीं किया वरावर दवा के रूप में ही उसे पिया है। किसी शारीरिक रोग की दवा के रूप में नहीं वल्कि अपने स्वभाव की एक कमी की पूर्ति के रूप में। मैं स्वभाव से इन्ट्रोवर्ट—'अंतवर्ती'—हूँ और वुद्धि से सामाजिक। जीवन को पूर्णतः अपनाने पर भी व्यावहारिक रूप से समाज और समूह से भागना चाहता हूँ। समाज के वीच वडे ही संकोच का अनुभव करने लगता हूँ। इसलिए वीच वीच में कभी कभी दवा की मात्रा में थोडी सी मदिरा पी लेता हूँ और तव मैं समाज में सामाजिक प्राणी की तरह ही रहने लगता हूँ, और उनके साथ सहज भाव से हेलमेल वडा सकने में समर्थ होता हूँ। इधर तो मैंने दोन-तीन महीने से एक वूँद भी नहीं पी है।"

"क्या, कभी ऐसा भी अवसर आया है जव आप अपनी किसी रचना, कहानी या उपन्यास, को जल्दी पूरा करना चाहते हों पर लिखने की प्रेरणा न मिल रही हो और उस हालत में आप शराव पीकर कृत्रिम उपाय से प्रेरणा प्राप्त करके लिखने वैठ हों ?"

"कभी नहीं। पी लेने के वाद मुझे लिखने की प्रेरणा कभी नहीं मिलती। उस हालत को मैं केवल अनुभव करता रहता हूँ और जव कोई महत्वपूर्ण भाव या विचार उस हालत में भी मेरे मन में उठने लगता है, तव पास में कागज कलम होने पर उसे नोट अवश्य कर लेता हूँ।"

शराव का प्रसंग मैंने इसलिये उठाया है कि शरावखोरी के लिए शरत् के तथाकथित जीवनी लेखकों ने उन्हें वहुत वदनाम कर रखा है और इन वदनाम करनेवालों में ऐसे लोगों की संख्या अधिक है जो उनके प्रति परम श्रद्धा का भाव जताते रहते हैं। जैसे इस तरह के झूठे या अर्द्धसत्य तथ्यों को वहुत वडा वनाकर दिखाये विना वास्तविक श्रद्धांजलि प्रकट की ही नहीं जा सकती। उनके जीवनीकारों ने उनकी शरावखोरी के संवंध में जो विचित्र और असंभाव्य कहानियाँ गढी हैं उनमें से कुछ के उदाहरण पाठकों के लिये नीचे देता हूँ।

एक कहानी यह है कि जव शरत्चन्द्र रंगून में थे तव एक दिन उनके एक मित्र ने उन्हें यह खवर दी कि गोआ से एक साहव आया है और शराव पीने में सारे एशिया को चुनौती देता है, कहता है कि तमाम एशिया में एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं जो शराव पीने में उससे प्रतियोगिता चला सके। शरत्चन्द्र ने इस वात से अपने को अपमानित अनुभव किया। उनके रहते कोई ऐसी वात कहने का साहस करे ?

वह उठे और उसी क्षण उक्त साहव की खोज करने लगे। पता लगाकर उसके मकान में वरवस घुस पडे और ड्राइंग रूम में जाकर वैठ गये। साहव के पूछने पर वोलेः तुम्हारी चुनौती की खवर सुनकर लडने आया हूँ। साहव, देखा जाय, जीत किसकी होती है एशिया की या यूरोप की।

साहव ठठाकर वोला, "टुम काला आडमी हमसे जीट सकटा ?"

"इसी का उत्तर देने आया हूँ साहव, चलो जमा जाय।"

तिमंजिले पर स्थित एक वडे कमरे में दोनों वैठे। शरत् ने कहा..."मैं देशी आदमी देशी शराव ही पीऊंगा, तुम विलायती पीना।"

सुनकर साहव और खुश हुआ क्योंकि देशी का नशा अधिक होता है। दोनों पीने लगे।

बोतल पर बोतल खतम होते रात के तीन बज गये। और एक बोतल शरत् ने झूमते हुए बैरा से कहा। नशे की हालत में एक बार दोनों की बोतलें एक दूसरे से बदल गयीं। साहब पीने लगा देशी और शरत् विलायती। साहब देशी शराब का आदी नहीं था। फल यह हुआ कि दो ही तीन घूँटों के बाद वह मृत अवस्था में फर्श पर गिर पड़ा। शरत् यह हाल देखकर खिडकी से दूसरी मंजिल की छत पर कूदकर पनाले के पाइप के सहारे नीचे उतरे और सीधे स्टेशन की ओर भागकर पैगू की गाडी में सवार हो गये।

यह है शरत् की बहादुरी का किस्सा कि उन्होंने बोतल पर बोतल खतम करके एशिया की नाक रख ली। भक्तगण के लिए अधिक पुलकित होने की बात और क्या हो सकती है? पर जो लोग शरत् को घनिष्ठ रूपसे जानते रहे हैं, वे जानते हैं कि किस्सा एकदम असंभव और निराधार है।

नर्तकी और अफ़ीम

अल्फ-लैला के किस्सों को मात देनेवाली इसी प्रकार की एक दूसरी कहानी यह है कि एक बार शरत् ने रवीन्द्रनाथ को उनकी जयन्ती के अवसर पर शिवपुर में अपने यहां निमंत्रित किया। लखनऊ से उस अवसर के लिए विशेषरूप से एक बाईजी : नर्तकी : बुलायी गयी। रवीन्द्रनाथ आये और एक मसनद पर टेक लगाकर बैठ गये। शरत् भी उनकी बगल में बैठ गये। बाईजी घुंघरू बजाती हुई नाचने लगी। पर बीच बीच में उसे ठहर जाना पडता था क्योंकि तबलवाला ठीक से बजा नहीं पा रहा था जिससे ताल भंग हो रहा था। शरत्चन्द्र से नहीं रहा गया और उन्होंने अपने एक आदमी को पुकार कर: "अनुरूप, थोडी सी अफीम ले आओ।" अफीम आयी और वहीं रवीन्द्रनाथ के सामने ही शरत्चन्द्र ने उसे लिया। उसके बाद वह स्वयं तबला बजाने लगे। बस फिर क्या था लडकी छमाछम नाचने लगी। नाचते नाचते जब सुबह हो गयी तब शरत्चन्द्र का तबला बंद हुआ। रवीन्द्रनाथ सुनकर मुग्ध हो गये। बोले: 'वाह, इतना अच्छा बजाना तुमने कहाँ, सीखा? उत्तर मिला "बर्मा में लखनऊ के एक तबलची से सीखा था।"

ब्रॉंडी : एक्शा नं. वन्

शाम को रवीन्द्रनाथ ने इसराज बजाकर सुनाया। और फिर शरत् से कहा: "इस रस से तुम शायद वंचित हो।"

शरत्चन्द्र बोले, "यह अभागा किसी भी रस से वंचित नहीं है। मैं आपको सितार सुना सकता हूँ। अनुरूप, जरा एक्शा नंबर वन : एक प्रकार की तेज शराब ब्राण्डी : लाना तो।"

ब्राण्डी आयी और शरत् ने ठाट से गुरुदेव के आगे उसे पिया और तब वह जमकर सितार बजाने लगे। रवीन्द्र बोले, "मुझे पता नहीं था कि तुम इतने गुणों के अधिकारी हो।"

तनिक सोचने की बात है कि जो उदारचेता कलाकार आजीवन पतिताओं के भीतर छिपे हुए नारीत्व का बीडा उठाये रहा, जो बराबर उनके प्रति करुणा के साथ ही सम्मान और श्रद्धा प्रकट करता रहा, वह रवीन्द्रनाथ की जयन्ती के अवसर पर महाकवि के सम्मान के अनुरूप कोई सुन्दर योजना न बनाकर, एक वेश्या को उनके आगे नचाये और स्वयं उनके सामने ही अफीम खाये और शराब पिये बिना न रह सके, यह बात कहाँ तक विश्वसनीय हो सकती है? इसका निर्णय शरत के प्रेमी पाठक स्वयं करें।

रवीन्द्र : शरत् : परस्पर सम्बन्ध

रवीन्द्रनाथ का सम्मान इस रूप में शरत् ने क्यों किया इसकी कैफियत देते हुए शरत् के उक्त श्रद्धालु जीवनी लेखक ने लिखा है कि शरत्चन्द्र रवीन्द्रनाथ के प्रति स्पर्द्धा की भावना रखते थे इसलिए उन्हें नीचा दिखाना चाहते थे। जो लोग शरत् की शालीनता और स्वभाव की गंभीरता से परिचित हैं, वे जानते हैं कि न थी उनमें रवीन्द्र के प्रति स्पर्द्धा की ही भावना कभी रही और न वह इस तरह के हीन उपाय द्वारा अपनी भावना का प्रदर्शन कभी कर सकते थे।

यह ठीक है कि रवीन्द्र और शरत् के बीच साहित्यिक सिद्धान्तों को लेकर वाद विवाद चला था। कुछ विषयों को लेकर दोनों के बीच मतभेद बना रहा पर इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि दोनों एक दूसरे के प्रति किसी भी प्रकार की विद्वेष भावना रखते थे। यह भी सही है कि जब कलकत्ते में रवीन्द्र जयन्ती के कुछ समय बाद शरत् के प्रेमियों ने बडे समारोह से शरत् जयन्ती मनायी थी तब रवीन्द्रनाथ ने लिखा था कि उनकी जयन्ती के अनुकरण में इतनी जल्दी शरत् जयन्ती मनाने ने कोई आवश्यकता नहीं थी क्योंकि शरत् को अभी बहुत वर्ष जीना है और बहुत काम करना है। पर यह होते हुए भी उन्होंने उस अवसर पर एक छोटी सी रचना लिखकर शरत् को समर्पित की थी।

रवीन्द्र सम्बन्ध में शरत्चन्द्र से जब जब मेरी बातें हुई तब तब उन्होंने आंतरिक श्रद्धा और सम्मान से उनका स्मरण किया। रवीन्द्र के प्रति श्रद्धा और सम्मान तो साधारणतः सभी साहित्य प्रेमियों के मन में पाया जाता है पर शरत्चन्द्र की वह श्रद्धा भावना असाधारण थी। बुद्धि और हृदय दोनों दृष्टियों से वह रवीन्द्र की प्रतिभा और व्यक्तित्व के आगे श्रद्धान्त रहते थे। ऐसी हालत में यह कल्पना करना और उस कल्पना को प्रत्यक्ष सत्य के रूप में प्रचारित करना कितना बड़ा साहित्यिक अपराध है कि वही श्रद्धालु शरत् रवीन्द्र को नीचा दिखाने के लिये उन्हें बुलाकर अत्यन्त गंदे रूप में उन्हें अपमानित करेंगे।

वंग के कलाकारों दत्तचित्र बनो

बात वही है जो मैं पहले कह चुका हूं संकोचशील शरत्चन्द्र प्रारम्भ ही से प्रकाश में आने से कतराते रहे और इसी कारण अपने भीतरी जीवन को उन्होंने बराबर एक रहस्यमय पर्दे से ढका रखा। आज उस रहस्यमयता का अनुचित लाभ उठाकर उनके तथाकथित जीवनी-लेखक झूठी और आधी सच्ची बातें जोडकर उनमें अपनी विकृत रुचि के अनुसार मिर्च-मसाला मिलाकर उन्हें खोजपूर्ण सत्य के रूप में प्रचारित करके बिना किसी दंड की आशंका के मुक्त रूप से उस महान् लेखक के चरित को काला करने के प्रयत्नों में जुटे हैं। बंगाल के वर्तमान श्रेष्ठ साहित्यकारों का यह सम्मिलित कर्तव्य है कि इस तरह की प्रवृत्ति को रोके अन्यथा उसके कारण आनेवाली कई पीढियों तक भारी भ्रम फैलने की संभावना है।

शरत्चन्द्र के जीवन के सम्बन्ध में मोटे तौर पर जो प्रमाणिक तथ्य पाये जाते हैं वे संक्षेप में इस प्रकार हैं:—

अनुक्रमणिका

उनका जन्म १५ सितम्बर १८७६ को हुगली जिले के अन्तर्गत देवानन्दपुर में हुआ। शैशव के प्रारंभिक कुछ वर्ष उनके देवानन्दपुरमें ही बीते। उसके बाद भागपुर में उन्हें जाना पड़ा। उनके पिता प्रारम्भ से ही ससुराल ही में रहते थे इसलिए शरतचन्द्र का पालन पोषण और शिक्षण भागलपुर में मामा के घर में ही हुआ। इन्ट्रेंस की परीक्षा पास करने के बाद वह इंटरमीडियेट में भरती हुए पर किसी कारण परीक्षा न दे सके। उनकी शिक्षा वहीं पर समाप्त हो गयी। उसके बाद वह. आवारा जीवन विताने लगे।

साहित्य के प्रति जन्मजात अनुराग

साहित्य सम्बन्धी विषयों में उनकी दिलचस्पी प्रारम्भ से ही थी पर कभी किसी के आगे उन्होंने यह प्रकट न होने दिया कि वह विश्व साहित्य का अध्ययन कैसी एकान्त लगन से करते चले जा रहे थे। शरतचन्द्र ने एक बार मुझ से कहा था कि उन्होंने इतनी अधिक पुस्तकें पूरे अध्ययन के साथ पढ़ी हैं कि यदि उन सबका संग्रह वे कर पाते तो एक बहुत बड़ी लाइब्रेरी की स्थापना हो सकती थी। पर उनके किशोर और युवावस्था के साथी केवल उनके बाहरी उपद्रवों से ही परिचित थे; भीतरी चिन्तन और अध्ययन से नहीं। कहानियाँ और छोटे उपन्यास भी वह लिखते चले जाते थे पर छपाने को नहीं भेजते थे। प्रकाश में आने से वह इस कदर घबराते थे। मुझे उन्होंने बताया:—था कि उनके मन में कभी यह भावना नहीं जगी कि वह साहित्य क्षेत्र में आकर अपना स्थान बनावें। लेखक बनने की थोड़ी-बहुत आकांक्षा तो निश्चय ही उनके मन में रही होगी, नहीं तो वह न छपाने पर भी लिखते ही क्यों? पर अपनी उस आकांक्षा को उन्होंने कभी गंभीर रूप से नहीं लिया। अंत में एक दिन अपनी पारिवारिक परिस्थितियों से उकता कर वह देश त्याग करके वर्मा चले गये। वहाँ वह अज्ञातवास करना चाहते थे और अधिकांशतः उन्होंने अज्ञातवास किया भी। फिर भी वर्मा प्रवासी बंगालियों के संसर्ग में उन्हें आना ही पड़ता था। वहाँ दो तीन जगह उन्होंने नौकरी की। वर्मा प्रवास के अन्तिम काल में वह एकौण्टेण्ट जनरल के आफिस में नौकरी करते थे। लिखना उन्होंने नहीं छोड़ा। कई किताबें पूरी की हुई अप्रकाशित पड़ी थीं। एक दिन मकान में आग लग गयी और उनकी अधिकांश रचनाएँ जलकर नष्ट हो गयीं। जो शेष रह गयीं उनमें देवदास भी एक था।

वर्मा प्रवास के अंतिम काल में उनका विचार अपनी रचनाएँ छपाने का हुआ। कुछ प्रारम्भिक रचनाएँ उन्होंने वहाँ से कलकत्ते भेजकर 'भारती' आदि पत्रों में छपायीं। वे चीजें लोगों को इतनी पसन्द आयीं कि कला-पारखियों को संदेह होने लगा कि रवीन्द्रनाथ ने उन्हें छद्मनाम से लिखा है। जब उन्होंने देखा कि उन रचनाओं का बहुत अच्छा स्वागत हुआ है तब वह नियमित रूप से छपाने लगे।

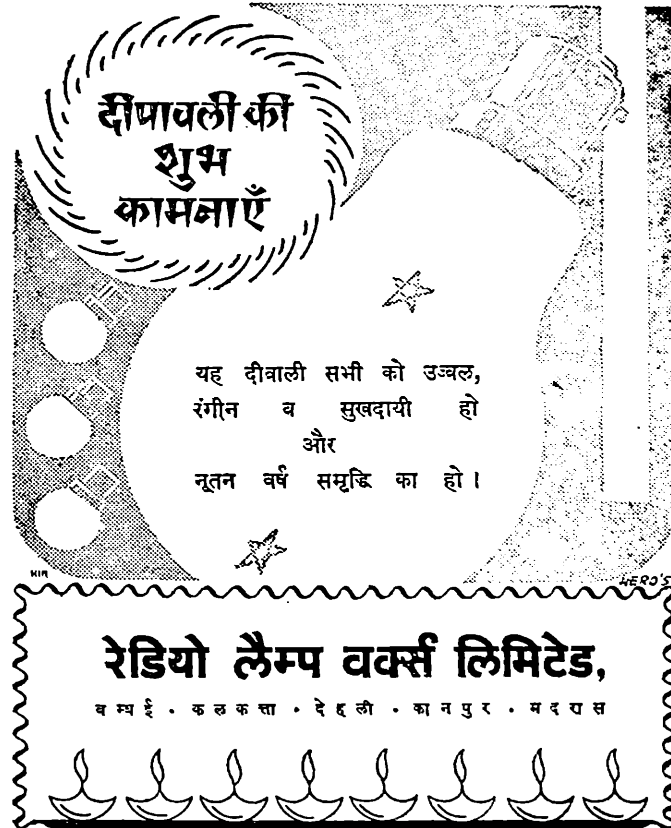
विवाह

वर्मा में ही उन्होंने विवाह किया। उनके विवाह का किस्सा भी रहस्यमयता के आवरण में छिपा है। एक बंगाली लड़की जिसे उसका बाप बेचना चाहता था उसे पेशेवर जीवन बिताने को बाध्य करना चाहता था उनके शरण में आयी। शरत् ने उसकी रक्षा का भार अपने ऊपर लिया और अंत में उससे शादी कर ली।

एक दिन आफिस के बड़े साहब से झगड़ा कर शरत् ने नौकर छोड़ दी और तत्काल कलकत्ता चले आये। वहाँ भारतवर्ष के सहकारी संपादक की हैसियत से काम करके रु. १००) मासिक पाने लगे। उनकी प्रारम्भिक पुस्तकों की बिक्री आशातीत रूप से अधिक हुई। यह देखकर वह स्वयं अपनी पुस्तकें छापने लगे। फलस्वरूप उनकी आमदनी काफी बढ़ गयी और वह नौकरी छोड़कर हावड़ा के अन्तर्गत शिवपुर में शांतिमय जीवन विताने लगे।

राजनीति

१९२१ के असहयोग आन्दोलन ने जोर पकड़ा। देशबन्धु चित्तरंजन दास शरत् की



प्रतिभा पर मुग्ध हो चुके थे। वहीं शरत् को राजनीति में घसीट लाये। शरत्चन्द्र हावडा कॉंग्रेस कमेटी के प्रेसिडेंट की हैसियत से काम करने लगे। इसी सिलसिले में सुभाषचन्द्र बोस से भी उनकी घनिष्ठता हो गयी। भीतर से अहिंसात्मक आन्दोलन के प्रति उनकी आस्था कभी नहीं रही और वह हिंसक आन्दोलन के समूहिक संगठन के पक्षपाती थे। निष्क्रिय और निरीह भाव से मार खाने और मरने को वह मानवता का अपमान समझते थे। पर साथ ही देश की तात्कालीन परिस्थितियों की वास्तविकता से अच्छी तरह परिचित होने के कारण गांधीजी के अहिंसात्मक असहयोग को ही उस समय के लिये उपयुक्त मानते थे।

उन्हीं दिनों उन्होंने 'पथेर दावी' नामक उपन्यास लिखा जिसमें क्रांतिकारियों के प्रति उनकी सहानुभूति सुस्पष्ट शब्दों में व्यक्त हो उठी। इस रचना को छपने में कुछ समय लग गया। बाद में सरकार ने उसे जप्त कर लिया जिसके फलस्वरूप उनके प्रति जनता का ध्यान और अधिक आकर्षित हुआ। देशबन्धु चित्तरंजन दास के 'नारायण' नामक मासिक पत्र में वह राजनीतिक सामाजिक और सांस्कृतिक विषयों पर नियमितरूप से लिखते रहते थे।

उसके बाद वर्ष प्रति वर्ष उनकी लोकप्रियता बढ़ती चली गयी और साथ ही साहित्यिक और सार्वजनिक कार्य का भार भी बढता चला गया। दुःख दैन्य और पराधीनता के सहस्र पाशों से ग्रस्त और पीडित जनता (विशेषकर युवक समाज) उनसे पथ-निर्देशन चाहती थीं। शरत्चन्द्र बराबर अंतरीण साधनामें रत रहने पर भी वर्षों तक बाहर से मुक्त और बंधन हीन जीवन बिताने के आदी रह चुके थे। अब जीवन के विविध क्षेत्रों में उनके ऊपर गंभीर उत्तरदायित्व का भार आ पड़ा तब साध्यातीत श्रम के कारण उनके शरीर और मन पर बहुत अधिक दबाव पड़ने लगा। उनका स्वास्थ्य गिरता चला जा रहा था यद्यपि बाहर से उसका कोई विशेष चिन्ह नहीं दिखाई पड़ता था। प्रति वर्ष उनकी नयी नयी और उत्तरोत्तर प्रगतिशील सर्जनात्मक कृतियाँ निकलती जाती थीं। शिशु साहित्य लिखना भी उन्होंने आरम्भ कर दिया। ढाका विश्वविद्यालय ने उन्हें डाक्टरेट प्रदान किया। कलकत्ते में आडम्बर के साथ उनका जयन्ती समारोह मनाया गया।

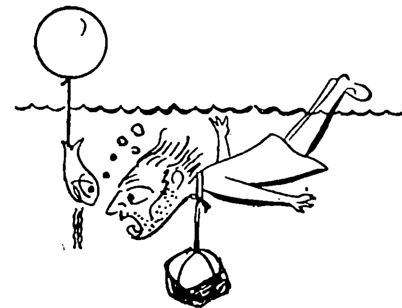
जीवनका सान्ध्य

अंतिम दिनों में वह खान पान में भी थोडा अनियमित रहने लगे थे। वैसे एक प्रकार से बराबर ही उनका जीवन अव्यस्थित रहा और शारीरिक पोषण के लिये पर्याप्त सुविधाएँ उन्हें जीवन में बहुत कम सुलभ हुई थीं। इसलिये जीवन के उत्तरार्द्ध में आर्थिक स्थिति संभालने पर भी उसका उपयोग वह अपने स्वास्थ्य के निर्माण में ठीक से नहीं कर पाये थे। इन्हीं सब सम्मिलित कारणों से उनका शरीर भीतर ही भीतर गलता चला गया और अंत में एक दिन उन्होंने जो खाट पकड़ी तो फिर संभालना कठिन हो गया। यकृत एकदम नष्ट अवस्था को प्राप्त हो गया था। आपरेशन भी किया गया पर कोई लाभ नहीं हुआ। १८ जनवरी १९३८ को चल बसे। अंतिम दिनों में उनकी आर्थिक स्थिति भी संकटपूर्ण हो उठी थी। जितना रुपया उन्होंने कमाया था उससे थोडी सी जमीन खरीदी थी और दो एक मकान बनाये थे। पर नक़दी वह विशेष कुछ भी जमा नहीं कर पाये। जितना पाते थे उससे अधिक अपने अव्यवस्थित जीवन का क्रम निभाते तथा दीन दरिद्रों की सहायता में खर्च कर डालते थे। फल यह हुआ कि रुपये के अभाव से वह समय पर अस्पताल तक में भरती नहीं हो पाये। बहुत चेष्टा के बाद एक प्रकाशक से दो हजार रुपया प्राप्त किया जा सका था।

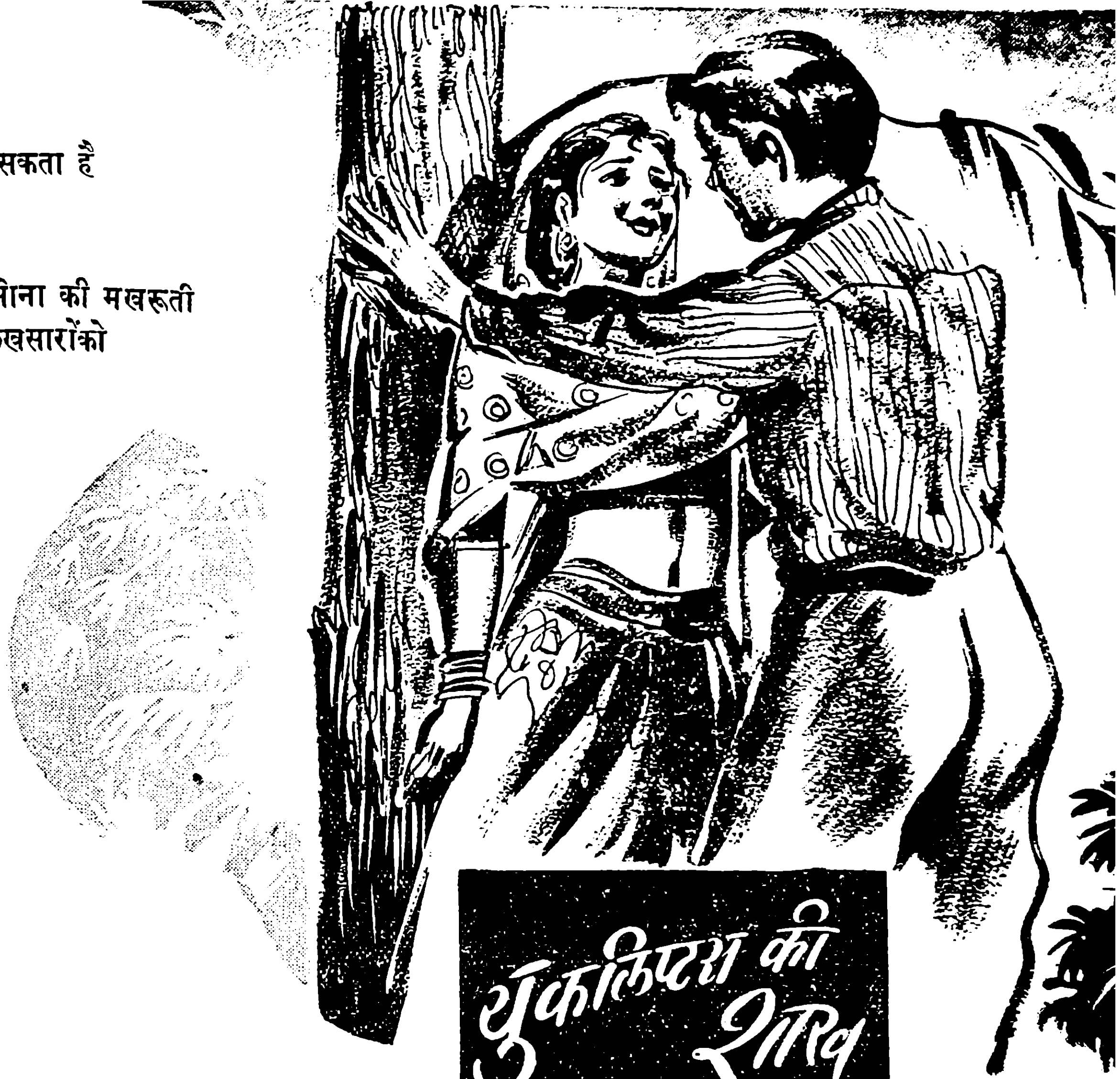
शाश्वत पदचिह्न

शरत्चन्द्र एक धूमकेतु की तरह साहित्य-क्षेत्र में आये थे जैसे किसी दूसरे सौरमंडल का धूमकेतु अपने अरबों खरबों मील-व्यापी चक्र-परिधि में भटक कर इस सौरमंडल की परिधि के भीतर आ गया हो। वह आजीवन एक मुक्त स्वच्छंद प्राणी की तरह बंधनहीन जीवन बिताना चाहते थे और साहित्य के बंधन में भी बंधना नहीं चाहते थे। इसलिये बहुत कुछ लिख चुकने पर भी प्रकाशन से बराबर मुँह मोडते रहे। यदि उनके कलकत्ता-स्थित कुछ मित्र उन पर निरन्तर तकाजे पर तकाजा न करते चले जाते और कलकत्ते चले आने का आग्रह बराबर जारी न रखते तो बहुत संभव है रचना शक्ति में एकदम जीर्णता आ जाने और प्रतिभा में मोर्चा लग जाने तक वह साहित्यक्षेत्र से अलग ही रहते। और उस हालत में साहित्य-संसार कितनी बडी देन से वंचित रह जाता-इसकी कल्पना भी आतंक उत्पन्न करती है।

● ● ●



खुदा इन्तजार कर सकता है
मगर मुहब्बत—?
वह एक लमहा—!
नाजुक अन्दाम हासीना की मखरूती
उँगलियोंकी तरह रुखसारोंको
छूनेवाली—



युकलिप्टस की शाख

— क्रिशन चन्दर

सुबकसार शाख उसके सिर पर साया किए थी, आम तौर पर युकलिप्टस् की शाख तने के इस क़दर नीचे नहीं फूटती है, बल्कि तने के बहुत ऊपर जाके आसमान को देख के सिल्हाती है। मगर जाने इस शाख को ज़मीन से कैसी मुहब्बत होगई थी कि तने के इस क़दर ज़मीन के पास फूट निकली थी। जब वह अस्पताल के कामों से थक कर ज़रा सुकून हासिल करने के लिए इस दरख्त के नीचे आ बैठता तो यह शाख फ़ौरन उस के सिर पर आ जाती, इस क़दर क़रीब कि वह हाथ बढ़ाकर उसके हाथ से अपना हाथ मिला सकता था। उसके लम्बे, लचकीले लरज़ते हुए पत्तों को छू सकता था। उसके मुलायम मुदव्विर महकते हुए मरमर पर अपनी उँगलियाँ फ़िरा सकता था, और आँखें बन्द करके चन्द लमहों के लिए एक सफ़ून आमेज़ बूनियन लज़्ज़त के लतीफ़ एहसास से अपनी रूह को मामूर कर सकता था।

वह एक नौजवान डॉक्टर था डॉक्टर से ज़्यादह नौजवान था। ज़िन्दगी का तजरुबा और तबाबत का तजरुबा दोनों अभी उसे हासिल करने थे। वह उस गाँव की डिस्पेन्सरी में नववारिद था, और उसके दिल में एक नववारिद का डर और झिझग दोनों मौजूद थे। फिर भी वह दिनरात कड़ी मेहनत और मशक्कत से काम करता था। इलाक़े के एक सौ साठ गाँवों में—चालीस हज़ार की आबादी में—वह अकेला डॉक्टर था। तबीब भी, जर्राह भी, मौक़ा पड़ने पर दाया भी। कभी वह अपने काम से बहुत घबरा जाता, कभी कभी उसकी डिस्पेनसरी में दवाइयाँ इस क़दर कम हो जातीं, कि वह दवाई कम देता और हमदर्दी ज़्यादह, इस मौक़े पर उसे खुद अपने आप से भी हमदर्दी सी महसूस होने लगती। वह अकेला क्या करे? चालीस हज़ार की आबादी में दवाई के लिए साढ़े सात सौ रुपिये का सालाना बजट कहाँ तक चल सकता है? उसे एक मददगार डॉक्टर की ज़रूरत है। दो कम्पाउंडरों की ज़रूरत है, तीन नर्सों की ज़रूरत है। उसे वबाई इमराज़ के मरीज़ों के लिए एक अलग मुस्तक़िल वार्ड की ज़रूरत है। क्यों कि जहाँ मुफ़लिसी मुस्तक़िल होती है वहाँ वबाई इमराज़ भी मुस्तक़िल होते हैं। वहाँ बढ़ती हुई शरहे मौत भी एक फौजी छावनी की तरह डेरे डाल देती है।

लेकिन डॉक्टर तो मुखालिफ़ छावनी का सिपाही था। वह अकेला इस बढती हुई मौत की यलग़ार कैसे रोकेगा। उसके मददगार कितने कम थे। उसके पास हथियार कितने कम थे, और कभी कभी तो उसे





मालूम होता जैसे वह किसी ग़लत रास्ते पर जा रहा है। बीमारी कुछ और है, इलाज वह कुछ और ही कर रहा है। खासकर उन दिनों जब सारे इलाक़े में ख़ूनी पेचीस की बीमारी एक वबा की तरह फैली हुई थी। और वह नहीं जानता था कि वह क्या करे। वह पेचीस ठीक कर देता था और वह फिर आ जाती थी। इसलिए नहीं कि इस इलाके के लोगों की आँतें कमज़ोर थीं बल्कि इसलिए कि जेब कमज़ोर थीं। घर अनाज से खाली थे। और देहात कहत से रोन्दे हुए थे। लोग पत्ते उबालते थे और दरख्तों की छाल उबालते थे। इसलिए पेचीस जरूरी थी, लाजमी थी। इसक़दर लाजमी थी कि अगर इन्सान के जिस्म में आँतें न होतीं तो यह पेचीस मेदे में हो जाती या फेफड़ों में हो जाती या कान में हो जाती। मगर होती जरूर। यही सोचकर उसे कभी इस क़दर गुस्सा आता कि वह महसूस करने लगता कि वह डाक्टर नहीं है हजाम है। वह मरीज का इलाज नहीं कर रहा, उसके बढ़े हुए बाल काट रहा है। थोड़ा अर्सा गुज़रता है कि बाल फिर बढ़ जाते हैं। यक़ीनन वह डाक्टर नहीं है, इजाम है। जिन्दगी का सिपाही नहीं है घसियारा है। यह नहीं कि उसे हजामों और घसियारों से किसी तरह की नफ़रत थी। वह उन्हें डाक्टरों की तरह क़ाबिले इज्जत समझता था। मगर पेशों के गिड़मिड कर देने के खिलाफ़ था। डाक्टर को डाक्टर और घसियारे को घसियारे का काम करना चाहिए।

यही सोच सोचकर जब उसकी परेशानी बढ जाती, तो वह झुंझलाकर अस्पताल से बाहिर निकल आता और लम्बेलम्बे डग भरता हुआ आस्तिनें ऊपर चढाए, माथे पर त्यौरियों के बल लहराए अस्पताल के बाग़ीचे से गुज़र कर उस ढलवान पर आ आता...जहां यूकलिप्टस का पेड़ खड़ा था। और जब वह उसके तने से पीठ लगाके बैठ जाता... और घूम कर पीछे की तरफ देखता तो उसे सिर्फ हस्पताल की छत नज़र आती और ढलवान के किनारे किनारे फैला हुआ लाला अपने सुनहरी दांतों से खिल खिलाकर हँसता हुआ नज़र आता... और वह मुस्कराकर अस्पताल की छत से अपनी नज़र फेर लेता, और गर्दन घूमाकर सामने देख लेता, और मानों वह युकलिप्टस् की डोलती झूलती शाख किसी नाजुकअन्दाम हसीना की मख़रूती उंगालियों की तरह उसके रुखसारों को छू लेती और वह सरेशाख झूमती हुई पत्तियों को झुकाकर उन्हें अपने रुखसारों से लगा लेता, और एकाएक एक मुलायम सा पत्ता उसकी उंगलियों में टूट जाता, और वह शाख़ उचककर, लहराकर, बदन चुराकर, हज़ार खम खाकर उसके हाथों से बुलन्द हो जाती। और उसके शोख पत्तों के शरीर झूमरों से हज़ार कहक़हों की सदा बुलन्द होती, और वह एकाएक खुश होकर इतमिनान की साँस लेकर सामने वादी की जानिब देखने लगता, और वादी से परे नीलगूं घाटियों पर इस्तादा हुए शाहे बलत के छतनारे, देवदार और बयार के मीनार किसी कोहना मस्जीद का सा तक़द्दुस और एहतिराम लिए किसी मुअाज़्ज़िन की सदा के मुन्तज़ार मालूम होते, और वह सोचता यह दुनिया कितनी हसीन है, कितनी हसीनतर हो सकती है, अगर ?

नहीं, नहीं, इस वक्त वह किसी अगर मगर को नहीं सोचेगा। इस वक्त दोपहर है और वह थका है, उसने खाना नहीं खाया है, और

* * *

उसे अभी कोई दो सौ मरीज़ों को और देखना है। इसलिए अभी वह किसी अगर मगर को नहीं सोचेगा। वह बस चन्द लमहों के लिए आँखें बन्द करके करके इस युकलिप्टस्ट की शाख के नीचे सो जायगा। सो जायगा। खो जायगा। नदी बह रही है, हवा चल रही है। पत्तों के सब्ज़ आँचल उसकी आँखों पर बिखर गए हैं। नींद धीरे धीरे आगे बढ़ रही है, वह सो रहा है, वह खो रहा है, वह सो, वह खो, गो, गो, गो..... "

● ● ●

एकाएक वह हड़बड़ाके उठा बैठा और आँखें मलके फिर देखने लगा। कहीं यह ख्वाब तो नहीं उसके सामने एक लड़की खड़ी थी। और वह हैरत से उसकी तरफ देख रहा था। पीप, फोड़ें और नासूरों से भरे हुये इलाके में, वबाई इमराज़ से घिरी हुई कहतज़दा वादी में इसक़दर खूबसूरत लड़की कहां से आ गई। बाल सुनहले और फैले हुए, शाहेबलूत के छतनारे कि सूरज की किरनों के लच्छे, कि चनारों से फूटते हुए शोले। आँखें बड़ी बड़ी, पुतलियाँ गहरी स्याह गुमगीन और अन्दोहनाक, अथाह और पुरइसरार, कायनात के इसरार और रमूज़ अपनी आग़ोश में समिटे हुए, नाक तवों और शमशीर की तरह लपलपाती हुई, तड़पते हुए हस्सास नथने, रुखसार इसक़दर सफेद और होंठ इसक़दर सुर्ख, गोया चहरे का सारा लहू खिंचकर उन होंठों में आगया है। वह होंठों को

अनुक्रमणिका

देखकर काँप गया। उसने अपनी नज़र नीचे झुका ली, तो उसे उस लड़की का छरेरा कलासकी वदन एक नीली क़मीज और पतली सुलवार में लिपटा हुआ नज़र आया। दाएँ शाने से पतली क़मीस का कपड़ा फट गया था, और उसमें से उसका सफ़ेद वदन यूँ झांक रहा था जैसे किसी वीरान नीले उफ़क़ पर कोई शफ़क़ पार-ए-अब्र...डाक्टर ने एकबार फिर अपनी आँखें मल के देखा। हाँ अभी उसके सामने थी और उसे जागते देखकर अपनी दिलेरी पर खुद ही शरमा कर पीछे हट गई थी, —"मुआफ करना मैंने तुम्हें जगा दिया, मगर मुझे दवा की सख्त ज़रूरत है।"

डाक्टर कुछ न वोला। उसने हाथ के इक हलके से इशारे से लड़की को अपने पास वैठ जाने को कहा। लड़की उसके क़रीव वैठ गई और उसे अपना हाल वताने लगी। वह कुछ सुन रहा था कुछ नहीं सुन रहा था। उसकी साँस इक अजीव नाहमवारी से चल रही थी।

'मैं वहुत दूर से चल के आई हूँ।'

—तुम शायद सितारों से भी वहुत दूर चल के आई हो,

'गोरा घेल मेरे गाँव का नाम है।'

गोराघेल, गोराघेल, गोरी कहीं यही मेरे यहसास की मंज़िल तो नहीं,

'फतेहदीन मेरे वाप का नाम है।'

—हाथ में दरान्ती लिए हुए भोरी डाढी खन्दापेशानी,

'मेरा नाम नाज़ाँ...'

नाज़ाँ...मुहब्बत भरे लहजे में तुझे पुकारू। नाज़ा नाज़ाँ मीराँ की सिसकी की तरह नाज़ुक तेरा नाम है।

'मेरे वाप को खूनी पेचीस हैं—'

—कोई और वात करो

'वह पन्धरह दिन से लेटा है'

नहीं, नहीं...कोई और वात करो। क्या तुम भी इसी ज़मीन की हो, क्या तुम्हारे वाप को भोरी डाढी नहीं है। खन्दा पेशानी नहीं है, क्या वह भी दर्द से कराह रहा है।

—'हमारे घर में कुछ नहीं है,'

नहीं, नहीं, मैं अपने कानों में उंगलियाँ डालूँगा। नाज़ाँ माहो अन्जुम की वात करो, आसमानपर रक्स करती हुई अप्सराओं की वात करो—

'ज़मीन्दारने लंगर खोल रखा है—'

दौलताने, टवाने, विर्के, टापे, नून, अस्फहानी...नाज़ाँ मुझे पागल मत वनाओ, देखो यह आसमान किसक़दर खूवसूरत, पुरइसरार और मबहम है—ब्लॅक की शायरी की तरह,

'वहाँ सुबह को सवको आधी रोटी मिलती हैं,—

--फिर वही रोटी? देखो झीलों में पानी रुका हुआ है, लाला हँस रहा है, युकॅलिप्टस के पत्ते तालियां बजा रहे हैं। हवाओं में खय्याम के मिसरों ऐसी खूशवू है।

'आधी रोटी मकई की,—पहले एक मिलती थी। अव आधी मिलती है, सुना है आगले जुमए से एक चौथाई मिलेगी। फिर क्या होगा डॉक्टर, मेरा वाप बहुत कमज़ोर हो गया है। अब तो उससे वात भी नहीं की जाती। मैं पन्धरह कोस से पैदल चल के आई हूं। मुझे कोई बहुत अच्छी सी दवा दो। मेरा बाप अच्छा हो जायगा ना? नहीं

अच्छा होगा तो मैं यतीम हो जाऊंगी, मेरा इस दुनिया में और कोई नहीं है, डॉक्टर, डॉक्टर तुम बोलते क्यों नहीं......डॉक्टर...'

एकाएक डॉक्टर उठ खड़ा हुआ और अस्पताल की तरफ चलने लगा, नाजाँ अपने आँसू पोंछते हुए उसके पीछे चलने लगी।

● ● ●

खूनी पेचिस के लिए वह सबको सतरह नंबर मिक्श्चर देता था, भोरे रंग का सय्याल। जो एक फ़ौलाद के बड़े ड्रोल में भरा हुआ था। उस ड्रोस के मुंह पर खद्दर का एक गीला कपड़ा पड़ा हुआ था। डॉक्टर ने टोंटी घुमाकर मिक्श्चर निकालना चाहा। फिर वह कुछ सोचने लगा। क्या मैं इसको भी धोखा दूँ? यह दवा है कि एहसास का फरेब है, कि समाज की चार सौ बीसी है? नाजाँ तेरे चेहरे पर किस क़दर भोलापन है, किस क़दर तयक्कुन है, क्या तू सचमुच यह समझती है कि यह भोरा सय्याल जो एक आदमी तो क्या एक गिलहरी की अँतड़ियों को ठीक नहीं कर सकता तेरे बाप को अच्छा कर देगा। आखिर नाजाँ तू मेरी क्या लगती है। मैं क्यों तुझे धोखा न दूँ। जब मुझे इसीलिए मुलाजिम रखा गया है। इसीलिए मुझे तनखाह दी जाती है। तो मैं अपना फर्ज क्यों न अदा करूं। ला अपनी बोतल, मैं उसमें सतरह नम्बर का मिक्श्चर डाल देता हूं। जो रोज सैंकड़ो बीमार यही मिक्श्चर खुशी खुशीले जाते हैं।

लेकिन डॉक्टर सतरह नम्बर के मिक्श्चर के क़रीब जाकर पलट आया। उसने सोचा वह नाजाँ की तशक्कूर आमेज मुस्कराहट की ताब न ला सकेगा। यह मुस्कुराहट जो एक मीठे खन्जर की तरह हमेशा उसके सीने में पैवस्त रहेगी। अहिस्ता आहिस्ता उसमें से लहू रिसता रहेगा। आहिस्ता आहिस्ता डॉक्टर अस्पताल के बाहिर चला आया। नाजाँ के चहरे पर मायूसी दौड़ गई। वह बोली—"दवा नहीं दोगे डॉक्टर? पैसा चाहते हो डॉक्टर। मगर मेरे पास तो कुछ भी नहीं है।"

डॉक्टरने नाजाँ को दस सेर चावल दिये; निमक का एक ढेला। थोड़ी सी दाल और सियाह मिरच। और इन सबको बान्ध कर नाजाँ के सूरजमुखी की तरह चमकते हुए सिर पर रख दिया।

नाजाँ हैरत से बोली, और "दवा?..."

डाक्टर ने कहा, "बस यही दवा है!"

नाजाँ खड़ी खड़ी डाक्टर की तरफ देखती रही। डाक्टर उसकी तरफ देखता रहा। शायद वह कुछ कहना चाहती थी। शायद वह कुछ कहना चाहता था। शायद वे दोनों कुछ नहीं कहना चाहते थे। इसीलिए दोनों में से किसी की जबान नहीं खुली। और वह लमहा गुजर गया। लमहा जो बेहद नाजुक लतीफ और ना पायेदार था। लमहा जो कुछ हो सकता था। किसी की बाँहों का सहारा। किसी की जिन्दगी की मशाल किसी के सीने की हक़ीक़त। वह लमहा गुजर गया। और डाक्टर को ऐसा महसूस हुआ जैसे उसके दिल में मीठा खंजीर उतर गया। दूसरे लहमे में दोनों अजनबी थे। वह उसका शुक्रिया अदा कर रही थी। वह रस्मन उसे जवाब दे रहा था वह झुक कर उसे सलाम कर रही थी। वह जवाब दे रहा था। कभी "गोरापेल आना।" हां, मैं जरूर आऊँगा। "मेरा बाप तुम्हें दुआएँ देगा।" "मैं किस लायक हूँ।" सलाम, सलाम...अबाबील उड़ गई। आसमान खाली रह गया।

जब वह बहुत दूर चली गई तो यकायक डाक्टर की हिम्मत ओद कर आई और उसका जी चाहा कि वह भागकर नाजाँ को अपने बाँहों में ले ले और उसकी हैरान पुतलियों पर अपने होंठ रख दे, और उसे ग़ैरफ़ानी मुहब्बत के अन्दाज में वह कह दे जो ग़ैरफ़नी मुहब्बत हमेशा से कहती चली आई है।

डॉक्टर के दोनों बाजू आगे बढे, मगर क़दम आगे न उठे। फिर बाजू भी गिर गये। और वह अपने एक लमहे की जसारत पर खुद ही शर्मिन्दा हो कर वापस अपने अस्पताल को लौट गया।

रात को उसने अपने हुक्कामे—आला को लिखा कि इस इलाके में अस्पताल को बन्द कर दिया जाए और उसकी जगह एक लँगरखाना खोल दिया जाए। तो वबा रुक सकती है।

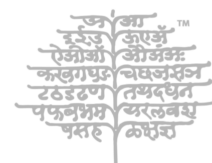
उसके जवाब में हुक्कामे—आला ने उसकी तबादिल गाँव से शहर में कर दिया। खैरियत गुजरी वरना वे इस जिद्दत पर उसे बरखास्त भी कर सकते थे!

शहर में आके वह गाँव की वबा को तक़रीबन भूल सा गया। यहाँ शहर में अक्सर लोग खाते पीते और खुशहाल थे। सफेदपोश लोग, दूकानदार, हाकिम, हाकिमों की औलाद, जागीरदारों के कोचवान, साईस। यहाँ दूसरे इम्राज थे। दूसरी दवाएँ थीं। डॉक्टर अपने अस्पताल के काम में मसरूफ हो गया। आहिस्ता आहिस्ता उसे यह खयाल सताने लगा। उसने ख्वामख्वाह हाकिमे आला को वह रिपोर्ट लिखी और अपनी कैरेक्टर बुक को दाग़दार कर लिया। कोई मरे, कोई जिए। उसकी बला से। क्या उसे हर माह की पहली तारीख को तनखा नहीं मिल जाती है। क्या अगले साल उसकी तरक़्क़ी नहीं होनेवाली है? क्या अफसर लोग उससे इज़्ज़त से नहीं पेश आते हैं। यह सब कुछ छोड़ के बेकारी का झंडा हाथ में ले के वह मुल्को क़ौम की कौनसी खिदमत सर अनजाम देगा, उँ-हूँ!

डॉक्टर ने घूमकर अस्पताल से बाहिर देखा। हस्पताल से बाहर उसे दूर तक छतों की क़तार नज़र आई। छतों के परे छत। उनसे भी परे छत। इन ग्राहकों में किस क़दर आराम है। डॉक्टर ने एक असील कबुतरी की तरह अपने शाने सिकोडे। अपनी गोल चिकनी थिड्डी को एक सुकून आमेज अन्दाज में सहलाया और डिस्पेन्सरी के अन्दर चला गया।

● ● ●

एक दिन जब वह अपने अस्पताल की कुरसी पर बैठा हुआ अपने अब्बा का खत आठवें बार पढ रहा था जिसमें उन्होंने उसके लिए शादी का रिश्ता ठीक किया था इतने में वजीर फीरोजचन्द का टेलिफून आया—"जलदी से आ जाइये डॉक्टर साहब, एक जरूरी काम है। मैं फिटन भेज रहा हूँ।" डॉक्टर ने खत को तह करके सम्भाल के अपनी जेब में रखा। अपना बेग तैयार किया। इतने में वजीर साहब की फ़िटन आ गई। और डॉक्टर उसमें बैठकर वजीर साहब की कोठी की तरफ रवाना हो गया।





अनुक्रमणिका

वज़ीर फ़ीरोज़चन्द की कोठी शहर से बाहर सरू के दरख्तों से अंगूर की बेलें लिपटी हुई थीं। और शहर के छत्तों में शहद की मक्खियाँ अपने शहर में कारोबार में मसरूफ थी। भिनभिनाते हुए, आती हुई इक पुरसुकून आरामदेह मैनज़र पेश कर रही थीं। कोठी के दरवाजे के बाहर सिपाही पहरा देते हुए ओंघते हुए मालूम होते थे। चारों तरफ इक मीठी मीठी खामोशी ग़नोदगी में लिपटी हुई मालूम होती थी। जैसे फिज़ा ने अंगूर के गुच्छों से सारी शराब कशीद करके खुद पी ली थी। और उसका कैफ आवर सुरूर चारों तरफ फ़ैला दिया था। फिटन पर बैठे बैठे डाक्टर को नीन्द आने लगी और उस वक्त पत्ता लगा चला कि वह वज़ीर साहब की कोठी के दरवाज़े पर है। जब सुनहरी वर्दी में मलबूस कोचवान ने आ के सामने का दरवाजा खोल कर कहा—" हुजूर। "

डॉक्टरने घबराकर आँखें खोलीं और अपने बेग पर हाथ मारा क्योंकि वज़ीर फिरोज़चन्द्र कोठी के दरवाजे पर खड़े, बड़े पुरतपाक अन्दाज में उसका खैर मक़दम कर रहे थे।

" आइए, डाक्टर साहब, आइए! "

वजीर फीरोजचन्द्र का गोरा मुस्कराता हुआ चेहरा, उसकी खन्दा पेशानी, उसके हाथ का मजबूत मुसाफा, डाक्टर के लिए एक नशासे कम न था। डाक्टर का चेहरा मुसर्रत से खिल गया। वज़ीर फ़ीरोज-चन्द उसकी कमर में पुराने दोस्तों की तरह हाथ डाल के उसे कोठी के अन्दर ले गए।

कैसी खूबसूरत सजी हुई कोठी थी। पर्दे कितने क़ीमती और खुशरंग थे। दीवारों पर पुराने राजपूती मुसव्विरों की तसवीरें कैसी सन्नाई से उभारी गई थीं। क़ालीन कितने दबीज़ थे। गोया वे फूलों के तख्तोंपर चल रहे थे। हर क़दम गुलाब था। हर साँस मुअत्तारेज। और वज़ीर फ़ीरोज़चन्द बड़े मेज़बान लहसे में कह रहा था—" डाक्टर साहब, आपकी तरक्की की दरखास्त मैंने मन्जूर कर ली है। कल आपको मेरी मन्जूरी की सरकारी इत्तला मिल जायगी "। डॉक्टर झुक कर शुक बजा लाया। वज़ीर फ़ीरोज़चन्द किसक़दर अच्छा हाकिम है। किसक़दर मेहेरबान और शफीक़। ज़राज़रासी बात का खयाल रखता है। डॉक्टर चलते चलते उसका शुक्रिया अदा करने लगा। वज़ीर फ़ीरोज़चन्द हँसते हुए मुस्कराते हुए उसे कोठी के मर्दाने की गुलाम गरदिश से घुमाकर ज़नाने खाने की तरफ ले जाने लगा।

ज़नान खाने के दरवाजे पर वह रुक गया। दरवाजे पर खड़ी एक खादिमा से उसने इशारा किया। खादिमा ने परदा सरकाकर उन्हें अन्दर आनेका इशारा किया। वज़ीर डॉक्टर को हाथ से पकड़कर अन्दर ले गया।

चन्द निसवानी क़हक़हों की आवाज़ें सुनाई दीं। खादिमाएँ इधर उधर भागीं। रंगीन लिबासों के रेशम डॉक्टर की निगाहों को खीरा करते गए। अब वह एक कमरे में खड़ा था। जिसकी जरंगार छत से एक बिल्लोरीन कंदिल लटक रहा था। और जिसके नीचे सागवान के एक मुनक्कश मसहरी पर मोतियों से मुज़य्यन झालरोंवाली जाली के अन्दर एक औरत सो रही थी।

डाक्टर का दिल धक से रह गया। ' नाज़ाँ!'

वह सिर्फ नाज़ाँ का रुख देख सकता था। एक रुख। एक अबरू, पलकों की एक आरास्ता सफ। सुर्ख होंठों का एक पतला बारीक कोना। कान की एक लौ करनफ़ूल से झमझमाई हुई। जुल्फ की एक लट, गरदन का एक खम, ऐसी साफ सफेद मुलायम बेदाग़ गरदन जैसे पर ढाली गई हो। यकायक कहीं से युकालिप्टस की एक शाख उसकी निगाह के सामने आ गई और इक लमहे के लिए उसकी आंखों में सब्ज़ अंधेरा छा गया और वह कुछ देख न सका।

वज़ीर फ़ीरोज़चन्द ने कहा बहुत ही आहिस्ता से " इसके लिए आपको तकलीफ दी है।'

डाक्टर चुप रहा।

वज़ीर ने कहा,—"दो तीन रोज़ से यह कुछ खाती नहीं है। जो खाती है कै कर देती है, कल रातभर यह जागती रही। अभी अभी इसकी आँख लगी है। कहें, तो जगा दूँ। वज़ीर ने आखिरी फिक़रा ऐसे अन्दाज़ से कहा गोया, वह उसे जगाना नहीं चाहता था मगर डाक्टर ने इसरार से कहा—" जगाना तो पड़ेगा वरना मैं मुआइना कैसे कर सकूंगा? "

वज़ीर फ़ीरोज़चन्द ने एक लमहे के लिए मुलतजियाना अन्दाज से डाक्टर की तरफ देखा। मगर उसकी सर्दमोहरी को देखकर वह मसहरी की तरफ आगे बढ़ गया। आहिस्ता से उसने जाली खोल के सोई हुई औरत को जगाया। पहले उसकी जुल्फ की लट को सम्भाला फिर उसके रुखसार को थपथपाया। फिर उसके कन्धे को एक हलकी सी जुम्बिश दी। नाज़ाँ इक अंगड़ाई ले के और नाज़ोअदा से उठी और वज़ीर फ़ीरोज़चन्द को अपने सामने खड़ा देखकर उसने अपना हीरे के कंगनेवाला हाथ उसकी तरफ़ हटा दिया।

फिर उसकी नजर डाक्टर पर पड़ी और वह एक हलकी सी चीख मार के सहम गई। वजीर फ़ीरोजचन्द ने हँस कर कहा,। 'कोई—अजनबी नहीं है। हमारा डाक्टर है। तुम्हारा इलाज करने आया है।"

डाक्टर ने कहा, "आप दो मिनट के लिए बाहर जा सकते हैं।"

"जरुर, जरूर।"

वजीर फ़ीरोजचन्द हँसते हुए बाहर निकल गया।

डाक्टरने मसहरी पर बैठ के चारों तरफ देखा। वह नाजाँ की तरफ देखना नहीं चाहता था। मगर दीवारें घूम रही थीं, फ़ानूस घूम रहा था और कालीन उसपर हँस रहा था। उसे आखिर नाजाँ की तरफ देखना ही पड़ा। जो निगाहें नीची किए बारबार अपनी उंगलियों को मरोड़ रही थी।

डाक्टर ने पूछा, "क्या तकलीफ है।"

नाजाँ बहुत देर तक चुप रही, आखिर बोली, "पेट से हूँ।"

"फिर?"

फिर बहुत अर्सेतक खामोश रही। दूर दूर तक चढ़े हुए जजबात की लहरें साहिल पर फैल गई। फिर डाक्टर के जजबात की शाम आ गई। और उसने महसूस किया, जैसे अंधेरा आहिस्ता आहिस्ता उसकी रगों और शिरयानों में फैल रहा है।

"वजीर साहब हमल गिराना चाहते हैं।" नाजाँ बड़ी कमजोर आवाज में बोली।

"फिर?" डाक्टर ने कहा।

फिर वही खामोशी। था तो एक लमहा ही। मगर डॉक्टरने महसूस किया—क्यों मैं ने इस लमहे में एक लमहे की मुमाफ़त तै कर ली है। क्यों कभी एक क़तरा कुलजुम होता है। एक सितम के अन्दर कितने आँसू छिपे होते हैं। एक लमहे में कितनी ही सदियाँ होती हैं। ऐसा कैसा यह लमहा होता है?...

नाजाँ ने कहा। "मैं भी यह चाहती हूँ।"

"क्यों?"

नाजाँ मुँह फेर के बाहर खिड़की तरफ देखने लगी। उधर देखते देखते आहिस्ता से बोली—"क्यों कि मैं उनकी रखेली हूँ।"

अब हर चीज करीने से उठी थी। न क़ालीन हँस रहा था। न दीवारें घूम रही थीं। न फ़ानूस झूल रहा था। एक कमरा था। एक मसहरी थी। एक औरत थी। सब कुछ वही था। सिर्फ जहाँ एक दिल वहाँ अब एक पत्थर था।

डॉक्टर ने पूछा, "तुम्हारा बाप कहाँ है?"

"वबा में मर गया।"

डॉक्टर ने बेग को खोला फिर बन्द कर दिया। डॉक्टर मसहरी से उठ खड़ा हुआ। नाजा का हाथ उठा, उसके होंठ खुले, फिर बन्द हो गए। हाथ मसहरी पर गिर गिया। उसने ऐसी ग्रिस्ना, निगाहों से डाक्टर की तरफ देखा, जैसे उन आँखों के अन्दर के जीने खुल गए और अब वह उसे अपनी रूह में उतर जाने को कह रही है। उसे अपने सीने से लगाने को कह रही हो। देखो, देखो डाक्टर उन्होंने सिर्फ बाहर से मुझे छुवा है। मेरे अन्दर कोई नहीं झाँक सका। मैं अन्दर से वही कुँआरी, शरमेली सूरजमुखी नारी हूँ, डाक्टर मेरे अन्दर कोई नहीं—झाँक के देखो, मैं वही हूँ, पाकबाज, आफीक़ा, सूरज की बेटी नाजाँ!...

* * *

एकाएक नाजाँने अपना चेहरा आपने हाथों से छिपा लिया और सिसकियां ले लेके कहने लगी—"डाक्टर, तुम गोरापेल क्यों नहीं आए, डाक्टर तुम गोरापेल..."

रातको उसने अपने कोट की जेब से अपने अब्बा का खत निकाल-कर उसकी तहों को ठीक किया। उसे एकबार शुरू से आखिर तक पढा और फीर उसे फाड़ के फेंक दिया।

उसके बाद वह कागज क़लम दवात ले के बैठ गया। और वजीर साहब, के नाम अपना इस्तेफ़ा लिखने लगा।

● ● ●

बहुत से साल गुजर गए। डॉक्टर अब बूड्ढा हो गया था। उसको ठ्योडी के नीचे का गोश्त लटक गया था। उसका पेट बाहर निकल आया था। उसके सिर के बाल सफेद हो गए थे। वह जबतक प्रॅक्टिस करता रहा अपने शहर का कामयाब तरीन जर्राह समझा जाता रहा। चीरने फाड़ने में दूर दूर तक उसके हाथ की सफाई की शोहरत थी। मगर अब उसने प्रॅक्टिस भी छोड़ दी थी। उसके अपनी जिन्दगी में काफी रुपया कमाया था। गो उसने उम्रभर शादी नहीं की, लेकिन अपने छोटे भाई के बेटे को अपना मुतबन्ना बना लिया था। उसे डॉक्टर की आला तालीम दिलवाई थी। और अब मसऊद डॉक्टरी का इम्तिहान पास करके सरकारी मुलाजिमत में मुन्सलक हो के शहर से दूर एक गाँव में सरकारी डॉक्टर तैनात हुआ था।

मसऊद का खत उसके सामने था। और वह उसे अपने कांपते हुए हाथों से पढ रहा था। मसऊद ने अपने बुजर्ग की मेहरबानियों का शुक्रिया अदा किया था। और उसे गाँव में आने की दावत दी थी। और बहुत बहुत इसरार किया था। बुड्डा मसऊद का कहा टाल नहीं सकता था। मसउद की मौजूदगी बुढे के लिए आदतें सानिया बन चुकी थी और अब वह उस नौजवान की गैरहाजिरी बुरी तरह से महसूस कर रहा था।

बूढे डॉक्टर की आँखें मसऊद के बारे में सोच कर धुन्दली हो गई। उसने अपना चष्मा उतार के अपने कांपते हुए हाथों से रुमाल से चष्मे को साफ किया और बुढे जाननिसार मुलाजिम को सफर की तैयारी के लिए हुक्म दिया।

ज्यूं ज्यूं गाँव क़रीब आता जाता बूढे के दिल की हरकत तेज होती जाती। हां, यह वही गाँव था। जहाँ वह डॉक्टरी पास करके पहली बार तैनात हुआ था। वही नदी थी। वही धान के खेत थे। पहाड़ों पर वही शाहे बलूत के छतनारे थे। दूर पहाड़ की चोटी पर सफेद बर्फ चमक रही थी। यही बर्फ उसके अपने सिर पर भी थी। और वह टट्टू पर बैठे बैठे एक एक कदम गिन रहा था। हर कदम पर वह अपनी जवानी के क़रीब आ रहा था। अस्पताल के क़रीब पहुँचकर वह टट्टूसे नीचे उतर पडा और दाऊद से छड़ी लेकर पैदल हौले हौले चलने लगा। यह कम्पाउण्डर का क्वार्टर था। यह डॉक्टर का बंगला था। वही बंगला था। बंगले के बाहर वही नाश पाती का पेड़ था, बड़ा हो गया था; फैल गया था। मगर वही पेड़ था।

(शेष भाग पृष्ठ १४७ पर)





अनुराग की मधुरिमा
संस्कृत साहित्य की सु-रसा,

शृंगार-नायिका

— र. आ. जोगळेकर



संस्कृत साहित्यका अष्टनायिकाओंवाला विख्यात संकेत भरत मुनि द्वारा नाट्यशास्त्रमें (२२ : २०३-२०४) निम्मानुसार प्रस्तुत किया गया है :

तत्र वासकसज्जा वा विरहोत्कण्ठितापिवा।
स्वाधीनपतिका वापि कलहान्तरितापि वा।
खण्डिता विप्रलब्धा वा तथा प्रोषितभर्तृका।
तथाभिसारिका चैव इत्यष्टौ नायिकाः स्मृताः ॥

सर्वसामान्यत : उपरोक्त संज्ञाओंका तात्पर्य है : जिस नायिका का पति सदा उसके वशीभूत रहे वह स्वाधीनपतिका, स्वाधीन भर्तृका। प्रवासी-देशान्तरवासी प्रियकरवाली प्रोषिता, प्रोषितपतिका, प्रोषितभर्तृका। प्रिय के स्वागत के लिए साज शृंगार सामग्री सह तत्पर वासवसज्जा, वासकसज्जिका। प्रियकर के विरह-वियोगसे व्यथित, उत्का, विरहोत्कण्ठिता। प्रिय के प्रणयद्रोह से क्षुब्धित खण्डिता। प्रिय से कलह करने के उपरान्त पश्चात्ताप दग्ध कलहान्तरिता। संयोग-संकेत स्थानपर प्रिय से मिलने के लिए स्वयं गमन करनेवाली अभिसारिका। संकेतस्थान पर प्रिय के न आने से व्यथिता है विप्रलब्धा।

आज जो स्वाधीनपतिका होने के नाते संतोष और गर्व का अनुभव करती होगी वही पति के प्रवास गमन पर प्रोषितपतिका बनेगी। आज वह आयेगा; अतः स्वागत की तैयारी से सम्पन्न होगी, और वासकसज्जा कहलायेगी। पति के अन्य प्रणय अभिसार का भेद मालूम होनेपर वह खण्डिता होगी-आदि सभी अवस्थाएँ किसी एक ही नायिका में अन्यान्य परिस्थितियों एव संयोगों वशात् निर्माण होने की संभाव्यता है।

शृंगारमञ्जरी, वक्रोक्तिगर्विता नामक एक नई और नौवीं, महानायिका की अभिव्यञ्जना करती है।

पूर्वोक्त नायिका-भेद की स्वीया, मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा, परकीया और सामान्या नामक उप-भेद स्वाधीनपतिका, प्रोषितापतिका, वासकसज्जा और अभिसारिका इन महानायिकाओं को लागू होते हैं। विरहोत्कण्ठिता,





अनुक्रमणिका

खण्डिता, कलहान्तरिता, विप्रलब्धा और वक्रोक्तिगर्विता महानायिकाओं में मुग्धा को प्रश्रय नहीं दिया गया है।

अलंकारिकों एवं साहित्यशास्त्रकारों के द्वारा इन महानायिकाओं का विभिन्न दृष्टियोंसे वर्गीकरण किया गया है।

स्वाधीनपतिका

अष्टनायिकाओंमें स्वाधीनपतिका प्रकृति से सरल और प्रवृत्ति से विमल होनेसे तथा अपने स्वाधीनपतिकत्व के कारण वैवाहिक जीवनका सार-सर्वस्व उसीके स्वाधीन होने से इस नायिका को विवेचन के लिए अग्रिम स्थान दिया जा रहा है :

रसमञ्जरी में इस नायिका का प्राप्त लक्षण निम्नानुसार है :

सदासाऽऽकृताज्ञाकराप्रियतमा स्वाधीनपतिका। अस्याश्चेष्टा।
वनविहारादिमदनमहोत्सवमहाऽहङ्कारमनोरथाऽऽवाप्ति प्रभृतय :।

जिसकी आज्ञाएँ एवं इच्छाएँ पति सदा निर्वाह करता है वह है स्वाधीनभर्तृका! इस परिभाषा के 'सदा' इस शब्द के प्रयाजने के प्रति शृंगारमञ्जरी आक्षेप उठाती है। अष्टनायिकाओं का वर्गीकरण अवस्थाओंके सिद्धान्त को लेकर किया गया है और जब कि अवस्थाएँ चिरस्थायी नहीं है अंत यह शब्दप्रयोग अप्रस्तुत माना जाय! अंत शृंगारमञ्जरी ने—जो अनुकूल प्रिया है वही स्वाधीनपतिका—इस परिभाषा का सुझाव प्रस्तुत किया है।

आलंकारिकोंने मुग्धामध्यादि व धीराधीरादि वर्गीकरण 'स्वाधीन-पतिका' को लागू किये हैं। उनमें से मुग्धा के बारे में यह आक्षेप उठाया जा सकता है कि यद्यपि पति उसके अधीन हो, तो भी उसके प्रति उसका मन अनुभूति एवं संतुलना से प्रगल्भित तथा परिपुष्ट बना हुआ नहीं रहता! पति की अनुकूलता के कारण धीराधीरादि लक्षण 'स्वाधीनपतिका' में विद्यमान होना असम्भव है,—इसप्रकार का विरोध शृङ्गार मञ्जरी ने उठाया है। कारण यह है उन लक्षणों के होनेसे वह खण्डिता वर्ग में अन्तर्हित की जायगी।

शृङ्गारतिलक ने इस नायिका की परिभाषा रति-प्रवृत्ति-विशेष के अनुरोधसे की है।

यस्याः रतिगुणाकृष्टः पतिः पार्श्वं न मुञ्चति
विचित्रविभ्रमासक्ता स्वाधीनपतिका यथा।

भलेही नायक नायिका के अधीन हो तो भी आसक्ति के होने से वह उसके पास सदैव रहनेकी गुंजाइश प्रतीत नहीं होती—कमसे कम कविता को छोड़कर व्यवहारिक जगत् में! उसके अलावा स्वाधीनपतिका ने पतिपर पाया प्रभुत्त्व केवल रति वृत्ति की अधिकतासे कहने से उसके अन्य गुणों की अवहेला होती है और तिसपर अन्याय भी होता है; न कि केवल एक नायिकापर अपितु नायकपर भी!

शृङ्गारमञ्जरी में स्वाधीनपतिका के आठ भेद बतलाए गए हैं: स्वीया, मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा, परकीया और सामान्या एवं दूतिवञ्चिका तथा भावशंकिता। आखिर के दो भेद कर्ता की मौलिक कल्पना की उपज है। नायक दूतिवञ्चिका के अधीन होता है। नायिका उससे चुपके से समझौता करती है तथापि कृत्रिम ऐंठ का बहाना धारण करती है और दूति का परिहास करती हुई उसे फँसाती है। नायक के संग प्रणय अभिसार को करते समय जो भविष्यत् के बारेमें भीतिग्रस्त होती है, वह है भावशङ्किता! 'दूतिवञ्चिका'—एक क्रीडा प्रकार है, वह कदापि वर्ग—विशेष नहीं बन सकता! स्वाधीनपतिका को, भला, भविष्यत् के प्रति दुःखका संदेह क्यों? क्या पति का शङ्कित करनेवाला कुछ आचरण उसने देखा है? या स्वतः के यौवन के ढलने के बारे में अस्पष्ट संवेदना उसे हुई? या यह अन्या अथवा सामान्या है?

स्वाधीनपतिका के भाग्य के बारेमें क्या कहे? गाथासप्तशती (क्र० ८६) में कविवर कहता है :

एक्क पहरुव्विण्णं हत्थं मुहमारुएण वीअन्तो।
सो वि हसन्तीएँ मए गहिओ वीएण कण्ठम्मि॥

नायिकाने लाडमें आ कर प्रियकरको चप्पत मारी, तो उसकी नाजुक हथेनीको कितने कष्ट हुए! तुरन्त उस करकमलपर वह हवा फूँकने लगा। तब हँसते हँसते उसने अपना दूसरा कर उनके गलेमें बाँध दिया—।

स्वाधीनभर्तृका के चरित्रमें आत्मविश्वास एवं अहं होना है। प्रियकर है ही मेरी मुठियामें। मन चाहे तब मैं अपनी उँगलियों पर उसे नचा सकती हूँ! व्यर्थमें नहीं है यह—मेरे पास जो इतने गुण है! यह सब माना, लेकिन, क्या उसे इस बात का ज्ञान है? अन्य स्त्रियोंमें अभावसे प्राप्त होनेवाले गुण मुझमें है, यह तो मैं भली भांति जानती हूँ-परन्तु विना तुलनाके वह कैसे जानेगा? गाथासप्तशती की एक नायिका (क. ४८) प्रार्थना करती है:

अण्णमहिलापसङ्गं दे देव करेसु अम्ह दइअस्स।
पुरिसा एक्कन्तरसा ण हु दोसगुणे विआणन्ति॥

प्रभो! मेरे पतिका संयोग अन्य स्त्रियोंसे होने दो-मुझे उनका कोई रंज नहीं होगा—न मुझे डाह होगा! अन्य स्त्रियों से उसका सम्बन्ध होनेपर उसे अपने पास अविद्यमान होनेवाले गुण मेरे पास होनेका ज्ञान होगा और उसका प्रेम दुगुना बढ़ेगा। इसमें धोखा तो निश्चित है—मैं इसे जानती भी हूँ, लेकिन संकटको मोल लेने को तैयार हूँ। बहुतांशतः कारण यह कि मेरे पति अधम चरित्र के नहीं है इस पर मेरी श्रद्धा है तथा अपने पास निवसित संपृक्त अनन्य साधारण गुणों के बारेमें उसे आत्म विश्वास है। वस्तुतः यह अहंकार है-और इसे मैं जानती हूँ। पतिके अन्तर में मेरा अधिष्ठान है। इसका मैंने अनुभव किया है इसीलिए तो इसकी प्रतीति मेरे मनमें हुई। पति मुझसे एकनिष्ठ है। कोई भी सामान्य स्त्री इसीमें संतोष मानकर अपने घरबारको सम्हालती-बनाती जायगी। यदि यह एकनिष्ठा अज्ञान और अनुभवों पर आधारित होती तो उस अल्प संतुष्टत्व में मुझे सन्तोष—सुख नहीं है। मुझमें होनेवाले गुणोंकी सहेतुक संवेदना उसे हो, यही एक मात्र मानस है। यदि इस अग्नि परीक्षामें सफल नहीं बनी तो उसके परिणामको भुगतने के लिए मैं तैयार हूँ।

यह देखिए, स्वाधीनपतिका! पति तो उसके अधीन है। उसकी आज्ञा, वाचा अथवा इच्छामें, परिणत होने का ही विलम्ब मानों उसकी पूर्तिके लिए वह सदा तत्पर है। इसी आत्मसन्तोष से उसका मुखचंद्र प्रफुल्लित है। मानों, मनसे उफननेवाला प्रमोद ही अभिव्यक्त करने के लिए उसने विचित्रोज्वलवस्त्र परिधानित किए हैं। मदन महोत्सव के मेलेमें रमने की उसकी कामना है। वसन्तागम के समय उन्होंने इस उत्सवको समारोहित किया है। साम्प्रत समय शारदोत्सव के बहार के दिन

हैं। उसे बनविहारसे रुचि है। और इसीलिए तो वह वनमें ईप्सित की तुष्टि करने आई हैं। गर्द, सुशीतल तथा घनी और मुलायम हरियाली चारों ओर के प्रदेश में लेटी है। इर्दगिर्द की वृक्ष बल्लरियाँ रंगीन-बेरंगीन फूलों से उत्फुल्लित है। वायु के प्रत्येक झोंके से उनका मत्तगन्ध वन-प्रदेश के वातावरण को मतवाला बनाता है। बयार के हर हिलोर से उनके दस्ते मानों हरियाली को गुदगुदी करने के लिए झेंपते हैं। और उनके प्रत्येक स्पर्श से यह मानों सीत्कारतासे बदन थिरकाती मचलाती है, सिहरन दौड आती है। हरियाली पर लेटी हुई नायिका की विभ्रमता के कारण नायक तन्द्रा-मग्न हुआ है—किंचित् क्षुब्ध भी हुआ है। मानों, सोचते, संभ्रान्त हुआ है कि आवाहन करनेसे पहले आक्रमण के लिए कौन अवलम्ब अपनाऊँ—? उसने गले में गलबाहियाँ डालकर वह उसे केवल भृकुटि संकोच एवं ओष्ठों की अशब्दित फूल–फूलन से पूछती है—"अजी, ऐसी आँखें गाडकर भला, क्यों देखते हो ? जाने, मैं आपको आज ही मिली हूँ!" और मानों वह उससे बतलानेवाला है "हाँ—तुम तो अद्वितीय सुन्दरी हो और तुम्हारा विभ्रम भी अभिनव है! तुम नवनवोन्मेषशालिनी हो अतः इसीलिए मेरी प्रिया हो और इसीलिए मैं तुम्हारे अधीन हूँ।" गाथासप्तशती (अ. ४९८) का कवि कहता है :

मुहपेच्छओ पई से सा वि हु सविसेसदंसणुम्मइआ
दोवि कअत्था पुहइं अमहिलपुरिसं व मण्णन्ति ॥

उसका मुख देख कर पति प्रसन्न हुआ और उसके दर्शन से पत्नी उन्मत्ता बनी! मानों इस धरापर कोई अन्य स्त्री भी नहीं है तथा न कोई अन्य पुरुष है इस भावनासे वे कृतार्थ बने।

वासकसज्जिका

भरतने नाट्यशास्त्रमें वासकसज्जिका की व्याख्या (२३: २०६) जो की है, वह इस प्रकार है :

उचिते वासके या तु रतिसम्भोगलालसा
मङ्गलं कुरुते हृष्टा सा वै वासकसज्जिका ॥

प्रतापरुद्रयमेंकी व्याख्या भी करीब करीब ऐसीही है:

प्रियागमनवेलायां मण्डयन्ती मुहुर्मुहुः
केलीगृहं तदात्मानं सा साद्वासकसज्जिका ॥

इस व्याख्याको शृंगारमंजरीने भी अपनाया और इसके साथही दूसरी व्याख्या भी दी है। वह इस प्रकार है :

नायकापेक्षका सन्तोषकृतप्रयत्ना वासकसज्जिका।

प्रिया ने आज साथ आनेका वादा या संकेत किया है उसीके स्वागत के लिये नायिकाने रति-गृह सुसज्जित किया है, सुगंधित भी किया है और वह खुद वेशभूषा और अलंकार धारण करके नायक की बाट जोह रही है।

यह है वासकसज्जिका का, वर्णन हो सकेगा।

यह देखिये वासकसज्जा। प्रियतम के स्वागत के लिये उसने शृंगार मंदीर सजा रखा है, शय्या को सुसज्जित, सुशोभित और पुष्प-मालाओं से सुगंधित भी किया है। नायिका मध्या है। उसने प्रसंगोचित वेशभूषा भी की है, केशोंमें शूल भी पहने हैं। ऐसे प्रसंगों में अलंकारों से बाधा होती है, चुकते है। इसलिये इसने मोतियों की माला ही बस पहन रखी है। मानों क्रीडामें ताल आ जाय, इसीलिये घुंगरू पहने है। अभी नहाई लगती है। केशकलाप अभी भी जरा गीला है—ऐसा

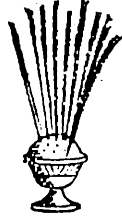
(शेष भाग पृष्ठ १४८ से आगे)

अनुक्रमणिका

विगत तीन पिढियां

"काटा"–प्रतिमाकी अगरबत्तिया प्रतिष्ठित घरोंमें विगत तीन पीढियोंमेंसे यानी १८७२ से शुचिता और प्रसन्नताका वातावरण अबाधित रूपसे निभाती आई हैं। केवल भारत ही नहीं अपितु विदेशोंमें भी "काटा" प्रतिमा की अगरबत्तियोंकी अविरत माँग प्रस्तुत होती है। आप भी "काटा" प्रतिमा की अगरबत्तियाँ का अवलम्ब करके कौटुंबिक वातावरणमें प्रसन्नता निर्माण करें।

पुरुषों की प्रिया
नारियोंका एक मात्र सुझाव



- गुलाब
- राजदरबारी
- नं. १०१०
- नं. १००८
- नं. १००६
- नं. १००४



स्थापना- १८७२

काटा छाप
अगरबत्ती

तेल, अत्र तथा अन्य सुगन्धि वस्तुओंके उत्पादक

तारका पत्ता: अगरबत्ती,
फोन. नं: २०९७

दामोदरदास भगवानदास

७६१, रविवार पेठ, पो. बॉक्स. नं. ५९५, पूना २

TOM & BAY



अनुक्रमणिका



सन् १९४६। भारत में जहाँ तहाँ कौमी बलवे जगने लगे। बहशियानापन रोजाना हकीकत बनी। अन्तमें यह विप्लव शान्त हुआ। और



विप्लवके बाद

— मामा वेरेरकर

वह बावला बना था। दो वर्ष पूर्व के बेरहम बलवे में वह नदारद हुआ था! नौखाली में असे घरों की काफी तादाद थीं कि जिन के मालिक इसी तरह मिटियामेट हुअे थे। वह विप्लव अब निःस्पन्द बना था। स्थिरता पुनरपि सुरक्षित बनी थी। फिरसे अुस अुधमके जागने के डर की गुंजाअिश भी न थी।

चुनाँचे अुस सल्तनत में तब्दीली हुई थी। अब तो वे पाकिस्तानी बने थे। हिन्दु होनेके बावबूदभी अुनका हिन्दुस्तान से कोई सम्बन्ध बाकी न बचा था। हाँ, सम्बन्ध था सिर्फ अेक ही बात से—भाषा के साथ। कारोबार था, पाकिस्तानका; फिरभी बँगला भाषा जहाँ तहाँ अपने पूर्वके वैभवको लेकर विराजमान बनी थी। अब तो हम पाकिस्तानी हैं, हिन्दुस्तान से हमारा रिश्ता टूटा असा कहनेवाला मुसलमान भी अपनी 'बँगला' में ही बोलचाल किया करता था। अिसीलिए सल्तनत में तब्दीली हुई है, असा न कोअी मानता था, और न किसीको लगता था।

आखिर, पहलेभी मुसलमान ही कारोबारी थे न? पूरे बँगाल पर अधिकार जमाते थे। अब तो पूर्वी बंगाल पाकिस्तान बना था और मुमकिन है, यही कुछेकों के मनका खलल हों। नाराजगीकी वज़ह हो भी जायें!

हरेकके मनमें कुछ न कुछ खलल था जरूर। अब तो अुधर हिन्दुओंका राज्य पनप रहा है और हम ही सिर्फ़ अिस पुरानी चक्कीमें पिसे रहे हैं, यह खयाल जिन का था, वे ही सिर्फ़ मन ही मन मायूस थे। भला यह मायूसी किसे सुनाये? हर कोअी अपने मन में अपराधी सा विकल था।......

और भला क्या मुसलनान भी अमन खुशी में थे? हाँ, अुस बलवेमें अुधम मचानेवाले जवान बड़ी खुशीमें मस्त थे मानों जन्नत हाथोंमें आयी हो। अिस खयाल में मस्त थे कि अब तो हम राजा बने हैं। दूसरो से हम अलग–निराले हैं। शेष लोग चिंटी कीड़ों के–से मिट्टी में रेंगते हैं और हम हाथी की शान से आगे बढ़ते जा रहे हैं।

फिर भी दिल से वे खुशहाल न थे। नयी गिल्ली और नया दाँव शुरू हुआ था। हिन्दुओं को निकाल कर अुन की जगहें हमें मिलेंगी, अिस अरमानमें वे मग्न थे। पाकिस्तान के अभिमान के बनिस्बत अपना अुल्लू सीधा करने की तंगदिली पर वे नयी सल्तनत का अभिमान मन में सँजो रहे थे।

अनुक्रमणिका

करीमचाचा जैसे बूढे मौन बने थे। वर्तमान परिस्थिति को भला या बुरा माने यह अुन की समझ में नहीं आता था। हिन्दुस्तानके बडे समुन्दर में यह पाकिस्तानी द्वीप तूफान अुठने पर कैसे स्थिर रह सकेगा यह शंके अुन्हें बार बार परशान कर रहा था। सिड़ी जवानों को काबू में रखना जिस से पहले जैसे नामुमकिन बना था, वैसे ही यदि नसीहत के कुछ शब्द सुनाना चाहा तो भी अुसे सर आँखों पर करनेवाला मिलन दुश्वार बना था। फिलहाल करीम चाचा पहले की भाँति नवीन के घर आया जाया करते थे और हुक्का पीते-पीते पुरानी यादगारों को याद कर दोचार आँसू बहाया करते थे। नवीनका घर अुध्वस्त बना था-यानी घर की दीवारें, दरवाजे, खिडकियाँ ढही नहीं थीं। घर तो बिल्कुल ज्यों का त्यों मजबूती से खडा था।

फिर भी घर ध्वस्त बना था।

...पर घर में कौन रहा अब? न माँ रही, न पत्नी! बहनभी कहीं लापता हुअी थी। फूल के पौधे मुर्दे बने थे। हरियाली भूलके भी कहीं नजर न आती थी। चंडीमंडप बरबाद बना था। नौकर बान्दों से भरे अुस मकान में अब सिवा नवीन के कोअी रहता तक नहीं था। अेक रसोअिया था, जो खानपान होते ही चला जाता था। दूसरा अेक नौकर था जो अपने कामके ही समय आता था। नौकरानी, घरमें कोअी स्त्री न होनेसे आने के लिए, किस तरह राजी हो जाये? अितना बडा घर, अितने कमरे-दौलतखाने, अूपर नीचेके सोनेके कोठे सब कुछ रीता बना था। सारी कोठियों को ताले लगाकर नवीन नीचे के किसी अेकाद कमरे में बिछौना डाल लेटा रहता। पूजा घर में पूजा के लिये, रसोई घर में भोजन के लिअे और करीमचाचा के जैसे कोअी मिलने जुलने आये तो बाहर के बारमदे में जाना, यही केवल आव-भाव था।

श्री. मामा वरेरकर : मराठी भाषा के अग्रिम श्रेणी के नाटककार अेवं अुपन्यासकार माने जाते हैं। गत पचास वर्ष की मराठी गद्य साहित्य की प्रत्येक प्रमुख प्रवृत्तिके आप अुन्नायक है। मामासाहबकी साहित्य कला जीवन को अूर्ध्वगामी बनाने की हिमायती रही है। वस्तुतः कला की सच्ची शक्ति जीवन की यथार्थताकी भूमिमेंही पनपती है अैसा विश्वास आप अनेकवार अभिव्यक्त करते आये हैं।

घर बरबाद बना था। यह तो बिल्कुल सही। परन्तु फिरभी खेतबाडी जमीन-बमीन सबकुछ बचा था। आमदनी आती थी। रैयत आकर लगान अदा करती थीं। पर पहलेका स्नेह-सम्बन्ध लापता हुआ था। बाडी का आदमी आनेपर 'दो सन्देश खाओ और पानी पीओ' कहनेवाला आवभगती घर में कोअी भी न था।

करीमचाचा कहते, "हरेको अपना-अपना मजहब प्यारा होता है। परायेके मजहबकी नुक्ता-चीनी करना ठीक नहीं है।"

"पर आप लोगों का यह मज़हब-भला कैसे कहूँ कुछ खिलाफ़ में! लेकिन आप लोगों का यह मजहब मैं समझ नहीं सकता। घरकी रानी भला नापाक कैसी बनी? जब किसी ने न कलमा पढ़ा था और न कोअी तरीक़त की गयी थी वे किस तरह नापाक बनीं? हमारा धर्मान्तर कीजिये सो तो वे खुद कहने, कहीं, गयी थीं? जुल्म जबर्दस्ती से भला आदमी किसतरह बेदीन बना, यह तो मेरे दिमाग में नहीं आता..."

नवीन कहता, "वह आप की समझमें नहीं आनेका, चाचाजी। हमारा धर्म बड़ा कड़ा है। जिस की साया हमने त्याज्य मानी अुसकी साया गिरने से हमें प्रायश्चित्तका विधान करना पडता है। आप तो हमारे यहाँ आया जाया करते थे। हमारे घर भोजन करते थे परन्तु हम भला कभी आप के घर जीमने चले थे?"

"वही तो मैं कहता हूँ" करीमचाचा ने कहा। "आप के घर खाना खाने से मेरा मजहब कभी बिगड़ता नहीं था। लेकिन घर का साफ सादा गोश्त मच्छी का नहीं—खाना खाने से ही आप का मजहब भला कैसे बिगड जाता है? आप लोग, भले गोश्त नहीं, मच्छी खाते हैं, हम लोग गोश्त मच्छी खाते हैं; फिर हम तो रोज गौका माँस नहीं खाते, और साफ़ पाक खाना खाने से आप लोग मुसलमान बने हैं, क्या आप के हिन्दु लोग भी यही कहेंगे?"

"जी नहीं, जी नहीं, वह तो आपकी समझमें नहीं आने का" नवीन ने अुत्तर दिया। "बडे कडे हैं, हम हिन्दुओं के सनातन शास्त्र नियम!"

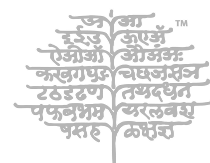
"मुझे तो भअी, सुलझाव सूझता नहीं है, आप की रस्म रिवाजों का" करीम चाचा कहते बने। "जबर्दस्ती-अगर कहीं हुई हो तो, कहीं अुसके बारे में शक भी हुआ तो आप जरूर प्रायश्चित्त कर लें। लेकिन घर की औरतों को—रानियोंको घर निकाला करते हैं, भला इसे कोई भलमनसी कहेगा? आज घर में दीया जलानेवाला कोअी नहीं है। सोने की जैसी बहुरानी घरसे बाहर निकाल दी। ...और न जाने लड़केको कौन कहाँ ले गया होगा। घर तबाह हुआ...भला वह भी किस वजह? जुल्म हमारे लोगों ने किया अिसे माना, मगर आप ने अपनी औरतोंको घर से क्यों दूर किया? बेइन्साफी करनेवाले हमारे लोग जितने गुनहगार—ठीक वैसे ही अपने घर की रानियोंको बाहर निकाल देनेवाले आप लोगभी गुनहगार नहीं हैं?"

"गाँधीबाबा कहते थे कि जुल्मके वास्ते कोई रिहाई नहीं है! अुनका आप ने अनसुना किया! और आप ने सुना अुस फटेहाल भट्टाचाजी का जो मुट्ठी भर दाने के लिअे कोठी पर बार-बार चक्कर काटता है। गाँधीबाबा से क्या आप का यह भट्टाचाजी बडा नबी है?"

"जी नहीं, जी नहीं...वह आपकी समझ में नहीं आनेका।" नवीन ने कहा, "बिल्कुल असम्भव है, नहीं...नहीं; आप इन बातोंको बिल्कुल नहीं समझेंगे! भला छोड दीजिये इन बातों को! जो हुआ सो हुआ; बीत गअी सो बात गअी..."

"तो फिर से अेक मर्तबा शादीवादी कर घर बसाओ।" करीम

अनुक्रमणिका





चाचा ने कहा, "जिस घरमें औरत नहीं, भला वह घर किस कदर का ? मैं जो बूढा ठहरा और ज़्यादह क्या कहूँ ? लेकिन तुम्हारे बसे हुअे अमन आबादी के घर की यह बरबादी अपने से देखी नहीं जाती..."

हुक्का पीते-पीते करीम चाचा ने चल दिया।

नवीनको भी अुसी तरह भाता था। वह भी कोशिश में लगा था। सगाओी के लिए पुरोहितों को बुलाकर बारबार कातरता से अुसने अनुनय किया था। लेकिन नवीन के साथ सगाओी के लिए कोओी भी पिता अपनी लड़की को खड़ी करने के लिए राजी नहीं था।

नवीन का अपनी पत्नी से बहुत प्रेम था। अुन दोनों में सुख चैन की बाँसुरी बजती थी। दिलजमाओी और अमनचैन के दिनों की याद अुसे बार बार सताया करती थी। पत्नी को जबसे घर-निकला कर दिया तबसे कितनी ही रातें, रोते रोते, तड़प-तड़पकर गुजर गयी थीं।

वह युवा था। अभी-अभी, कहीं, घर बस रहा था। अभी-अभी, कहीं, अुन दोनों की दिल की लगी लग रही थी। बड़ों और जेठों से छिप छिप कर किये हुअे प्रणय अभिसार के प्रसंग बार बार अुस की आँखों के सामने झूम झूमकर नाचते थे। स्मृतियाँ जागी कि, मन बेहाल हो अुठता। मन बावरा हो जाता। अुफनान जागता और जवानी के ज्वार की लहरें अुस के लिअे असह्य हो जाती और कोओी देखता नहीं यह देख कर वह बार बार अपने सर को जमीन से पटकाता रहता।

घर छोड़ जाने के वक्त का पत्नी का चेहरा बार बार अुसकी आँखों के सामने अभिनयीत होता...। वह आकुलाती थी, वह विकल बनी थी। टूँस टूँसकर रो रही थी। अुसके चरणों पर अपना सिर रखकर वह अश्रुजल से अुन्हें धोती जाती थीं। बिखरे हुअे बाल अुस के पैरोंके अिर्दगिर्द जाल बने थे। अुस समय के स्पर्श के रोमांच, आज अुसे थिरका कर व्यथित करते थे। वह कह रही थी, "मैंने क्या गुनाह किया ? मुझे भला यह दण्ड क्यों ? मैं क्यों अपना घर छोड़ूँ ? आप कहाँ मुझे छुड़ाने के लिअे दौड़े आये थे ? अुन राक्षसोंने जब मुझ से जबर्दस्ती करना शुरू किया तब आप ने किवाड़ अन्दर से बन्द कर लिया था। हाथ के कंगन चूर चूर होकर खूनसे लथपथ बनते दम तक मैं किवाड़ खटखटाती रही, पर आप का दिल नहीं पसीजा, नहीं पिघला। मुझे सहारा नहीं दिया। मुझे घर में नहीं लिया गया। मेरा संरक्षण नहीं किया-अिसीलिए तो वे मुझ से जबर्दस्ती कर सके न ? अिसीलिए न मैं भ्रष्ट हुअी ? मेरी अिज्जत लुटाओी गयी ? क्या यही है मेरा अपराध ? मैं आप पर अिल्जाम नहीं लगाती-आप ही मेरी श्रद्धा, आपही मेरे देवता, आप ही मेरे भाग्यविधाता, आप ही ने मुझसे मुँह

मोड़ा, अिसीलिये तो मेरी अिज्जत लुटाअी गयी न ? क्या यही है मेरा गुनाह ? तो फिर भला मुझे क्यों यह सजा ? मैं क्यों अपना घर छोड़ूँ ?"

करुणा विकल होकर रोती थी फिर भी अीश्वर नहीं जागा। सदय निर्दय बना। "क्या अिसी की सजा मुझे भुगतनी पड़ेगी ? देवता भ्रष्ट नहीं होते, भ्रष्ट होती है घर की बहुरानी—गृहलक्ष्मी—अबला-जनों की निर्बल असहाय्य जाति! परन्तु यदि बलवान् समर्थ पुरुषही दुर्बल बौना होकर घरमें छिपा छिपा बैठने लगा तो, दुर्बल स्त्री क्या करेगी ? मुझे क्यों यह सजा ? कहो न, परायेके अपराध के लिए मैं यह सजा क्यों भोगूँ ? दुर्बल को क्यों, भला, दण्ड ?"

अुस समय वह अुत्तर न दे सका था। आज भी वह लाजवाब था। 'आत्मानं सततं रक्षेत्, दारैरपि धनैरपि' अिस शास्त्र वाक्यकी आड़ में वह छिपा था और अपना दुर्बल बचाव अुसने किया था। करुणाकी परिसीमा बनी अुसकी मुद्रा याद कर आज वह मसोस मसोसकर खून के घूँट पी रहा था। उसे लगता था, मैंने भला अुसे क्यों जाने दिया ? धर्म के लिए ? क्या यही है धर्म की कल्पना ? करीम चाचाका भी यही सवाल था। वह जबाब नहीं दे सकता था। आज घर बरबाद बना है। जवानी का जोश बेकाबू हो रहा था। फिर से ब्याहूँ अैसा चाहा पर बदनामी की वजह अुससे ब्याहने के लिए कोअी अपनी लड़की देगा—यह मुश्किल था।

वह अचरज कर रहा था कि अब काहे का डर ? अब जुल्मजबर्दस्ती के लिअे कौन आयेगा ? अब सगाअी के लिअे कोअी लड़की न मिले, यह भला कैसी बात है ? कैसा यह आदमी का मन ! गढे मुर्दोंको क्यों अुखाड़ा जा रहा है ?

अुसे अपना अपराध नहीं अखरता था। मैंने धर्मके अनुसार बर्ताव किया अिस अभिमानसे वह अपने को निर्दोष मानता था। किसी निर्दोष जीवका मैंने घात किया है अिस सत्य को जबरन् भूल कर वह अपना अनापराधित्व प्रतिष्ठापित करने की चेष्टामें था। लेकिन कोअी भी अुसकी दलीलकी सफाअीसे संतुष्ट नहीं होता था। खुद को संतुष्ट करने में वह अन्तमें असफल बना था।

असंतोषकी आगमें जलनेभुननेवाला यह जी चौमोहनीमें रहते कभी भी सुख चैन में रह नही सकेगा, यह निश्चय कर, वह घर को ताला लगा कर परदेस जाने के लिअे चल दिया। हाँ, परदेस ही। कलकत्ता अब तो परदेस ही था। अुस विदेश चल देते समय बिदाअी के लिए करीमचाचा के सिवाय और दूसरा कोअी आत्मीय नहीं था। विदेश चलते, समय देवता के पूजा घर के सामने मस्तक नवाँकर पखारन लेने के लिए पिताजी के-से किसी के भी चरण समीप अुपस्थित नहीं थे।

आँगनकी मिट्टी भाल लगाकर अुसने चौमोहनी गाँव छोड़ दिया। पैसे की तो कमी नहीं थी। कलकत्ता जैसे ठिकाने जा कर ऐशआराम में दिन बिताने के लिए पर्याप्त संपत्ति अुसके पास थी। न माँ का आशीष, न पत्नी की पश्चारती न साथवालों की शुभ कामनाअें—केवल अेकमात्र संपत्ति ले वह विदेश चल पड़ा।



*

कलकत्ता वह कअी बार गया था। पर अबकी बार कलकत्ता काफी बदल गया था। असलमें शहरमें कोअी खास तब्दीली नहीं हुअी थी। तब्दिली हुअी थी अुसकी नजरमें।

वह अेक वस्तीगृह में जा ठहरा। वास्तव में वह अलग कमरा लेकर वहाँ ठहरा था लेकिन यदि अुसे पूरा अलग मकान मिलता, तो वह अधिक खुश होता। फिलहाल अैसे किसी मकान की ही खोज में वह था।

कोअी खास काम-धाम नहीं था। और कामधाम करने की कोअी आवश्यकता भी महसूस नहीं होती थी। कलकत्ता में कहीं स्थायी हो जाअूँ और पुरोहित के हाथों सगाअी कर अपना घर बसा लूँ यही अुसका अिरादा था। वह अपनी दृष्टि से विचार करते जा रहा था। शहर का खयाल कर अुसने अपने मनसूबे मढ़े थे। पर शहर और गाँवकी परिस्थिति में कितनी खाअी थी, अुसे वह अबतक समझ न सका था।

मनके विचार मन में ही रहे, कहीं से भी आशा की झलक नहीं दिखाअी देती थी। सगाअी तय करनेवाले व्यवसायी मध्यस्थ अुसे कलकत्ता में नहीं मिले। कलकत्ता में अुसे पहचाननेवाला कोअी भी न था। यदि पहचानवाला मिलता तो वह ब्याह का पाँसा भी डाल कर देखता। लेकिन अिधर तो पहचान करा लेने से ही शुरूआत थी।

सारा दिन ट्राम और बस से वह निरुद्देश्य चक्कर काँटना रहता था। अुस अुद्देश्यहीन घूमने से अुसका मन दिन-ब-दिन अस्वस्थ होता जा रहा था। ट्राम या बसमें वह कहीं किसी युवा युगुलको प्रणय बहारकी बातें करने में मशगुल देखता तो अुसका मन तुरन्त ही बेकाबू जोशपर घुड़सवार हो जाता। पढ़ीलिखी युवा लडकियाँ आजकल कलकत्ता शहरमें जहाँतहाँ स्वच्छन्दतासे विचरती दिखाअी देतीं थी। अुन्हें देखते ही अुसका मन बेहाल हो जाता था।

घूमने जायें तो यह दृश्य आँखों के सामने हो आते हैं और यदि न जायें तो कमरेमें अकेलेपन की आग जलाया करती है। अेक और आड और दूसरी ओर कुआँ। दोनों ओरसे पिशाच्च अग्निकी भाँति वह विकल होता जाता था। कहीं नौकरी करूँ अैसा भी अुसने कअी बार सोचा। पर सारी जिन्दगी मालकीपन बजानेमें बितायी थी अिसलिअे अुसका अन्तर्मन अुसे कहता था कि नौकरी अपने से नहीं होगी, जो बिलकुल सही था।

कलकत्ता की शहरी आबोहवा में अुसका मस्तिष्क धड़कने लगा। दिल फड़कने लगा। मन की शान्तता के लिअे वह शहर में आया था यह सही, पर रोज-ब-रोज वह शान्तता अुससे दूर दूर भागी जा रही थी। आत्मसम्मान भूल कर मन को यदि किसी नौकरीमें जकड़ रखें तो भी वह शान्तता और समाधान अुसे प्राप्य होनेवाला नहीं है यह निश्चित था। सिर्फ अेक ही रास्ता अुसकी आँखों के सामने था। अुस पथपर चलने के लिअे अबतक की नीति की सारी मर्यादाअें तोड़मरोड़ डालनी पड़ेगी यह अुसकी राय थी। नीति और अनीति की सारी कल्पनाअें अुस के अुफनान और ज्वारभरे मन को काबूमें रखने के लिअे अशक्त बनीं। अुसने जी कड़ा किया और......

अुस दिन शामको जीमने के बाद वह पैदल ही घर से निकला और अुस मुहल्ले में गया... वह मुहल्ला था वेश्याओं का। अुसका सीना धड़कता था। मस्तक भडकिला बना था । भावनाओं का तूफ़ान जोरों से मच रहा था लेकिन मन के भीतर कहीं से किसी के कराहकी कसक, टीस अुठ रही थी। रास्ते के दोनों ओर देखते देखते वह डगमगाते हुअे कदमोंको ले आगे बढ़ाने का प्रयास कर रहा था। अितने में अेक आदमी ने अुसका पीछा किया और अुसके साथ हो लिया। अुस आदमीके कथनकी और अुसका ध्यान भी न था। फिर भी अुसका हाथ पकड़कर सीढ़ियाँ चढ़ कर वह अेक हवेली में प्रविष्ट हुआ। जाते समय बार बार अुसके पैर डगमगते थे। मानों अैसा लगता था कि अब गिरा, अब गिरा। अुस के साथी ने अुसे लगभग खिंचकर ही सीढ़ियों पर चढ़ाया था।

अेक सजेधजे कमरे में वह आया। अुसके सामने स्वागतार्थ अेक बुढ़िया आयी। अुसने अुसका हाथ पकड़कर आवभगती से अुसको अेक तकियेसे विठाया। अुसका साथी वहाँसे चल दिया।

वह स्त्री हिन्दु न होगी यह शक मनमें जागा । वह पाकिस्तान से आया था ...... पाकिस्तान छोड कर हिन्दुस्तान में रहूँ अिस अिरादेसे आया था ।......जब नीति के बन्धनों को वह तोड़ने ही जा रहा है तो कम से कम वह घर हिन्दुका ही हो अैसा अुसे भाया। लड़खड़ाती बानी से अुसने बुढ़िया से पूछा, तब अुस ने वह हिन्दु का ही घर है-अिस बात का विश्वास दिलाया। अुसने कहा—"यह पोशाक़ हमारे पेशेकी है। परदेशके और पराये मुल्कके काफ़ी लोग आजकल अिधर आने जाने लगे हैं। यह अुनकी पसन्दगीकी पोशाक़ है। आजकल अिस पोशाककी बाजारमें बड़ी क़ीमत है। वरना हम तो हिन्दु ही हैं"-सो कहकर वह अुठी और अन्दर चल दी।

अेक पल बीता। पर वह पल अुसे अेक युगकी भाँति लगा। अुसने अपनी जेब में हाथ टटोला। जेबमें पाकिट जैसे के वैसे था। अैसी जगहों पर कितना दाम चुकाना पड़ता है, अिसकी अुसे कल्पना न थी। कितने रुपये देने होंगे, और अुतने अपने पास हैं या नहीं। और यदि अपने पैसे कम मालूम हुअे तो क्या करूँ, अिस विचार से वह बावरा बन रहा था अितने में ही......

पंजाबी पहनावे की अेक जवान लड़की अुसके सामने आयी और अदब से कुर्निसात करक अुसके पास बैठ गयी। अुसकी ओर देखने तक का साहस वह कर न सका। पलभर वह बैठक को निहारता रहा और अुसने हौले हौले नज़र अूपर अुठा कर अुस की ओर झाँका।

गर्म खूनकी सनक अेंडीसे चोटीतक चिलाचिलाती दौड़ी। खूनकी नशैल आँखोंसे वह अुसके चेहरेकी ओर टकटकाता रहा। मुँह ही मुँह मुसकराती वह अुसको ओर देखकर आँखों मींचाने लगी। मानों कई बिच्छु सारे बदनमें चुभन लगा रहे हैं अैसा अुसे लगा। पहनावा बदला था, फिर भी पहचानना मुश्किल न बना—विशेषतया जब अुसने आँखें लगायीं और पलकें मिचकायी तब वह तो......

हाँ, अेकांत में वह अिसी तरह अुससे आँखें लगाया करती थी और पलकें मिचकाया करती थी। पल भर वह भूला, पल भर वह बावरा हुआ, और देखते देखते और सहमते सहमते, डरके बोझसे अपने को खोते खोते कह अुठा, "तुम!"

"आप कौन समझते हैं?"—अुसने पूछा।

अपने मुँह ही मुँह पुटपुटाते हुअे अुस ने कहा, "हाँ, तुम ही तो..."

"मैं ही न?" वह कहती बनी, "मैं ही हूँ वह। पर अभी की मैं, अब अुस बार की, वह नहीं रही। अब तो मैं कौन हूँ, वह तो आप समझ गये न?"

भूली भूली आँखों से वह देखता रहा। क्या कहे और क्या न कहे, यह अुस की समझ में नहीं आता था। जिस विकार विषय के ज्वार का शिकार बन वह अिस स्थान पर आया था अुस प्रवृत्ति का सारा पौरुषेय गुम हवा बना था। सारा बदन शिशिर की नाअीं ठिठूर ठिठूर बना था। अपने शरीर का अस्तित्व भी वह भूल गया था।

वह युवती बैठे बैठे आगे आने लगी और देखते देखते अुससे सटकर बैठी। नवीन का बदन सिहरा—रोंगटे खड़े रहे। वह फौरन दूर हटा। मानों शोलों से कोअी अुसे जला रहा है।

अुसने सट लगी करना शुरू किया और अुसके गले में गलबाहियाँ डाली। अेक अस्पष्ट चीत्कार चिखते वह दूर हटा। वह कहाकहा लगा के हँसती थी।...ठहा के पर ठहा के लगाते हँसती जाती थी। नवीन को वह हँसी दानवी जँची। किसी मायाविनीकी, पिशाचिनीकी बाहोंमें वह कसा गया है और अब मानों वह अुसे कच्चा चबा खानेवाली है—सो कल्पना कर वह तुरन्त अुठ खड़ा हुआ और बाहर दौडने लगा।

वह भी बिजली की तरह खड़ी हुअी और अुस का हाथ पकड़कर अुसे अपने सीने से कस लिया। अुस समय अुसकी आँखों के सामने

देखते देखते शक्ति खिसकने लगी और खद्योत चमकाहट करते करते बेहालीका अन्धेरा घना करने लगे ! विषयविकारकी सारी भावनाअें तितर-बितर हो पूरी-पूरी गायब हुआी थी। अिसलिये अब अुसकी देह पर अुस स्त्रीस्पर्शका किञ्चित भी परिणाम चिह्नित न हुआ।

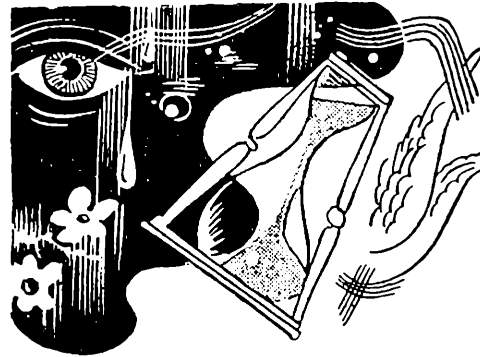
बड़ी लाडली बोलीसे, मिठी मिठी भाषा में वह कहते बनी, " घर आया गाहक यदि मैं देखते-देखते आँखोंके सामने भागने दूँ तो फिर मैं अपना पेट कैसे पालूँ ? मै तो कोअी जमींदार नहीं-पैसेवाली नहीं-पढी-लिखी नहीं—और अुतना तो नहीं जानती कि कहीं नौकरी चाकरी कर लूँ-और अिस से भी बढ़कर मैं अकेली नहीं हूँ। मेरी सास का भी मुझे संभाल करना होगा। घर बिछुडा, पति ने घर निकाला कर दिया-अब अिस के सिवा और कौन चारा ? "

" चूप बैठो ! चूप बैठो ! !" वह जोर से चिल्लाता रहा। फिर भी वह आवेग से कहती जाती थी, " अब तो आपका रक्षण हुआ न ! 'आत्मनं सततं रक्षेत् दारैरपि धनैरपि' अैसा तो आप ही ने कहा था। अपना संरक्षण तो किया परन्तु अुस 'दारे' के संरक्षण का आप ने खयाल नहीं किया। आप ने अुसे ठुकराया। रिश्तेदारों ने अुसे धुत्कारा। धर्म ने अुसको धर्मभ्रष्ट किया। अब तो यही है अुसका आसरा। शरीर विक्रय के बिना मुझे ओर कोअी रास्ता नहीं था। "

पल भर विश्रामते हुअे वह अुसके प्रत्युत्तर का अिन्तजार करने लगी। वह आवाक् बना था। नवीन की वाणी लडखड़ी बनी। खटाखट जवाब देकर अुसकी निर्भत्सना करना वह चाहता था। पर सारे शब्द रफू चक्कर हुअे थे। अुसकी जिव्हा लूली अप्राहित बनी थी।

वे शब्द लोहे की तपी हुअी पटरियोंकी भाँति अुसके कानोंमें घँसते जा रहे थे। सारा बदन भडक के जल रहा था फिर भी वह सुनाती जाती थी। और बड़ी लाड़ली बोली से हँसती हँसती बोलती थी। अुस लाड़ली बोली के साथ साथ अुसके गाल मोहकतासे मुड़पते जाते थे। अुन शब्दों में घृणा की भावना का किञ्चित् भी भास निर्माण न हुआ। वह संवाद किसी वेश्या का-स्वैराचारी स्त्री का न था-और व्याभिचारी स्त्रीका तो बिलकुल नहीं था। अुसके संवाद में कुलीन घरकी बहुरानी की बानी का मिठापन लबालब भरा बहता जा रहा था। अेकान्त में पति के साथ जिस विशिष्ट भावना से पत्नी भावाभिव्यक्ति करती है, वही अिकलौती भावना अुन शब्दों में प्रदर्शित होती थी। पर यह कौन अपने अन्तरमें कह रहा था —' भला यह तो वेश्या नहीं है बिलकुल ! क्या यह कहीं किसी की बहुरानी तो नहीं ? '

वह कहती थी, " आपकी पत्नी नहीं, मेरे पति नहीं। आपकी पत्नी नहीं अिसलिए आप यहाँ बड़ी कृपासे पधारे हैं। जिनकी पत्नी नहीं अुन्हीं लोगों के लिए मैंने अपनी दूकान सजायी है। मेरा भाग्य आज ही खुल पडा कि ग्राहक के रूप में आप ही मुझे मिले हैं। यह कितना बडा सौभाग्य। धर्मने मुझे धुत्कार दिया हो पर कर्मसे आपकी सेवा करनेका पुण्य मुझे मिल गया, मैं कितनी बड़ी भाग्यवती। " पलभर ठहरकर वह आगे कहने लगी, " अब काहेकी शरम ? वेश्या की खोज में आप चल पड़े हैं, वह तो आप को मिल गयी है। आअिये न अन्दर, अुस हाथ से मुझे पास लीजिये तो। भला मेरी ओर अैसी निगाह से क्या देखते हैं ? आअिये, आअिये न, आअिये न मेरे पास। " यों कह कर अुसने नवीनको सीने से जोरसे कस ले लिया



विराट् कवि

अतिशय मृदुता में रुद्र तत्व, वे जान न पाए हैं मेरा।
मेरी ऋतम्भरा ऋजुताको, भ्रम से कहकर निर्वीर्य ढाल।
कुछ कुटिल बाँधते हैं मुझको, ले अनृत पाश के जटिल जाल।
वामन में रूप त्रिविक्रम का, पहचान न पाए हैं मेरा॥ १॥
मेरा कर छू कर शून्य ब्रह्म, घर अमित रूप हो गया मुखर।
मेरी बाणीका रस पीकर, निष्प्राण कथाएँ हुअी अमर।
मेरा पदरज भवसिंधु-पोत है, मोक्ष नाम का प्रति अक्षर।
मेरे दर्शन से सचराचर, बनते रहते हैं विधि-हरिहर।
संयत लघिमामें अतिक गुरुत्व वे जान न पाए हैं मेरा॥ २॥
जिस के पदपर पंचाग्निताप, नत आत्मसर्पण हैं करते।
ले दीपशलाकाकी लघु लौ, अुस को वे तर्जन हैं करते।
नयनों का त्राटक संकर्षण, वे जान न पाए हैं मेरा॥ ३॥

—सीताराम चतुर्वेदी

अुसकी पकड़ से अपने को छुड़ाते छुड़ाते वह जोर से चिल्लाया, "नहीं ! बिलकुल नहीं ! नहीं, नहीं ! ! "

अुसके चीखने से अन्दरके कमरे में गयी हुअी वह बुढ़िया दौड़ते दौड़ते बाहर आयी। अुस के साथ-साथ अेक और स्त्री दरवाजे में आ खड़ी हुअी।

अुसकी गोद कससे रिहाअी के लिए नवीन छटपटाता था और अुसे वह और भी जोर से कसती जा रही थी। अुसके साथ धक्कामुक्की करते करते अुसकी नजर दरवाजेकी ओर चली गयी ...

बुढ़ियाके पीछे, शिलाकी भाँति निष्प्राण होकर पुतकी तरह ठहरी आखों की अेक स्त्री अुस दृश्य की ओर देखती थी...

अुसकी आँखें अुन आँखोंसे मिलीं...

" माँ ! माँ ! ! " कलेजे को चीरती हुअी वह पुकार, वह ललकारा...... और बेहोष होकर नीचे गिरा।

● ● अनुवादिका : मीराँ परूळकर

जो सिर्फ़ तामिलनाड़का नहीं परन्तु भारतका है; अितनाही नहीं अपितु सारे विश्वका है वह महान् दार्शनिक



— साने गुरुजी



जिस प्रान्त को हम तामिलनाड़ के नामसे जानते हैं, अुसमें तुंगभद्रा के दक्षिण की तरफ़का बहुत-सा अिलाका आता है । मुख्यतः कावेरी नदी के आसपासका प्रदेश अुसमें सम्मिलित होता है। एक तरफ आन्ध्र देश, एक ओर कर्नाटक, एक बाजूसे मलाबार अिससे जुड़ा हुआ है। अिस तामिलनाड़ प्रदेश की मूल संस्कृति द्राविड़ी थी। यह संस्कृति बहुत पुरानी है। कितनी पुरानी है, यह निश्चित नहीं कहा जा सकता है। द्राविड़ लोग सैनिक वृत्तिके थे। युद्ध करना अुनका प्रिय व्यवसाय था। अकर्मण्यता से अुन्हें चिढ़ थी। तामिल भाषामें जो अति प्राचीन गीत-संग्रह है, जो गाथाएँ हैं, अुनमें इस साहस और वीरता की वृत्तिका सर्वत्र चित्रण मिलता है। एक गीत में एक द्राविड़ी स्त्री कहती है-" तुम पूछते हो कि मेरा बेटा कहाँ है ? वह कहाँ है अिसकी मुझे खबर नहीं। लेकिन रणभूमि में वह तुम्हें अचानक दिखेगा। क्योंकि वह मेरी गर्भ-गुहासे बाहर निकला हुआ सिंह है। " अिस तरह के वीरोंको जन्म देने में द्राविड माताएँ अपनेको धन्य समझती थीं। दूसरोंकी पत्नीका अपहरण करना, शत्रुके राज्य को बेचिराग करना, खेतीबाड़ी का नाश करना, पड़ोसी राष्ट्र के पशुओंको भगाना आदि बातोंका अिन लोगोंको अभिमान था। जिस तरह से भीष्म अम्बा अम्बिका, अम्बालिका अिनको युद्धमें पराजित कर ले गया अथवा द्रौपदी वनमें जयद्रथ से कहती है- " पाँचों पतियोंको हरा कर के मुझे ले जा ! " अुसी तरह अिन लोगोंकी नीति-परम्परा थी। राक्षस विवाह की यह प्रथा आर्योंकी भाँति द्राविडोंमें भी थी ऐसा प्रतीत होता है। द्राविड लोग मांसाहारी थे। मांस-भक्षण से अुनके दाँत मैले और दुर्गन्धयुक्त रहते थे। अुनमें शौर्य ओर हिम्मत की कमी नहीं थी। परन्तु अुदारता और अूँचा नीतिपूर्ण जीवन नहीं था। अुनके प्राचीन गीतोंमें साहसिक कहानियोंकी भरमार हैं; परन्तु ध्येयवाद की परिपक्व अभिव्यक्ति के दर्शन कम है।

बादमें आर्यजनोंका दक्षिणमें आगमन हुआ। वह अपने साथ अपनी संस्कृति भी लाये। आर्य लोग विजेताकी हैसियतसे नहीं आये; परन्तु शिक्षक या आचार्य के रूपमें आये। इन आर्योंको " मृदु स्वभाव के तथा वेदद्रष्टा " का सम्बोधन प्रदान करनेमें आया। ब्राह्मण, जैन और बुद्ध इन तीनों धर्मोंके प्रचारक अपनी नीति और संस्कृति लेकर दक्षिणमें नीचे आने लगे। तामिल संस्कृति की मूल नींव द्राविड़ी की थी। परन्तु अूपरसे दिखाई दनेवाली विशाल इमारत आर्य संस्कृति की है। इन तीनों धर्मोंके धर्मावलम्बियोंने तालिम वाङ्मय में अपने अुदार विचारोंको प्रवाहित किया; नअी संस्कृतिको विकसित किया। ब्राह्मण, जैन और बुद्ध पंडितोंने अिसदेशमें विद्यापीठों की स्थापना की; साहित्य-संघोंका निर्माण किया; ग्रंथालयोंका संगठन किया और तामिल भाषाको विशालता, श्रेष्टता और स्थिरता प्रदान की।

विंध्याचल को लाँघकर दक्षिणमें आनेवाले सर्वप्रथम श्रेष्ट ऋषि अगस्ति यही है। किम्वदन्ती है कि तामिल भाषाका प्रथम व्याकरण अिन्होंने लिखा। लेकिन वह ग्रंथ उपलब्ध नहीं है। अगस्ति के शिष्यने लिखाहुआ व्याकरण प्राप्य है। महादेवने डमरू बजाकर पाणिनी को जिस-तरह सूत्रोंका पाठ सुनवाया, अुसी प्रकार अगस्ति को भी सुनाया अैसी कथा है। पाणिनी का व्याकरण जिस प्रकार मौलिक और बेजोड़ साबित हुआ, अुसी ढंगसे अगस्ति ने लिखा हुआ तामिल भाषाका भी, अैसा कहते हैं।

तामिल भाषा संस्कृतकीसी पुरानी है। अीसा के पूर्व तामिल भाषामें बहुत ग्रंथोंकी रचना हुअी

अनुक्रमणिका

थीं। तामिल भाषा का संस्कृत से कोअी सम्बन्ध नहीं है। हिन्दुस्तानमें संस्कृत की छाया से एकदम अलिप्त रहनेवाली कोअी प्रमुख भाषा होगी तो वह तामिल ही है। हिन्दुस्थान की वर्तमान भाषाएँ प्रायः संस्कृत से ही अुत्पन्न हुअी हैं और अुनका वाङ्मय अिस्वी सन के एक हजार साल से साधारणतः मिल सकता है। वैसा तालिम भाषाका नहीं है। आज भी तामिल भाषामें खोजनेपर भी आपको पाँच फी सदी भी संस्कृत के शब्द नहीं मिलनेके। तेलगू भाषामें आजकल संस्कृतके तीस चालीस फी सदी शब्द मिलेंगे। कानडी और मलयालम भाषामें भी वही हालत। मगर तामिल का वैसा नहीं। आन्ध्र लोग अपने देशको आन्ध्र देश अथवा आन्ध्र सीमा कहते हैं। 'सीमा,' देश ये शब्द संस्कृतके हैं। परन्तु तामिलनाड़ अिसमें का 'नाड़' शब्द देशके अर्थ में आया है। तामिल भाषामें कोअी संस्कृत का शब्द नहीं है। धर्म, तत्वज्ञान, राजनीति, कृषि, व्यवसाय आदि विभागों को अपने विचार व्यक्त करनेके लिअे स्वतंत्र शब्द समुदाय है। मराठीमें 'धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि शब्द केवल संस्कृत के हैं अथवा राजा, दण्ड, दुष्ट, खल अैसे सैकडों शब्द संस्कृतके हैं। परन्तु तामिल भाषामें विविध अर्थोंको प्रकट करनेवाले सैकडों शब्द स्वयं निर्मित हैं। दुष्ट राजा, अच्छा राजा आदि को अलग-अलग स्वतंत्र शब्द है तामिल भाषाका शब्द-संग्रह स्वतन्त्र और विस्तीर्ण है। तामिल भाषा ही स्वतंत्र भाषा है। स्वतंत्र शब्दकोष, स्वतंत्र वाक्य-विन्यास। उसका सारा विश्व, उसकी सम्पूर्ण सजावट स्वावलम्बन के आधार पर-स्थित है ओर संस्कृत जितनी पुरानी है।

प्राचीन तामिल वाङ्मय के तीन विभाग है। संगीत, नाट्य और साहित्य। संगीत और नृत्य कलापर ग्रंथोंकी रचना हुअी है। नटराजके भव्य मंदिरवाले प्रान्तकी भाषामें नाट्य और नृत्यपर ग्रंथ तो होंगे ही। नृत्यकला अपनी चरम सीमापर पहुँची थी। हजार-हजार तारोंवाले तंतुवाद्य थे और अुनसे सुमधुर संगीत की लहरें बहती थीं। अिस त्रिविध विभाजनके अलावा अन्य प्रकारका विभाजन भी होता था। प्रेम-वाङ्मय और बिना प्रेमका वाङ्मय अैसे दो प्रकार प्रचलित थे। अिन विविध साहित्य विभागोंका अुनके अनुकूल अलग-अलग व्याकरण भी होता था। प्रेम-काव्यकी भाषाकी व्याकरण अलग होता था। यह जो प्राचीन तामिल वाङ्मय है वह बिना टीका की सहायताके ठीक समझमें नहीं आता है। जिस तरह से संस्कृत ग्रंथोंपर विवरण, समालोचना, टिप्पणियाँ है, अुसी प्रकारसे प्रायः तामिल ग्रंथोंपर भी हैं।

अिस्वी सन् की सातवीं-आठवीं सदी में तामिलनाड़में अविरत युद्ध का वातावरण था। लगातार युद्ध! अुस युद्धकी आगमें बहुत-सा तामिल वाङ्मय नष्ट हो गया। तामिल भाषा का बुद्ध और जैन साहित्य अिसी समय नष्ट हो गया। बादमें मुसलमान आये। अुन्होंने हजारों ग्रंथ और ग्रंथालयों को जलाकर भस्मीभूत कर डाला। तदनंतर अट्ठारवीं सदीमें साहित्यको प्रोत्साहन प्राप्त होने लगा। अि. स. १७१२ में अरूणाचलम् नामक नाटककार पैदा हुआ। उसकी मृत्यु अि. स. १७७९ में हुई। 'रामनाटकम्' यह अुसका प्रसिद्ध नाटक। ललित कलाओंके प्रति भूतकालमें जो सम्मान था वह बीचके अिसकालमें खत्म हो गया। अिन कलाओंकी प्रतिष्ठा धर्म में विलीन होने लगी। हिन्दू मन्दिरोंमें शैव और वैष्णव गीत पुराने नृत्यकी तर्जपर गाये जाने लगे। बड़े मन्दिरोंमें नृत्यके लिअे देवदासियोंकी प्रथाका निर्माण हुआ। तंजावरका मराठी राजा सरफोजी भोंसले अिसने १७८० से १८३० के दर्मियान अपने राज्य कालमें संगीत-कलाको काफी बढ़ावा दिया। तामिल भाषाका कुछ साहित्य ताड़पत्रोंपर लिखा हुआ मिला है। कुछ वाङ्मय मठाधिपति से प्राप्त और कुछ निर्धन पंडितों के पास से प्राप्त हुआ। इस उपलब्ध वाङ्मय का अधिकांश हिस्सा प्रसिद्ध हुआ है कुछ प्रकाशित हो रहा है।

तामिल वाङ्मय संस्कृत की भाँति पुराना होकर भी दोनों में तुलना नहीं हो सकती। क्योंकि संस्कृति की छाया वाङ्मय में रहती है। और आर्य आनेके पहले द्राविड़ी लोगोंके पास समुन्नत ऐसी संस्कृति नहीं थी। और इसीलिए उन्नत वाङ्मय भी नहीं था। स्वर्ग-नर्क, पाप-पुण्य, जीव-शिव, आत्मा-परमात्मा आदि गहन प्रश्नोंकी उन्हें कल्पना भी नहीं थी। परन्तु तामिल वाङ्मय संस्कृत वाङ्मयसे एक विषय में श्रेष्ठ था और वह है नीति साहित्य। तामिल भाषा में प्रति दिनके व्यवहार की नीति के बाबत विस्तृत वाङ्मय भरा पड़ा है। इस वाङ्मय से यह अर्थ निकालते हैं कि इन लोगों की नीति नीचले दर्जेकी था; तभी बारबार उन्हें एकही बात को दोहरानेवाली किताबें लिखनी पड़ीं। जीवन में उन्नत नीति न होने के कारण उनको व्यवहारिक नीतिपर ही अधिक महत्व देना पड़ा। उत्तर से आये हुए आर्यों के लिए तामिल भाषा में 'सत्यवादिन्' आदि विशेषण मिलते हैं। केवल इस आधार पर सारे द्राविड़ लोग असत्यवादी थे ऐसा कथन कैसा संगत हो सकेगा?

तामिल भाषा में बहुत बड़े पांच महाकाव्य हैं। पाँच छोटे महाकाव्य और आठ गाथाएँ अथवा गीतसंहिताअें हैं। १० अन्य बड़े काव्य हैं। १८ छोटे काव्य हैं। इन अट्ठारह छोटे काव्योंमें महाभारत और स्मृति ग्रंथ का उपदेश संग्रहित किया है तामिल भाषाका साहित्य आर्य विचारोंसे परिपूर्ण है। आर्यों के आगमन के प्रथम तामिल भाषा थी परन्तु उसमें साहित्य नहीं था। महाकाव्य में किंमन् का 'रामायण' और अतिविरराम पांड्या का 'नैषध-काव्य' ये दोनों प्रसिद्ध थे। बीच के कालमें अलंकार शास्त्र और काव्य शास्त्र के कुछ इने-गिने ग्रंथोंका अध्ययन हुआ तो बहुत विद्याध्ययन

अनुक्रमणिका





परन्तु अुसकी छाया एक मनुष्य के लिए भी स्थान नहीं देती। परन्तु बरगद का पेड़ देखो। अुसका बीज भी कितना छोटा। ताड़ के पेड़ की सदृश्य वह अूँचा नहीं होगा। लेकिन राजा और अुसकी चतुरंगिनी सेना को यह अपनी छाया में समेट सकता है।"

अिसी अवव्यार का तिरूवल्लुवर यह भाअी है। 'कुरल' की रचना कर अुसने विश्व को अनमोल भेंट दी है। तामिल भाषा में अिस ग्रंथ को बहुत अिज्जत है। अिसे तामिल वेद कहते है, वह वास्तविक हैं। कुरल ग्रँथ तीन भागों में बाँटा गया है। पहले खण्ड में धर्म, दूसरे में अर्थ और तीसरे में काम। अिस तरह का विषय--वितरण है। तिरूवल्लुवर ने चार पुरुषार्थों में से तीन पुरुषार्थों का ही वर्णन किया है। चौथा जो मोक्ष--अुसके बारे में अुसने कुछ बताया नहीं है। वह अछूत था अिसीलिअे क्या अुसने मोक्षपर अपनी लेखनी नहीं चलायी? अथवा मोक्ष याने परमेश्वर के स्वरूप की प्राप्ति; मन की तृप्ति की बेला। अुस हालत की कैसे अभिव्यक्ति की जाय? अतः अुसके बारे में वे मौन रहे होंगे। चतुर्विध पुरुषार्थों में से प्रथम तीनोंपर ही अिस ग्रंथ में काव्यपूर्ण वर्णन है। अथवा प्रथम धर्म का जो भाग है, अुसमें सन्यासी जीवनपर लिअे हुअे जो परिच्छेद हैं–वही परिच्छेद मोक्ष के सम्बन्ध में है, अैसाही बहुत तेरे मानते हैं।

अिन तीनों भागोंमें १३३ अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में दस कविताअें है। कुल १३३० कविताएँ हैं। प्रत्येक कविता में दो चरण है। 'कुरल' अिस शब्द का अर्थ मूल में 'दो चरण' अैसा है। जिस तरह तुलसीदास जी का चौपायी है, अुसी प्रकार तिरुवल्लुवर के यह दोहे हैं। पहिला चरण बड़ा, दूसरा छोटा। पहिले चरण में चार गण तो दूसरे में तीन। यह वृत बहुत छोटा है। तामिल भाषा में चरण के अन्त में यमक नहीं रहता है। चरण के आरंभ में यमक होता है। प्रथम चरण की और दूसरे चरण की शुरुआत में यमक रहता है। अुदाहरण के लिए पहिले चरण का प्रारंभ यदि 'नामम्' से होगा तो दूसरे चरण का प्रारंभ 'कामम्' अैसा रहेगा और 'यमक' भी पूरा होगा। कभी-कभी दो-यमक भी रहते हैं। पहिले चरण का अन्त और दूसरे चरण का आरंभ अिस में अैसे वक्त यमक होता है।

कुरल के यह १३३० श्लोक अिसी वृत्त में लिखे गये हैं। बहुत छोटे वृत्त और अुन में गंभीर तथा विशाल अर्थ से परिपूर्ण अैसा यह काव्य है। अिस काव्य में अेक प्रकार की अधीमता है। अुदारता और सहृदयता है। अन्तिम के प्रेम सम्बन्धी भाग में अश्लीलता का प्रतिनिधित्व करनेवाली कोअी पंक्ति नहीं, सद्विचार को पीड़ित करनेवाली प्रवृत्ति नहीं।

पहिले हिस्से को आरंभ करने के पूर्व चार परिच्छेद में ओश्वर की महिमा गाअी गअी हैं। यह वर्णन कुछ स्थलोंपर परमात्मा को लागू होता है और कुछ जगहपर बुद्ध, महावीर अिनके जैसे विश्व पथ-प्रदर्शकों को लागू पड़ता है। जैसे बुद्ध और जैन वैसे शैव और वैष्णव। सब ही तिरूवल्लुवर को अपने सम्प्रदाय का मानते हैं। ओसाअी मतावलम्बी कहते हैं कि कुरल में बाअीबल के विचारों की छाया है। ओस्वी सन् के प्रथम शताब्दी में कुछ ओसाअी धर्म प्रचारक अिस अिलाके में आये अैसा कहा जाता है। लेकिन तिरूवल्लुवर किसी भी धर्म या संप्रदाय का नहीं दिखायी देता सब धर्मों के नीति तत्वोंका वह संघटक है। अुसका धर्म नीति प्रधान है। कभी महसूस होने लगता जैसे वह बौद्ध धर्मीय होगा। परन्तु किसी भी एक धर्म का स्पष्ट अुल्लेख कुरल में नहीं है। अिस पहले अध्याय के बाद दूसरें में वर्षा की प्रशंसा की गअी है। क्योंकि अुसके बिना जीवन धरतीपर कहीं दिखायी नहीं देगा। फिर धर्म की बात तो बाद की है। वर्षा स्तवन के बाद निस्संग की महानता दिखायी गयी हैं। चौथे परिच्छेद में सदाचार-महात्म्य है। भूमिका के चार परिच्छेद खतम हो जाने के बाद चार पुरुषार्थों के का प्रथम पुरुषार्थ जो धर्म है अिसकावर्णन शुरू होता है।

अिस धर्म शीर्षक के दायरे में गृहस्थ धर्म और यतिधर्म दोनों का वर्णन है। चार आश्रमों में से सिर्फ़ दोही का यहां वर्णन है। तिरूवल्लुवर ने स्वयं "धन्यो गृहस्थाश्रम" अिस अुक्ति का अनुभव लिया था। जीवन को निराशा की नजर से वह देखता नहीं। अुसकी दृष्टि प्रेमपूर्ण है— गंभीर है। पतिपत्नी, सांसारिक जीवन, बाल-बच्चों का किस सहृदयता से और तन्मयता से वह मनोहर दृश्य प्रस्तुत करता है। बच्चों का झुण्ड देखकर अुसके गात शिथिल नहीं होते। चिन्तासे अुसके मस्तकपर रेखाअें नहीं अुभरती। वह कहता है— "सबसे अुत्तम आनंद याने निरिच्छ पत्नी, आनंद का चरम अुत्कर्ष याने सुन्दर सन्तति का रहाना।" बच्चों का वर्णन वह बहुत सुन्दर ढंगसे करता है। बालकों का स्पर्श माने मुक्ति याने परामानंद अैसा वह कहता है। जिसने बालक की तुतलाती बोली नहीं सुनी है, वह कह सकता है कि बाँसुरी मधुर तथा सितार सुरीली है।" बालकों के बाबत अिस तरह का गहन और सरल वर्णन अन्यत्र दुर्लभ है। गृहस्थ धर्मपर मीठे बोल, प्रेम, कृतज्ञता, क्षमा, संयम, सफलता आदि चौबीस अध्याय है। अुसके रसपूर्ण वर्णनका स्वाद यथा समय दूँगा। गृहस्थ धर्मके बाद यति धर्म पर नौ परिच्छेद है। उसके पश्चात् पाँच परिच्छेद सर्व साधारण हैं। तदनंतर दूसरे पुरुषार्थ (अर्थ) का वर्णन प्रारंभ होता है। अिस खण्डमें राजा और अुसकी योग्यता, मंत्री की नियुक्ति, सेना, जासूस, मित्र की पहिचान, मित्र का महत्व, अत्याचार का परिणाम, दुश्मन की खबरदारी अिन परिच्छेदों के बाद कृषि, भिखारी, दान, यश, परिवार को सम्मान की प्राप्ति कर देना आदि परिच्छेद हैं। यह अध्याय केवल राजाके लिअे नहीं है परन्तु सामान्य प्रजाजन के लिअे भी है। हमारे यहाँ 'अर्थ' अिस शब्द में समाज की अुन्नति और अुसका सर्वांगीन विकास अैसा व्यापक अर्थ रहता था। राजकीय अर्थ से आर्थिक अर्थ अुस में अधिक रहता था। आजकल रशिया जैसे देश में सरकार याने अर्थ सम्बन्धी व्यवस्था करनेवाली पद्धति, यही अर्थ प्रचलित हो रहा है; हिन्दुस्तान की ब्रिटिश हुकूमत याने संगठित पूंजीवादी व्यवस्था अैसा हम कहते हैं। समाज के अुत्कर्ष और समुचित विकास के लिअे जो जरूरतें हैं, वह सब 'अर्थ' के अिस अध्याय में वर्णित हैं। प्रजा का रंजन करनेवाला, चतुर और दयावान् अैसा राजा, अुद्यमी और खेती में प्रवीण अैसे लोग, भिखमंगों की टोली; धीरज, वीरता और साहस आदि गुण अिन सब का वर्णन अिस खण्ड में हैं। अर्थ के पश्चात् काम खण्ड आता है। अिस में प्रेमी और प्रेमिका का वर्णन है। अेक युवक किसी

अनुक्रमणिका

युवती को देखता है। दोनों की नजरें मिलती हैं और प्रेम पैदा हो जाता हैं। प्रेम में दोनों तड़पते हैं। ताड के नुकीले पत्तों की बिछावनपर वे दोनों अपना जुलूस निकालते हैं। शायद अुस वक्त अुस तरफ अैसी ही रीति होगी। हम काँटोंपर सोयेंगे परन्तु एक दूसरे से अलग नहीं रह सकेंगे!" इसी दृढ़ताको व्यक्त करनेका मूल उद्देश्य अिस घटना में होगा। उन दोनोंकी प्रेमासक्ति देखकर लोग कहते हैं– " अिनका एक दूसरे से जब अितना प्रेम है तब अिनके माता—पिता अिनका विवाह है। क्यों नहीं करते?" आगे अुनकी शादी होती लेकिन अुसे लड़ाअी में जाना पड़ता है। वियोग का प्रारंभ होता है। अिस विरह अवस्था की कोमल भावनाओं का हृदयस्पर्शी वर्णन कविने बहुत सरसता से किया गया है। प्रेम-कलह के वर्णन के बाद काम खण्ड की समाप्ति है। अिस खण्ड में कहींपर भी अश्लीलता नहीं आ पाअी है। मर्यादा का उल्लंघन नहीं है। हृदय के भावों की अनुपम ढंगसे अभिव्यंजना की हैं। सुन्दर कल्पना, सुन्दर अुपमा, अभिनव विचारों के अनगिनती दृष्टान्तों से कुरल परिपूर्ण है। कुरल की १३३० कविताएँ याने अष्ट पहलू हीरोंका समूह है। प्रत्येक कविता जैसे एक कटाछटा, चमकीला हीरा है। एक शब्द भी कम या अधिक करनेकी गुंजाइश नहीं। अिसके स्वाद का नमूना चाखियेगा।

पहिले धर्म खण्ड में और अन्य दूसरों में भी प्रेम करना, जीव-दया, परोपकार आदिपर सुंदर संकलन किया है। कवि कहता है–प्रेम का द्वार बंद करनेवाली सकावट कहाँ है? अेक दूसरेपर प्रेम करनेवालों की आँखों में झलकनेवाले आँसू अुनके हृदय में लहराने वाले प्रेम-सागर के अस्तित्व को ही प्रकट करते हैं।" " प्रेमकी मधुरता चखनेके लिअे ही यह जीव बारबार अपनेको हाडमांस के पिंजडे में कैद कर लेता है।" दूसरी तरफ तिरुवल्लुवर कहता है–" जिसके हृदयमें प्रेम की लहरें प्रवाहित नहीं होती, वह ठिठूरे हुअे वृक्ष की भांति है।" दूसरे के मन को पीड़ित न करने का अुपदेश देते हुअे कवि कहता है—" तुम्हारे अेक शब्द से यदि दूसरे व्यक्ति को दुख पहुँचा तो समझो तुम्हारी अच्छाअी जल कर खाक हो गयी।" " जलन से हुआ जख्म भर जाता है, परंतु जिभ से जली हुअी जगह कभी ठीक नहीं होती।" दो मीठे बोल बोलकर जब काम आसानी से होने की सम्भावना होती हैं। तब फिर मनुष्य क्यों कठोर वाणी का अुपयोग करता है? वह आगे कहता है—" दुनियापर किअे हुअे अेहेसानों को बदला किसी तरह चुकाया नहीं जा सकता है यदि दुनिया के हमपर अेहसान न हो।" मित्रता के बारे में यह महाकवि करता है—" कमर से बँधा हुआ वस्त्र हवासे अुड़ने लगते ही हमारा हाथ जिसतरह अुसे संभालने को तुरन्त आगे बढ़ता है, अुसीतरह मित्र की लज्जा छिपाने के लिअे सच्चा मित्र अुसपर पर्दा डालता है।" कितना अुत्कृष्ट और जाना —पहिचाना अुदाहरण! दुश्मन को अूपरी व्यवहार से नहीं पहिचाना जा सकता हैं। यह बताते हुअे वे कहते हैं—" तीर सीधा दिखता हैं, परन्तु हत्त्या करता है। वीणा टेढी रहती है, परन्तु मधुर संगीत सुनाती है!" कितना समर्पक दृष्टान्त। अुसी तरह अिसे पढिअे—"फूलोंकी ताजगी से मालूम होता है कि अुसको कितना पानी दिया गया होगा। अुसी भाँति मनुष्य वैभव से अंदाज किया जा सकता है कि अुसने कितना परिश्रम किया होगा।" प्रेयसी का बखान अिस महा कविने किस मधुरता से किया है यह देखिअे—" अुसकी भुजाएँ बांस की नाअीं पतली हैं। हँसी मोती की तरह; गात पत्तों की सदृश्य स्निग्ध; साँस में मीठी खुशबू भरी है। और अुस की आँखें नीले आसमान की तरह; नील कमल भी अुस की नीलिमा के आगे निस्तेज है। हँसों के पंख और जूही के फूल अुस के पाँवों को चूमते है।" कितना सीधा परन्तु कितना आकर्षक वर्णन!

अुदार विचार, परिस्थितिनुकूल दृष्टान्त, रसपूर्ण वर्णन—अिस के लिये तिरुवल्लुवर मशहूर है। प्राचीन तामिल कवि ने कुरल काव्य की प्रशंसा करते वक्त अुस के अिस गुण की चर्चा की है। किसी समकालीन कविने कुरल के सम्बन्धमें लिखा है—कुरल ग्रंथ के दोहों की परिधि में असीम अर्थ भरा हुआ है। मानों राअी को खोदकर अुस में सप्त सिंधू की विशालता को आबद्ध किया है।" लेकिन तिरुवल्लुवर की बहन अुस के आगे जाकर कहती है " जिस तरह घास के पत्तेपर रहनेवाले ओस कण में गगन को छूनेवाले ताड़ वृक्ष का प्रतिबिम्ब होता है अुसी भाँति कुरल के अिन छोटे श्लोकों में महान अर्थ भरा हुआ है।" संक्षेप में गागर में सागर जैसे उदाहरणों में से कुछ यहां दिये जाते हैं। एक स्थानपर कवि कहता है—" मनुष्य की सची संपत्ति अुस की संतान है।" " पिता का पुत्र के प्रति कर्तव्य याने विद्वानों की परिषद् में अुसे प्रथम सम्मान के लायक बनाना।" " पुत्रकी रहन-सहन कैसी होनी चाहिअे अिस के लिअे सब लोग अुस के पिता से प्रश्न करें।" " किस पुण्य से आपको अैसे पुत्र का लाभ हुआ?" " मैं अपने परिवार के गौरव को यश की चोटीपर चढाऊँगा असी प्रतिज्ञा कर जो बाहर पड़ता है, अुस की रक्षा के लिये देवता सदा-सर्वदा तत्पर रहते हैं।" " जिस आँख में मधुरता नहीं, वह गड्ढा है।" " अत्याचार से छटपटानेवाले के आँसू राजा का राज्य डूबो देते है।" " वह वक्त आधी रात का था, परन्तु वह आज नहीं है अैसा यह दुनिया है।" " बडों की दौलत गाँव के बीच चौपालपर फलों से झुके हुअे वृक्ष की तरह होती है।" " मुसकान याने मित्रता नहीं; हृदय को हँसानेवाली प्रीत याने मित्रता है।" " बिछुड़ने की बात कहो; परन्तु जल्दी वापस आने की बात कहनी है तो अुस समयतक जिन्दा रहनेवाले के पास कहो।" " मेरी जिन्दगी की अेक ओर प्रेम है तो तरफ विनय है; दोनों ओरसे मैं पिसा जा रहा हूँ।" " अरे झूठे! सारी स्त्रियाँ तुझे आँखोंसे खा-पी जाती हैं। जा, मुझे तेरी मुलाकात नहीं चाहिअे" अिस किस्म के गंभीर अेवं मनोरंजक अर्थों से पूर्ण वाक्य अिस कुरल काव्य में सब ओर मोती माणिकोंकी तरह बिखरे हुअे हैं। देश मित्रता का, कृषिका महत्त्व, परिवार के गौरव को बढ़ाना, भिक्षा आदि विषयोंपर लिखे गये परिच्छेदों को स्वयं पढकर अुसका रसस्वादन करें। अहिंसा माँसभक्षण-त्याग, सभ्यता, आदिका सुरस वर्णन है धैर्य और त्याग का यह वर्णन पढो– " जो दुख से दुःख नहीं होता, वह दुखको दुःखी करता है।" " जो किसान बारबार अपने खेतोंपर नहीं जायगा, अुसके खेत पत्नी की तरह अुसपर नाराज होंगे।" " सिर्फ किसान हीं अपनी मेहनत की रोटी खाता है;

बाकी सारी दुनिया दूसरों के अुपकारोंसे दबी है ।" "दानों से भरेपूरे भुट्टों की छाया में आराम करनेवाले हरे-भरे खेत जिस राज्य में है अुसके आगे दूसरे राज्य के सिर झुक जायँगे।" "मेरा पेट खाली है, यह शब्द सुनकर धरती माता हँसती है।" असे रसपूर्ण वर्णनोंकी मिसालें कहाँ तक दूँ? वास्तव में कुरल ग्रंथ रत्नों की खान है।

तिरूवल्लुवर ने स्वावलम्बन के बडप्पन में कहा है– "मेहनत कर के परिवारकी अुन्नति

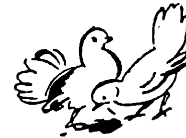
> स्व. पांडुरंग सदाशिव साने अर्थात् साने गुरुजी : महाराष्ट्र के ही नहीं बल्कि संपूर्ण भारतवर्ष के आदर्श शिक्षक, समाजसेवक, लोकप्रिय नेता एवं पत्रकार थे। दलितों के लिये बाल्यावस्था से ही आपका हृदय प्रपीड़ित था। आपकी साहित्यिक अस्मिता परिमाणु से भी लघु एवं व्योम से भी विशाल थी। आप एक श्रेष्ठ श्रेणी के लेखक थे, वैसे वक्ता भी थे।

करनेवाला सच्चा कर्मयोगी है। गांधीजी के तत्त्वज्ञान के सब सूत्र यहां मिलेंगे। खेती की भाँति सीधा, सुंदर व्यवसाय प्रेम परोपकार, जीवदया, सत्य, दुश्मन से प्रेम करना–जीवन का असा अूँचा आदर्श यहाँ स्थापित किया है। सादी रहनसहन और अूँची विचारशक्ति यही तिरूवल्लुवर का ध्येय है। अुसके काव्य में बिखरे हुअे शब्द–रत्न तामिल प्रान्त के हर छोटे-बड़े के मुँह मे बैठे हुए हैं। कुरल ग्रंथमें बुद्ध, ख्रिस्त अिनके उपदेशों की भाँति जीवनोपयोगी अुपदेश है। चाणक्य, महाभारत अिन ग्रंथो मे प्रतिपादित शिक्षा की तरह अूँचा अर्थशास्त्र यहाँ है। तीसरी तरफ कालीदास जैसे वागीश्वरकी योग्यता का प्रेमभाव व्यक्त करनेका बल यहाँ है। संक्षेप में गंभीर और हृदयस्पर्शी अर्थ प्रगट करने में यह ग्रंथ बेजोड़ है। कृष्ण के छोटे मुँहमें जिस तरह विश्व समा जाता हैं अुसी भाँति अिस काव्य के छोटे छोटे श्लोकों में असीमता भरी है। १७८ साल के पहिले कान्स्टटिअस नामके अेक जेसुअीट अीसाअी धर्म प्रचारकने अिस ग्रंथ का लैटिन में अनुवाद किया। अिसकेबाद अेरियल और डयूमाँ अिन्होंने फ्रेंच भाषा में किया। अेरियलने अिस ग्रंथ की बहुत तारीफ की है। वह कहता है– "मानव के सात्विक और विशुद्ध विचारोंका दर्शन अिस ग्रंथ में होता है।" वह आगे कहता है..." यूनानियों में जिस तरफ होमर के काव्य को परमोच्च आदर्श मानते है, अुसी तरह अिस ग्रंथका तामिल भाषा में अूँचा स्थान है।" बाद में जर्मनी और अंग्रेजी भाषा में अिस ग्रंथ का अनुवाद हुआ। कुरल पढ़कर आपके ध्यान में आयेगा कि भारतीय संस्कृति सब तरफ एक ही है।

अिस विशाल देशका हृदय एक ही रक्त से अनुप्राणित है। एक ही नाड़ी का स्पंदन सबमें मौजूद हैं। अन्य प्रांतोंकी भाषा के वाङ्मयका अध्ययन करनेके बाद हमें मालूम होगा कि प्रान्तीयता के भेद के बावजूद हम सब मन से एक दूसरे के निकट ही हैं, एक हैं। महान दार्शनिक अखिल विश्वके होते हैं। तिरूवल्लुवर यह सिर्फ तामिलनाड़ का ही नहीं वह तो भारत का है; इतनाही नहीं बल्कि वह सारे विश्वका है। तमाम मानव जाति की उन्नति के लिए उसने लिखा है। जातिसे अछूत; व्यवसाय से जुलाहा लेकिन विचारोंके अनमोल माणिक–मोती बाटनेवाला यह तिरूवल्लुवर मनको मोह लेता है। ऐसा बहुत कवियोंने कहा है कि "इसके मुखसे वेद बोले; देवी सरस्वती बोली।"

● ●

अनुवादक—कृष्णकुमार गौर।



निद्रा

यह एक अनोखी बिल्ली
जो दबे पाँव से आती
चुपके से छिपकर नयनों में
जागृति को पी कर जाती!

—वसंत व्हाडपांडे

बेंत का नील,
क्लास के लड़कोंकी हँसी, सबकुछ मैं
पचाता—पर गुलाब की आँखोंसे
मैंने पहली बार आँखें भिड़ाओ
और



वह मुस्कान

— वि. वि. बोकील.

दुनिया की ओर देखने की मेरी दृष्टि विकृत है ऐसा सबोंका का मत है। अत्यन्त संकुचित मन से मैं लोगों के काम की जाँच करता हूँ ऐसा मेरे दोस्तों का मुझपर आक्षेप है। मैं बिल्कुल मनहूस तबीयत का आदमी हूँ ऐसा गहरा शक कओी बार माँने मेरे मुँहपर कहकर सुनाया है। मेरे पिताजीने तो मेरे हठी स्वभावसे अूबकर मेरे बारेमें अेक हरूफ भी न कहनेकी प्रतिज्ञा मानों ले ली है। मेरी छोटी बहिन मालू अब चार बच्चों की माँ हो गओी है। पर जब वह करीब करीब बारह बरस की थी तभी से उसने मुझे 'खब्ती' की पदवी इनाम दी थी। वह आज तक अुस ने वापिस नहीं ली है। किस्सा कोताह यह कि मेरे बारेमें अच्छी बोलनेवाले लोग शायद ही कोओी मिलें, अिसके बारेमें मुझे शंका है।

काव्यशास्त्र विनोद के लम्बे चौडे नाम के नीचे गंदी फोश बातें बोलनेवाले मेरे मित्र मेरे पास में आते ही हवा-पानी की और बाजार की बातें करने लगते हैं यह कओी बार मेरे देख ने में आया है। घरमें मेरे पैर रखने के पहले माँ और लडकी जिस आत्मीयता से बातचीत करते हैं वह आत्मीयता, वह लाघव और वह सहजता मेरे आगमन से काफूर हो जाती है यह भी मेरे देखने में आया है। मेरे बहिन के चारों लडके आसपास के और लडकों में ज्यादह सुंदर और अच्छे दिखाओी देते हैं यह मैं मानता हूँ। पिताजी की अमीरी के कारण उन बच्चों की कपडे और पहनावे की देखभाल ज्यादह अच्छी होती है यह मैं मानता हूँ। फिर भी मामा-भाँजोंके बीचमें विशेष आत्मीयता की भावना कभी निर्माण न हो सकी। कदाचित् मेरे इस तरह अलग-अलग रहनेसे ये बच्चे जब बड़े हो जायँगे तो मेरे निंदकोंकी संख्या में और थोड़ा इजाफा हो जायगा।

मुझे यह सब कुछ साफ दिखाई देता है। दूसरोंने जो मेरे बारेमें पूर्वग्रह बना लिया है वह मुझे साफ समझमें आता है। लोगोंने मेरे बारेमें बेकार मन कलुषित कर लिया है। अैसा झूठा ढोंग पालनेमें मुझे कोओी मतलब नहीं जान पडता। बाह्य स्वरूप से परीक्षा करनेकी दुनिया की आदत ही होती है, यह मैं कैसे भूलूँ? लोग मेरे बारेमें लापरवाही दिखाअें, कभी किसी समय समाज शत्रु कहकर मेरा तिरस्कार करें अिसमें लोग कोओी ग़लती करते है अैसा मुझे नहीं लगा।

हाँ! यानी मेरे बारेमें यह सब लोकमत मुझे पूर्णतः मान्य था अैसा अिसका अर्थ समझना ग़लत होगा। परिस्थितियोंके कारण मेरे अैसे कठिन बनें हुअे स्वभाव का भी अितिहास था—वह बहुत थोडे लोगों को मालूम होगा। स्पष्ट कहूँ तो मुझे और अुसे! हम दोनों ही को पर अब सुना ही दूँ वह किस्सा!





क्या आज आपने **मैकलीन्स** से दांत साफ़ किये थे?

अनुक्रमणिका





खण्डिता

अनुक्रमणिका

पंद्रह बरस का समय बीता होगा। अुस समय मुझे चौदह बरस पूरे होकर पंद्रहवाँ वर्ष लगा था। मालू करीब बारह बरस की छोटीसी छोकरी थी। घरमें छोटे बच्चे हम दो ही जिन्दा थे। मेरे पहले दो और मालू के बाद के दो अैसे चार भाअी-बहन मानों मरने के लिअे ही पैदा हुअे थे। घरमें लड़का अकेला मैं अेक था। अर्थात् चेहेरेसे से कुछ कुरूप होने पर भी सोनेका टुकडा मैं माना जाता था और अिस नातेसे अधिक प्रेमसे पाला जाता। कुछ कहूँ वह अक्षरशः सच माना जाय-मैं 'हूँ' कहूँ तो सारा मकान मानों अब नीचे गिर रहा है अैसा भय का वातावरण पैदा हो, मेरा सिर दुखतेही दशोंदिशाअें सूनी लगने लगें और मैं अपने आगे बढ़े हुअे दाँतोंकी दरारमेंसे मुसकाने लगूँ कि निरभ्र आकाशमें चाँद चमकने लगनेकी प्रसन्नता अुस घरमें खेलने लगे अैसा बड़ा अधिकार प्रकृतिने मुझे दे रखा था।

मगर अेक दिन घरके आईनेने मेरा यह सारा सुलक्षपना चकनाचूर कर दिया। अुम्रमें आनेतक लड़कोंको अिस बातका ज्यादह दुख नहीं होता। तबतक अपना चेहरा सुंदर है या असुंदर अिस विचारका पता भी लगनेका कुछ कारण नहीं होता। मालूके बारेमें प्रकृतिने अपनी गलती पूरे सूद के साथ सुधारी थी। और अिसी कारणसे अुसने मुझे हजारों बार चिढ़ाया होगा। अैसे समय मैं जरा चिड़चिड़ाहटसे कुछ बोलने लगता तो माँ मेरी तरफसे बोलने लगती। अेक बार मुझे याद आता है मालू मुझपर बहुत नाराज हुअी थी। अुसकी कापी मैं छीन कर बैठ गया था। मेरी बदमाशी का सक्रिय अुत्तर देना अुसके लिअे संभव नहीं था अिसलिअे अुसने गुस्सेमें शब्दोंका अुचारण करके अपने दुखे हुअे मनकी मरहमपट्टी करनेका निश्चय किया होगा। बोलते-बोलते अुपहाससे मेरे आगे आरती की तरहसे हाथ फैलाकर और घुमाकर वह बोली—वाह वाहरे मेरे जमूरे! वाहरे पुरुष! पुरुष गये भाड़में। रंग तो अैसा कालाकाला है कि काजल को भी लाज लगे। कान तो गधेसे अुधार लाये हुअे। बूढ़े आदमी की तरहसे पीठपर अैसा बाड़ा कूबड़—अूपरका होठ चूहेने बीचहीमें कुतरा हुआ और बाल हब्शी जैसे कडे। कानपर भी ते रे बाल उगने लगे हैरे। गये जनममें तू भालू था या कौन था, पता नहीं! माँने तेरा कितना भी पक्ष लिया तो भी क्या कोयलेका रंग कभी बदलेगा?"

"माले, अे मालिटले—" मैं गुस्से में भरा चिल्लाया। मेरे गुस्से की ओर ध्यान देकर वह हँसकर बोली— "और गुस्सा होनेपर अैसा कामदेव का पुतला दिखाई देता है कि गुरुवार रातको भीख माँगने आनेवाला अंधा भिखारी शायद तुमसे अच्छा हो। और बड़ा अपने को वीरपुरुष कहता है! जरा भी मेरे बदनको हाथ लगाया तो खैर नहीं है समझना—"

माली को अुस दिन मैंने खूब यथेच्छ पीटा माँने बीचमें बचाव किया।

श्री. विष्णु विनायक बोकिल : मराठी कथा साहित्य की "परिहासात्मक कहानी" को संवर्धित करनेवाले अगुआ कलाकार है। केवल "बेबी" नामक अेक ही रचना से अखिल मराठी साहित्य जगत में विख्यात बने हुअे श्री. बोकिलजी का सानी रखनेवाला और कोअी कलाकार कलाक्षेत्र में पाना स्वाति बूँद सा अप्राप्य ही होगा। प्रदीर्घ काल से अभिप्राप्त शिक्षकीय जीवन की अनुभूतियाँ आप के साहित्यमें आत्यन्तिक सचाअी के साथ प्रतिबिम्बित हुअी हैं।

हमारी लड़ाअी थोडी देर के लिअे रोकी। और माली को अुस दिन मेरे हाथका मार और माँके मुँहके गुस्से के शब्द अिन दोनों अन्यायों के आगे चुपचाप गर्दन झुकानी पड़ी। माँने माली को डाँटा— "कलमुँही, क्यों तू अुससे अैसी गये जनम की दुश्मनी निकाल रही है? तू कौनसी बड़ी अिंद्रानी है सो तो दिखाअी ही दे रहा है। पर ध्यानमें रख, दूसरे के घरमें चूल्हा और चौका करते रहने के लिअे ही तेरा जनम है। दूसरे के घरमें अुठते लात और बैठते थप्पड़ जब मिलेगी तब तेरे मिजाज ठिकाने आयेंगे! जिंदा रही तो तेरा वह भी तमाशा अिन्हीं आँखों से देख लूँगी। जगू कैसाभी हो। है तो अिसी घरका। तेरी जैसी लड़की को तो सौ घर दिखलाते फिरना होगा और यह फजीहत कमसे कम अुसके नसीब में इस जनम में तो नहीं ही है। समझीं—!"

माँ के इस वक्तव्यसे मालूका समाधान हुआ या नहीं यह समझनेका मेरे पास कोअी अुपाय नहीं था। अुस समय अेक बात मेरे मनको छू गयी कि मेरी कुरूपताके विरोध में कितना भी वह चिल्लाये, मेरी कुरूपता अखिर अुसे भी स्वीकार करनी ही पड़ी। मैं कुरूप नहीं हूँ अैसा अेक भी वाक्य अुसके मुँहसे नहीं निकला अिस बात की मुझे अस्पष्ट चेतना हुअी। परंतु मालू को खूब गालियाँ मिलीं अिस विजयोन्मादमें यह बात मैं जल्दी से भूला गया।

लेकिन—लेकिन यह कुरूपता का अवगुण धीरे धीरे अुम्र बढ़ने लगी त्यों-त्यों बीच बीचमें बेचैनी बढ़ाने लगा यह बात निश्चित है! मैं मनका समाधान करने लगा। पुरुष को अखिर रूप की अितनी क्या जरूरत है? स्त्रैण चेहरा अेक तरह से दुर्गुण ही तो है। अैसे नाजुक चेहरे के लड़कों को हम स्कूल में चिढ़ाये बिना कभी रहते हैं क्या? पुरुष के रूपकी चर्चा करने की अपेक्षा अुसके पराक्रमकी ओर दुनिया अधिक ध्यान देती है। वह पक्ष मजबूत होनेपर दुनिया के अुपहास को कौड़ी कीमत नहीं बची रहती। अिस तरह के युक्तिवाद से मैं अपना समाधान कर लेता था—

परंतु शालामें हमारी कक्षामें एक दिन मिस् गुलाबने प्रवेश किया। अंगरेजी छठी में मैं तब था। हमारी शाला थी सरकारी हाईस्कूल। लडके लडकी दोनों की पढाई साथ साथ तब होती थी। पर गये छः वर्षोंमें हमारी शालामें सिर्फ पंद्रह-बीस लडकियाँ ही पढती हुई मुझे दिखाई दीं। और उनमें भी अधिकतर चौथी से दूपर आगे आअी ही नहीं। वह जमाना आजसे कुछ अलग था। लडकी अंगरेजी शाला में है यह बात भावी दुलहे के पक्ष को दिखाने के लिए ही उस समय लडकियों को स्कूलमें भेजते थे। अच्छी दिखने वाली लडकियाँ चौथीके सालाना अिम्तिहानमें बैठनेके फँदेमें शायदही पडती थी। उस समय तक तो वे 'दापत्यसुखरहस्य' जैसी कितावें पढने लग जातीं!

अनुक्रमणिका





अिस कारणसे जवानीसे भरी हुअी अल्हड तरुणी पाससे देखने का सद्‌भाग्य मुझ जैसे मसें भींगे हुए जवान की किस्मतके करीब-करीब आताही नहीं था। छठी का लडका तीसरीकी लडकीकी ओर देखकर कितनी देर देखता? और उसमें चित्तक्षोभ हो जाय ऐसा उसे दूरसे देखनेवाले को क्या मिलता?

गुलाब अिसाअी बने हुए बापकी बेटी थी। उसके बापकी बदली हो जाने से यह संयोग घटित हुआ था। करीब-करीब मेरी ही उम्र की कदाचित् एकाध साल ज्यादह भी हो।

मगर जब मैंने उसे पहले दिन क्लासमें घुसते हुए देखा तो अुस दिनकी याद मैं अिस जीवनमें तो कभी नहीं भूलूँगा। गुलाबके रूपमें दुनियाका मूर्तिमान् मांगल्य मानों मेरे दृष्टिपथमें आ गया था ऐसा मुझे उस क्षण लगा। उद्यानकी लतावेलियाँ हवाकी तरंगोंसे खेल

सब को इस दिपोत्सव सुखपूर्ण और समृद्ध होवे

* * *

खेलते-खेलते, वह खेलना भूलकर अिधर किधर बिसर पड़ी! अचरज था। बंद खिडकीमें से एक अकेली रूपहली चंद्रकिरण मानों बदनपर खेल रही थी ऐसा मुझे क्षणभर भास हुआ। चंद्रकी स्निग्धता, कमलके पराग की सुकोमलता, हजारी मोगरे के फूल का रंगढंग और खिलते हुए गुलाब के फूल का निमंत्रण—यह सब गुण अेक साथ अुस की बड़ी बड़ी आँखों में मानों अेकत्र हो गये थे अैसा मुझे संदेह हुआ। उसे देखते ही मेरा हृदय मैंने अुस के पैरोंपर अर्पित करने का मानों संकल्प किया। मैं अधीर हो अुठा। पंद्रह बरस के लडके द्वारा हृदय की आदान प्रदान इतने मंद भाव से करना अच्छा नहीं जान पडेगा, इस बात की हलकीसी शंका भी मेरे मन को छू नहीं गयी। किसी भी तरह का विचार करने अितना मेरा दिमाग हवास में कहाँ था? गुलाब के रूप ने मुझे साक्षात्कार दिया था। विधाताने गुलाब के रूप में अपनी रचना कौशल्य का अेक पन्ना मुझे खोलकर दिखाया था। गुलाब को देखते ही मैं पागल हो गया। स्त्री कितनी अमोघ शक्ति है यह देख कर मैं स्तंभित हो गया। अर्थात् यह सब बातें आज मैं जितने स्पष्ट शब्दों में कह रहा हूँ, तब वे शब्द मेरे पास भी नहीं फटकते थे। गुलाब को देखकर अुस समय मुझे क्या लगा यह आज मैं शब्दों से कह सकता हूँ परंतु अुस समय क्या हुआ वह मैं अकेला जानता हूँ।

सारे दिन भर कक्षामें मैं जैसे चेत में नहीं था। झूठी लज्जा छोडकर मैं मौका मिले तब गुलाब की पीठ की ओर दिखाअी देनेवाली केशरचना की ओर अतृप्त नेत्रों से देखता रहता था। कअी बार देखनेपर भी तृप्ति मुझे मिलती ही नहीं थी। अितनी मीठी लडकी सामने बैठी थी तब अुस की ओर देखना छोडकर अलजेबरा के रूखे फॅक्टर हल करने में मुझे कैसे आनंद मिला होता? मेरे हाथों से अुस दिन अनेक अक्षम्य गलतियाँ हुअीं होंगी—परंतु मेरा समाधि भंग नहीं हो सका।

मैं घर आया। मालतीसे मैं अक्षर भी नहीं बोला। माँने दी हुअी चाय मैं अेक साँस में पी गया। निर्विकार मुद्रा से। माँ क्या बोलती थी अुधर मेरा ध्यान नहीं था। मैं अुठ कर बाहर जाने लगा तब माँने मुझे टोका—

"तेरा ध्यान कहाँ है आज? तश्तरीमें रखी चाय अभी भी वैसी ही है—"

जल्दी जल्दी से मैंने तश्तरीमें की चाय पी डाली। माँसे बोलते रहनेका वह समय नहीं था। मुझे अेकांत चाहिअे था। कोअी भी कीट पतंगा भी मेरे आसपास नहीं अैसी ओट में जाकर अुस देवताकी मुझे मानसपूजा बाँधनी थी। अुसके सौंदर्य की अेक भी विशेषता स्मृति से न चली जाय अिसकी मैं कोशिश कर रहा था। अुसकी वह सरल नासिका, बेतस् शरीरयष्टि, पूर्ण चंद्रकी भाँति गोल जूडा, दाँतोंकी रेखाबद्धता, गुलाबी होठों को बीचमें विभाजित करनेवाली रेखा—अिन सब विशेषताओंका प्रतिबिंब हृदयमें स्थायी रूपसे अंकित करनेके लिअे मैं आतुर हो गया था। बाहरके कमरेमें पिताजीके चश्मा पहने हुअे आँखों की ओर जरा भी न देखते हुअे मैं घरके बाहर निकल गया।

मैं कितनी दूर गया और कितना समय बीत गया अिसका मुझे जरा

मी भान नहीं रहा। मैं आदमियोंकी बस्ती छोड़कर दूर अकेला भटक रहा था।

मेरे सारे विचार गुलाबकी स्मृतिके आसपास मँडरा हे थे। ज्यों-ज्यों विचार करूँ त्यों त्यों अुसके रूपमें मुझे नयी नयी आकर्षकता जान पडी। अुससे बोलने का मौका मिलेगा या नहीं अिस विचारसे मेरा सर्वांग पुलकित हुआ। वह मुझसे क्या बोलेगी अिस विचारसे क्षणभर मेरा हृदय भाराहत हो अुठा। मैं अुसके पैरोंका दासानुदास बन गया था। अेक दिनने मेरे विचारोंमें अेकदम क्रांति कर दी थी। प्रत्येक पेड मुझे गुलाब के रूपका प्रतीक जान पडता था। वृक्षके पत्ते हिलने लगते तो गुलाब मानों हाथोंसे इशारा कर के मुझे बुला रही है अैसा लगता। हवाके पत्ते हिलने लगते तो गुलाबकी साडीकी याद आ जाती।

चारों ओर फैली हुअी प्रकृति गुलाबही है ऐसी पागलपन भरी कल्पना मेरे मनमें बैठ गअी।

गुलाब मुझे चाहिये थी। आजीवन गुलाबके पैरों से बैठा रहूँ ऐसी पागलपन भरी कल्पना मेरे मनमें आ रही थी। गुलाबका सहवास मुझे चाहिये था परंतु किसलिए? किसलिए चाहिए थी गुलाब मुझे?

इस प्रश्न का उत्तर मुझे ठीकसे देते नहीं बनता। मैं उम्रमें बढने लग गया था। कदाचित् उस समय मेरे मन के अभी अर्ध सुप्तावस्था में कोनेमें पडी हुअी विषय लालसाका सूत्र भी मिल जाता। मैं ढोंग कर के यह बात शायद भुलाना चाहता था। मालतीने तो सारे गाँव को आग लगा दी होती। पिताजीने मेरे गुस्सेके जनेअू ही तोड डाला होता!

नहीं! वह पवित्र भावना, वह पवित्र स्मृति मुझे अपने हृदयमें ही छिपाये रखनी जरूरी थी। पुराना नाता कितनाभी पवित्र हो तो भी प्रणयका नाता यह सबसे अधिक पवित्र है। अुसकी पवित्रता रखनेके लिए मुझे अपने माँ-बाप से भी यह बात छिपाये रखना जरूरी जान पडता है। दुनिया मुझे पागल कहे तो कहे। मुझे दुनिया क्या समझे या क्या नहीं, यह तय करना मेरा काम नहीं है।

और दीपकके प्रकाश में मैंने पहली बार आअीने में अुस दृष्टिसे देखा। गुलाबकी आँखोंमें मैं कैसा दिखता होअूँगा इस नयी कल्पनासे मैंने आअीनेमें देखा। मुझे जोरोंका धक्का लगा।

आअीनेमें दिखाअी देनेवाले अुस कुरूप प्रतिबिंबकी ओर वह देवता किस कारणसे सदयतासे देखे अिस विचारसे तिलमिलाते हुअे वह रात मैंने सचमुच जागकर बिताअी। आजतक मेरी असुंदरता के बारेमें जो जो बातें सुनी थीं वे सब मेरे हृदयको अंगारोंकी तरह जलाने लगीं। गुलाब सर्वांगसुंदर थी अिसलिअे मैं अुसकी ओर आकर्षित हुआ— परंतु वह मेरे बारेमें किस कारणसे स्निग्धता धारण करे?

अुलटेसुलटे विचार करते हुअे मेरा सिर सचमुच दुखने लगा। 'कुरूपताका अेकमात्र विचार मुझे अकदम जलाने लगा! और सबेरे की ठंडकके साथ अेक नया विचार मेरे सिरमें चमक गया। बिल्कुल बुद्धूपनका वह विचार था। परंतु अेक दिनके लिअे दिलमिलानेवाले दिलको वह बड़ा मज़बूत आधार जान पड़ा। दिल की बात दिलही जानता है अैसा शायद कहते हैं—शायद वह सच घटित हो जाय! मेरे दिलकी छिपी हुअी भावनाअें सहसंवेदनासे गुलाब न जाने कहीं जान ही ले? कौन जाने? हृदयकी विशुद्धता भी तो कोअी चीज होती ही है? यह अजीब चमत्कार शायद घटित ही हो जाय?

सवेरे मैं बहुत देरसे जगा असल में मांने मुझे बिस्तरेमेंसे खींचकर बाहर निकाला और जगाया।

मैं जल्दीजल्दीमें स्नान, भोजन सब पूरा करके स्कूलमें भागा। स्कूलमें जानेसे पहले आअीनेमें देखकर टोपी पहनेका अैसा मोह भी हुआ था। पर वह विचार मैंने निठुराअीसे ठुकरा दिया। अैन समयपर वह आत्मघातक याद मुझे होनी नहीं चाहिअे थी। गुलाब के दिलका पता जब लगे तब लगे पर आज मैंने अपनी दृष्टिसे वह व्यक्त करनेका निश्चय किया। मैं तुम्हारे पैरों का दासानुदास हूँ यह आँखोंसे मैं अुसे जँचा देनेवाला था। अैसे इस शुभकार्यमें अपशकुन कर लेनेकी मेरी अिच्छा नहीं थी।

पहिला घंटा योंही निकल गया । मैं क्लासमें जानेसे पहलेही गुलाब अपने स्थानपर बैठी थी। अुसकी नजर से नजर न लड़ सकी। वह अेक बार मेरी ओर पीछे मुड़कर देख ले अिस आंतरिक अिच्छा से मैंने मास्टर को पता न लगे अैसे कअी अुद्योग किये। लेकिन वह घंटा बेकार गया। गुलाबने अेक बार भी पीछे मुड़कर नहीं देखा। लेकिन अितने से मेरी हिम्मत कम नहीं होनेवाली थी। दूसरा घंटा शुरू हुआ। गणित के अध्यापक क्लास में आये। कल घरसे पूरे कर के लाने के लिअे कुछ सवाल अुन्होंने दिये थे। अर्थात् कुछ भी काम न करनेवाले अडियलटट्टूकी पदवी हमें मिली। खड़ा होने को कहा गया। खुशीसे मैं खड़ा रहा।

गुलाबकी आँखों के आगे आने की यह सुवर्णसंधि मुझे प्राप्त करा दी-अिस के लिअे मनही मनमें अुस शिक्षक को मैंने शतशः धन्यवाद दिये। मैं अुठकर खड़ा रहा–और मंत्रमुग्ध होकर गुलाब की पीठकी ओर देखने लगा।

शिक्षक ने डाँट के स्वरमें मुझे क्या पूछा। अुसकी ओर मेरा जरा भी ध्यान नहीं था। अुस स्वर्गीय क्षण की ओर मेरा सारा ध्यान अटका हुआ था। मै क्लास मैं खड़ा हूँ, मेरी हर हलचलकी ओर क्लास के चालीस विद्यार्थियों की आँखें लगी हुअी हैं यह सीधीसी बात मैं भूल गया। अिसके अलावा जिस अध्यापकों से अब मुझे लड़ना है वह कड़े अनुशासन के चाहनेवाले हैं। यही अुनकी ख्याति है यह बात मैं भूल गया। क्या हुआ होगा पता नहीं! एकदम सारा क्लास जोरोंसे हँसने लगा।

मैं सचेत होकर अिधर-अुधर देखने लगा। बोर्ड के पास खड़े मास्टर साहब बेंत लिअे हुअे मुझे आगे बुला रहे थे। मेरा ध्यान किधर है यह सवाल कड़े स्वर में मुझसे पूछा गया। और लड़के फिर अेकबार ज़ोरसे हँसे। सच्चा अुत्तर देने की क्या शक्यता थी? मैं घबड़ा गया। और नीची गर्दन करके हाथ बढ़ाकर अुनके सामने जाकर खड़ा हुआ।

बेंत के नील मुझे अितने बुरे नहीं लगे;—क्लासके और लड़कों की हँसी भी मैं पचा गया होता,—पर पर...गुलाब की आँखों से मैंने पहली बार आँखें मिड़ाअी और अुसकी वह मुसकान दिखाअी देते ही मेरी सब कोमल भावनाओंसे जैसे आक्रंदन किया। अुसकी वह अुपहास भरी मुस्कान में जीवन में नहीं भूल सकता। देवताके पैरोंपर चढाने के लिअे लाया हुआ मेरा हृदय देवताने अेक मुसकान के साथ ठुकरा दिया। बेंत लगाने वाले मास्टर के खिलाफ मुझे कोअी शिकायत नहीं करनी है। गलती करनेवाले लडकों को सही रास्तेपर लाने का कर्तव्य अुन्होंने किया। लड़के हँसे। हँसते ही। मेरे जैसा असुंदर भोंडा ठूंठ अगर भरे हुअे क्लास में लडकियों की बेंच की ओर बुद्दू की तरह देखता खडा रहता तो और लडके न हँसते तो और क्या करते? क्या वे छाती पीट कर रोते?

परंतु मेरी पवित्र भेंट इतनी निष्ठुरता से देवता ठुकरा दे यह दृश्य मैं नहीं सहन कर सका। लडकों के हँसने में जहर नहीं था। परंतु गुलाब की आँखोंका जहर मैं जल्दी से पहचान गया–। और यही मुझ से देखा न गया। और यह बातें बोलकर दिखाने की जरा भी सुविधा नहीं थी। दोनों हाथों से दबाकर मैंने किसी तरह सिसकी रोकी।

दुनिया की ओर देखने की मेरी दृष्टि विकृत है यह मुझपर झूठा इलजाम हैं। दुनिया जिस नजर से अेक दूसरे की ओर देखती है अुसी क्षण से अुसी नजर से मैं दुनिया की ओर आजतक देखता आ रहा हूँ। मैं लोगों की आलोचना का विषय बन रहा हूँ। और दुनिया सुख से अपनी राह पर चली जा रही है इसका कारण सिर्फ अेक है। मेरी अनुभूति की कडुवाहट में छिपाकर नहीं रखना चाहता। और लाखबार लात खाकर झूठे समाधान से हँसनेका ढोंग करके आगे फिर निर्लज्ज की तरह से खुशामद करने आती रहती है। दुनिया की यह आँख मिचौनी मुझे पसंद नहीं, मुझ से होती नहीं—और वह सीखने के लिअ मैं कोशिश भी नहीं करूँगा।

—अुस दिन जो मैं लौटा तो देवताने ठुकराया हुआ चेहरा और किसी को कभी न दिखाअूँ इसी अिरादेसे। इस आअीनेने मुझे मेरे अवगुणोंकी सच्ची पहिचान करा दी वह आअीना मैंने गुस्से में फोड़ डाला। परंतु बाद में मुझे बहुत बुरा लगा। बेचारे आअीने ने क्या पाप किया था?



अनुवादक—श्री. प्रभाकर माचवे



कोअी पान्थ किसी पनघटपर पानी पीने के लिए जब आया तब खडी युवतीको देखकर कहते बना :

"अरी युवती, यह पनघट, भला, किसका?"

"पान्थ, यह तो अपना।"

"अिधर पीनेको क्या मिलेगा?"

"पय"

"गौ का या भैंस का?"

"रे, गूंगे,...वार"

"मंगलवार या सोमवार या शनिवार!"

"जी नहीं, जी नहीं! यह अमृत है......"

"सचमुच! तुम्हारे अधरोंपर जो छलकता हुआ दिखाअी देता है, क्या वही है?"

"अरे, चतुर और सुन्दर पान्थ, भला, तुम्हें जो भाये अुसे पी जाओ!"

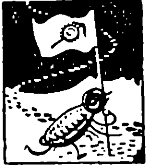




मनुष्य को दुष्कर भानेवाली समाजवाद की
समस्या प्रकृति के बहुतेरे
कीडोंने सुलझाओी है; अुसकी है
एक कहानी....जब



—ज. नी. कर्वे



आजकल किसी भी अखबार को अुठाकर देखिये, अुसमें सोशलिजम (समाजवाद) के बाबत जानकारी (खबर के रूप में क्यों न हो) आपको अवश्य पढ़नेको मिलेगी। समाजवाद का समर्थन करनेवाले समाचारपत्र तो अपने कॉलम के कॉलम भरकर पाठकों के सम्मुख रखते हैं। "मजदूरोंपर अन्याय हो रहा है। श्रमिक वर्ग का शोषण हो रहा है; किसानोंकी हालत गयीगुजरी हैं और दुनिया में सम्पत्ति का बंटवारा अन्यायपूर्ण हुआ है।" अिन बातोंके अतिरिक्त आपको अिसमें कोअी नवीनता नहीं मिलेगी।

संसार में रहेनेवाले मानव समाज की समाजवादी तत्वों के अनुसार स्थापना होगी या नहीं यह कहना बहुत कठिन है। विश्व के अितिहास में बहुत स्थानपर बहुत बार वह अपने विविध रूपों से व्यक्त हुआ है। परन्तु जनता के मनको आकर्षित करनेकी क्षमता न होनेके कारण अथवा और दूसरे कारणों से कहिये वह सफल नहीं हो सका। आजका समाजवाद भी कबतक मौजूद रहेगा यह कौन कह सकेगा। मनुष्य जाति को जँचनेवाली, पसंद और हजम होनेवाली साम्यवादी समाज व्यवस्था प्रस्थापित करनेका प्रयास अिन्सान सदियों से कर रहा है। लेकिन अुसके प्रयत्नों को कभी सफलता प्राप्त नहीं हो सकी। अिस असफलता का सच्चा कारण मनुष्य का अहम् है। आदमी कुदरतन अहमवादी है। और जब तक मनुष्य की प्रकृति में अहम् भावों का जोर रहेगा तबतक साम्यवादी समाज-रचनाकी आशा निष्फल है।

हमें मालूम हो सकता है कि अिन्सान से न सुलझनेवाला समाजवाद का यह कठिन प्रश्न धरती के अधिकांश कृमियों ने सरलतासे हल किया है। चींटी, मधुमक्खी, बर्रे अेवं दीमक ये कीड़ोंकी दुनिया के सूत्रधार जीव हैं। मनुष्य से बराबरी करने की योग्यता अुनमें नहीं है। अिसी लिअे अुनकी क्षुद्रता दिखाने के अुद्देश्य से मनुष्यने अपने घमंडी स्वभावानुकूल अुन्हें 'कृमि-किटाणु' की अुपाधि दी है। अुनकी लघुता के बावजूद कुछ समय के पश्चात् मनुष्य के मनमें अुन कीड़ों के प्रति अेक प्रकारका कौतूहल जाग्रत हुआ। अिस विस्मयानुभूति की परिणती जिज्ञासा में होकर अध्ययन और निरीक्षण से अिन कीड़ों की रहनसहन की संभवनीय बातें मनुष्यने मालूम कर ली। यह प्राप्त हुआ विवरण मनुष्यको अकल्पनीय आश्चर्य में डूबो देनेके लिअे पर्याप्त है। अिन कीटोंकी बस्तियाँ हैं; समाज है। सुव्यवस्था का सुसंघटन देखकर अिन बस्तियों को राज्य की संज्ञा प्रदान करनेमें कोअी हर्ज नहीं होगा। अिस राज्य में राजा और रानी है; सैनिक है, मजदूर हैं—सब कुछ है। विविध प्रकार की सुख-सम्पन्नता होने के बाद भी मनुष्य को ज्ञात न होनेवाली बहुत-सी बातें अिन कमजोर, नाचीज कीडों को मालूम हैं। हमें न सूझनेवाली, बुद्धि की चतुराअी अेवं कौशल्य के बलपर अभीतक हासिल नहीं हो पाअी अैसी रहनसहन, सदियोंसे परिपाटी अथवा आदत की भाँति कायम रखनेवाले अिन क्षुद्र कीड़ोंको देखकर किसे ताज्जुब नहीं होगा?

मनुष्य के निर्माण किअे हुअे किसी भी राज्य के मुकाबिलों में मधुमक्खी का छत्ता यह अेक आदर्श राज्य है। अिस राज्य में सारे कार्य—कलाप सुव्यवस्थित चलते हैं। मधुमक्खी और चींटियों की अपने ढंग की निराली संस्कृति है। अिस कथन में कोअी अतिशयोक्ति नहीं हैं। राज्य में रहनेवाले नारी-पुरुषोंको राज्य-लाभ के हेतु अुनकी

प्रा. ज. नी. कर्वे : प्राणी-विज्ञान के जितने प्रसिद्ध विज्ञ हैं अुस से कई गुना रूखे विषयको मनोरञ्जक अेवं सुरस बनाने के नाते विख्यात अध्यापक। आप की यह विशेषता आप की रचनाओंमे भी पायी जाती है, फलतः आपके विज्ञान-विषयक लेख किसी अच्छी कहानी की भाँति आस्वाद्य बन जाते हैं।

योग्यता के मुताबिक काम बांट देना और अुन्होंने कर्तव्य की भावना से प्रेरित होकर अुनको पूरा करना; अिस प्रकार अिन कीटाणुओं की संस्कृति हैं। मनुष्य समाज में किसी भी काल में न देखा गया होगा अैसा अनुशासन और कर्तव्यतत्परता मधुमक्खियों के छत्तों में और चींटियों के भीटे में देखने को मिलती है। दीमक के भीटे में अिन गुणोंका विकास अधिक परिमाण में दिखायी देता है। वैज्ञानिकों का अैसा अनुमान है कि कमसे कम बीस लाख वर्षों से दीमक धरती की पीठपर अपना जीवन चलाती आ रही है। देखनेपर वह जो भी किसी बेडौल चींटी की भाँति दिखायी देगी तो भी अुसकी और चींटी की शरीर-रचना में बहुत फर्क है।

दीमको के भीटे होते हैं। अिन भीटोंका अेक हिस्सा जमीन के अूपर बढ़ा हुआ और दूसरा जमीन के भीतर घुसा हुआ होता है। टीले की तरह दिखायी देनेवाला भीटेका जमीन पर फैला हुआ हिस्सा ज्यादह अूँचा होता है। अधिकांश देशों में वह साधारणतया छः से दस फूट तक अूँचा होता है। परन्तु आफ्रिका और आस्ट्रेलिया में यह भाग बीस फूट से अधिक अूँचा मिलता है। अिस भीटे में रहनेवाला समाज हजारों नहीं, लाखों व्यक्तियों की अेकता का परिणाम है। सब लोगों ने इकट्ठा रहकर समाज के कल्याण के लिअे काम करनेका अेकमात्र ध्येय अिनके सामने मौजूद है। स्वार्थ को अिन बस्तियों में कोअी जगह नहीं। हर बात में सब लोग अेक राय से काम करते हैं।

अिस समाज में श्रमदान के तत्वको पूरी तरह से अमल में लाया हुआ हमें देखने को मिलता है। काम के बटवारे के हिसाब से समाज के अलग वर्ग बनाये गये हैं और अिन अलग वर्गों में रहनेवाले व्यक्ति की शरीर-रचना में भी भेद होते हैं। प्रायः प्रत्येक बस्तीमें (अुपनिवेश) चार वर्ग होते ह। पहिले वर्ग में राजा और रानी अिन की गिनती होती हैं। अिन दोनों से ही राज्य की सब 'प्रजा' निर्माण होती है। पूरा विकास न हुअे नर और मादा दूसरे वर्ग में आते हैं। अिन के पंख रहते हैं और शरीर का पूरा विकास होनेपर यह दीमक राज्य छोड़कर दूसरी ओर जाती है। तीसरे वर्ग में सैनिक आते हैं; जिन का काम राज्य की रक्षा करना है। श्रमिक लोग चौथे वर्ग में शुमार होते हैं। बस्तीका सब घरेलू और दूसरे किस्मका काम अिन पर सौंप दिया जाता है। अिन चार वर्गों के सदस्यों के अलावा राज्य में कुछ अतिथि आकर रहते हैं। ये भी कीड़े ही रहते हैं।

राज परिवार में मुख्यतः राजा और रानी अिन दो व्यक्तिओंकी गणना होती है। रानी से राजा श्रेष्ठ समझकर जब हम अिन दो नामों का अुच्चारण करते हैं तब राजा का नाम प्रथम लेते हैं। लेकिन दीमक-राज्य में अिन दो व्यक्तिओं के सम्बोधन के समय हमको अपनी पुरानी परंपरा को बदलकर 'रानी और राजा' अैसा कहना जरूरी हो जाता है। क्योंकि अिन राज्य में राजा का कोअी महत्व नहीं है। राज्य का अस्तित्व सम्पूर्णतः रानीपर ही टिका हुआ है। रानी का जिस्म अुस के पद और वैभव के अनुसार विशाल और शोभनीय होता है। राजा नाटे कद का, साधारण और डरपोक रहता है। रानी के इर्दगिर्द अुसका निवास रहता है। लेकिन जहां तक हो सके वह रानी के नजरों की आड़ रहनेकी चेष्टा करता रहता है। रानी और राजा को अपनी पूरी जिन्दगी महलमें ही गुजार देनी पड़ती है। भीटे के अेक कोने में यह महल बना होता है। अुसकी दीवारें चौड़ी और मजबूत रहती हैं। महल का दरवाजा अितना छोटा रहता है कि अुसमें से बाहर की दूसरी दीमकें आ-जा सकती हैं, परन्तु रानी और राजा अुस दरवाजे से बाहर जा ही नहीं सकते। रानी की हिफाजत के लिए महल की चारों ओर सिपाहियों की कड़ी निगरानी और पहरा मौजूद रहता है। रानी का हर काम करने के लिअे महल में सेवक रहते हैं। रानी के भोजन का प्रबन्ध भी यही लोग करते हैं।

रानी का जिस्म बस्ती की और किसी भी दीमकों से बहुत बड़ा रहता है। पूरी तरह से विकसित रानी के पेट की लम्बाई ३॥ से ४॥ इंच तक रहती है और घेरा प्रायः अेक अिंच होता है। शरीर का अन्य हिस्सा छोटा रहता है। अंडे देकर बस्ती की आबादी बढ़ाना यही अेकमात्र काम रानी को करना पड़ता है और अुस को पूरा करने में वह मशगुल रहती है। रानी प्रति दिन ५०,००० से लेकर ८०,००० तक अंड़े देती है। रानी याने अविरत अण्डे देनेवाली अेक मशीन है अिसमें कोअी सन्देह नहीं। अेक ओर रानी अंड़े देती है और दूसरी ओर तुरन्त मजदूर लोग अुनको अुठाकर तथा झाड़ पोंछकर अंड़ जमा करनेके गोदाम में ले जाकर रखते हैं। किसी कारण से अंड़े देनेकी अिस क्रिया में बाधा अुपस्थित हो गयी अथवा रानी की तरफ से अंड़े देनेका कार्य ठीक प्रकार से सम्पन्न नहीं हुआ तो समाज के कल्याण की दृष्टि से अिसके आगे रानी का हमें कोअी अुपयोग नहीं है, यह सब जान लेते हैं। रानी के परिचारक अैसे वख्त अुसका भोजन बन्द कर देते हैं। अन्न न मिलनेसे वह मर जाती है। अुसके मरने के बाद नंय रानी को अुसकी जगह दी जाती है। कभी-कभी किसी राज्य की रानी मरने से पूरे राज्य का तहसनहस हो जाता है।

भीटे में रहनेवाले दूसरे वर्ग की ओर हम मुड़े। अिस वर्ग में आनेवाली दीमक 'मजदूर' और 'सैनिक' दोमकों से बड़ी रहती है और अुसको चार पंख होते है। अिस समूह में नर और मादा यह दो जातियां हैं। पूरी तरह से विकास होनेपर अिस समूह की हजारों दीमक भीटे से बाहर निकल पड़ती हैं; पंख होने से वह अुड सकती हैं। लेकिन भीटे के बाहर आनेके पश्चात् अुन में से अधिकतर विहंग, गिरगिट, छिपकली आदि का भोजन बनती हैं। इस संहार से बचकर जो जीवित रहती हैं, वे दूर उड़कर चली जाती हैं। कुछ समय के बाद उनके पंख गल जाते हैं और वे जमीनपर ही अपना डेरा डाल देती हैं। इसी





जगह वह मिट्टी में घुसकर नई बस्तियाँ बसानेका श्रीगणेश कर देती है। बरसात में किसी दिन वर्षा बन्द होने के बाद भीटे के बाहर निकली हुई पंखवाली दीमकों की टोलियाँ आप के घर में जलने वाले दीपक के आसपास मंडराती हुअी आप को दिखायी देती हैं।

धरतीपर रहनेवाले सब जीवों की जी-जान से यही कोशिश रहती है कि अपनी जाति का अस्तित्व सदा कायम रहे। अिस नियम को यह दीमक कैसे अपवाद साबित होंगी? हर भीटे में दीमक अेक अैसा वर्ग तैयार करती है कि जिसका काम सिर्फ नयी बस्तियाँ बसानेका ही होता है। पंखवाली दीमकों का यही कार्य है। पुराने भीटे और अुस में रहनेवाली दीमक यदि कुछ काल के बाद खत्म हो गयी तो भी अिस नष्ट हुअे भीटेमें से वख्त-बे-वख्त बाहर निकलने-वाली पंखवाली दीमकोंने नये समाज निर्माण किये हैं। अिस प्रकार से पृथ्वी की पीठ पर अपनी जाति का अस्तित्व कायम रखने का अुन का प्रयास अविरत चलता है।

'सैनिक' और 'मजदूर' अिन के शरीर की रचना अुनके काम के अनुकूल रहती है। 'सैनिक' और 'मजदूर' को अपने कर्तव्य की पूरी जानकारी है। और अुसे वह सावधानी से पूरा करता है 'कामगार संघ' अथवा 'मोटा मजदूर युनियन' आदि जैसी संस्थाओं की यहाँ कभी आवश्यकता महसूस नहीं होती। बस्तियों की दिनरात रक्षा करने की ज़िम्मेदारी सैनिकों की है। आँखों में तेल डालकर वे यह काम पूरा करते हैं। अिस काम में किसी किस्म का आलस्य नहीं या आगा पिछा नहीं। आपत्ति के आसार नजर आते ही यह सैनिक अपना कवचयुक्त मस्तक भीटे की दीवार पर पटक कर अेक प्रकारकी ध्वनि करते हैं और भीटे में रहनेवाले को संकट की सूचना देते हैं। यह सूचना मिलते ही भीटे की सारी दीमकें मुसीबत का सामना करने को तत्पर हो जाती हैं। सैनिकों में दो विभाग हैं। पहले विभाग में आनेवाले सैनिकों का सिर बड़ा रहता है और अुसपर मोटा अभेद्य कवच रहता है। अुनका मुँह बड़ा तथा नुकीला रहता है। दूसरे विभाग के सैनिकों का सिर बहुत बड़ा नहीं होता और अुनका बड़ा तीक्ष्ण होकर छोटा रहता है। लेकिन दूसरे प्रकार के अिन सैनिकों के सिर पर अेक नली

रहती है। अिस नली के द्वारा वे अपने दुश्मनों पर अेक किस्म के चिकट जहरिले रस की वर्षा कर अुसका समूचा नाश करते हैं। अिन सैनिकों के जत्थे को 'पिचकारी जत्था' यह नाम विभूषित हो सकता है। गत् महायुद्ध में जपानी फौज में अिस तरह 'आत्म हत्या जत्थे' रहते थे अुसी तरह के जत्थे दीमकों के राज्य में भी रहते हैं। दीमकों जैसे नाचीज कीडों से जापानियों की अिन जत्थों की कल्पना तो नहीं सूझी? अेक अिंच भी पीछे न हटने की प्रवृत्ति और शत्रु को अेक कदम भी आगे न बढ़ने देनेकी दृढ़ता से दीमक-राज्य के यह सैनिक सदा झूझते रहते हैं। लाल चिटियाँ दीमकों की जानी दुश्मन हैं।

मजदूर दीमकों के पास सैनिक दीमको जैसा अपनी हिफाजतका कोअी हथियार नहीं। सब मजदूर निहत्थे रहते हैं। सैनिकों की आँखें बहुत छोटी होती हैं। परन्तु मजदूरों को वह भी नहीं रहती। यदि हुअी भी तो अुनका कोअी अुपयोग नहीं होता। अिन मजदूरों को बस्ती का सब काम करना पड़ता हैं: गृह-निर्माण का काम, बाग का काम, अन्नसंग्रह, रानी से पैदा हुअे अंडों की अिकट्ठा करना, अुन अंडों से तयार होनेवाले कीटक-बच्चों की देखमाल करना, सैनिकों और अन्य लोगों को भोजन देना, राजपरिवार की टहल करना आदि काम अिन मजदूरों को सौंपे गये हैं। अिन कामों के लिअे मजदूरों की विभक्त टोलियाँ रहती हैं। प्रत्येक टोली अपना नियोजित और सौंपा गया काम करती हैं। भीटे के सारे हिस्सोंका निर्माण अिन्हीं मजदूर वर्ग में रहनेवाले कारिगरों द्वारा होता हैं। भीटे की मरम्मत और लिपापोती भी वेही करते हैं। भीटे को यदि किसी जगहसे दरार पड़ गयी तो वह भी अिनकी आंखों से छूट नहीं सकती मिस्त्रियों की टोलियोंमें से अेक टोली तत्क्षण अुस स्थानपर जाकर सैनिकों की निगरानी में वह दरार तुरंत बराबर कर देती है।

दीमक शाकाहारी होती है। जिन वस्तुओं को हम भोजन की निगाह से जरा भी कीमत नहीं देते अैसा लकडा, पड़ोंकी छाल, पत्ते, घास सूखे पत्ते, कागज आदि पदार्थ अुनकी भोज्य सामग्री है। संक्षेप में यही कि धातु के वस्तुओं के अलावा सब चीजें अुनके भोजन में सम्मिलित होती हैं। दीमक प्रकाश सह नहीं सकती। अतः मजदूर भोजन संचय के लिअे रातको ही बाहर निकलते हैं। भोजन का सारा प्रबन्ध भीटे के भीतर रहता है। भीटे के अेक कोने में बाग तैयार कर अुस में मजदूर कुकुरमुत्ते के पौंधे अुगाते हैं। अिन उद्यानों को कुकुरमुत्तों की बाग कहते हैं। अिन कुकुरमुत्तों का शिशु दीमकों के लिअे भोजन की तरह अुपयोग होता है। कुकुरमुत्तों के बाग की हिफाजत अुस को खाद-पानी देने के लिअे 'माली जत्थे' की नियुक्ति की जाती है। बाग के हिस्से में से अेक तंग सुरंग तैयार की जाती है। और यह सुरंग जमीन के अुस हिस्से से जोड़ दी जाती है जहाँ पानी होता है। प्रायः अिस तँग सुरंग की लम्बाई सत्तर से सौ फूट तक होती है। अिस जल-केन्द्र से माली काम करनेवाली मजदूर-दीमक अपने मुँह में बूँद बूँद पानी भर-भर कर बाग को सींचती रहती है। अुनका

यह कार्य रात-दिन जारी रहता है। करीब सत्तर फीट गहराअी में रहनेवाले जल-केन्द्र से अेक बूँद मुँहमें लाकर बाग को सींचने का यह अुद्योग कितना महान् है। लेकिन किसी प्रकार का गरूर न रखते हुअे मजदूर यह काम करते रहते हैं। अिन कीड़ों की अविरत श्रम-साधना की जितनी प्रशंसा करे, वह अल्प होगी।

बस्ती को साफ-सुथरा रखनेका काम अेक मजदूर जत्था करता है। जब तक बस्तीका कोना-कोना स्वच्छ नजर आयेगा। कहीं गंदगी नहीं, कूड़ा-कर्कट नहीं। रानी का महल दर्पण की तरह चमकिला रहता है। रानी के स्वास्थ्य की जाँच--पड़ताल और संभाल के लिअे अेक जत्थेकी नियुक्ति की जाती है। शिशुओं का लालन--पालन करनेके लिअे बस्ती में 'शिशु-गृह' भी होता है। यहाँ परिचारिकाअें इन बच्चोंकी बड़ी जतन से परवरिश कर उन्हें छोट से बड़ा बनाती है।

रानीका काम सिर्फ अंडे देना। इन अंडों से ही राज्य की सारी प्रजा—पंखवाली दीमक सैनिक, मजदूर आदि पैदा होते हैं। अंडे के बाहर पड़नेपर सब बच्चे एक से दिखते हैं। फिर हर वर्ग में रहने वाले व्यक्ति के शरीर की भिन्नता इन में कब पैदा होती है ? कुछ अंडों में से मजदूर, कुछ में से सैनिक और कुछ में से पंखवाली दीमक ही क्यों पैदा होती हैं ? सब अंडों में से एक बार सैनिक, दूसरी बार केवल मजदूर अथवा पंखवाली दीमक ही क्यों नहीं पैदा हो सकती ? इस तरह के बहुत से प्रश्न इन कीड़ों के जीवन निरांक्षण करनेके बाद हमारे सम्मुख उपस्थित होते हैं। लेकिन उनके इस जन्मके रहस्य का पता अभी तक मनुष्य को नहीं लग सका है। प्रजा-निर्माण के बाबत और एक बड़ा अद्भुत प्रसार हमें देखनेको मिलता है। अंडों की देखभाल और बच्चोंके पालन-पोषण का कार्य जिनके जिम्मे होता है उन मजदूरों को प्रत्येक विभागमें कितनी नयीं दीमकों की जरूरत है, इसका लेखा जोखा हवा मालूम रहता है। और उस जरूरत के मुताबिक प्रत्येक वर्ग के लिए ठीक उतनी ही दीमकें पैदा की जाती हैं। यह सब बातें इन दीमकों द्वारा कैसे संचालित होती है, यह गूढ़तम रहस्य मनुष्य आजतक नहीं समझ पाया है। कुछ वैज्ञानिकों का यह मत हैं कि शिशुओंका पालन करते वक्त उनके भोजनमें बारबार परिवर्तन कर प्रत्येक समूह की शरीर रचना में अभिव्यक्त होनेवाला भेद 'परिचारिकाएँ' निर्माण करती होंगी। परन्तु इस राय को समर्थन प्राप्त नहीं हुआ है। अभीतक इन बातों का रहस्य अप्रकट है।

गर्म देशों में दीमक मिलती है। इन देशों के लोगोंको दीमक के ध्वंसकारी-उपद्रवकी जानकारी नये सिरसे देनेकी कोअी जरूरत नहीं है। घरका लकड़ेका सामान, अलमारियाँ, कुर्सियाँ, किताबें आदिका हमारे देखते—देखते

यह दीमक भूसा बना देती है। इन कीड़ोंका यह सत्यानाशी कार्य देखकर बहुत बार हम सोचते हैं कि यहकीड़े नष्ट क्यों नहीं होते ? इनकी क्या जरूरत है ? कुछ जीवोंकी जातियाँ पृथ्वीकी गोदमें कुछ कालतक जीवित रहकर सदाके लिए लुप्त हो गयी हैं। फिर यह अत्याचारी कीड़े युगों-युगोंसे इस धरतीपर कैसे जिन्दा रहे हैं ? नियति की उलझी परिपाटी में यह कीड़े कोअी खास काम सम्पन्न कर रहे हैं क्या ? इन तरहके प्रश्नोंका उचित उत्तर मनुष्य के पास आज तो नहीं है। इस बाबत इतना ही कहा जा सकता है कि सृष्टिने उनके हिस्से में कोअी महत्व का कार्य सौंपा होगा ही। वह महत्व का कार्य हमारी बुद्धि की समझ के बाहर का है। यदि कुदरत की व्यवस्था में उनकी कोई जरूरत नहीं होती तो निष्ठुर कुदरत ने जरा भी दया न दिखलाते हुए उनको कभी का मिटा दिया होता।



अनुवादक—'निर्भय'



कोअी युवती अपने मन की भिन्न भिन्न स्थितियाँ अपनी सखीसे निवेदित करती है :

जब पहली मर्तबा मैं अपने पतिसे मिली तब वह कान्त (पति) है या कृतान्त (यम) है जिसमें भेद करना मुश्किल था। दो-तीन मास बीतने पर वह अपने जैसाही अेक मनुष्य है अैसा विश्वास होने लगा। अुपरान्त वह मेरा प्रिय है और मैं अुसकी प्रिया हूँ...यह तथ्य हौले हौले मेरी बुद्धिने मान लिया। और जैसे जैसे साल समाप्त होने आया तब तो वह सारे त्रिभुवन के चौदहों भुवनों में भरा-भरासा सत्य मुझे दिखाअी देने लगा।





म धु – क ल श

[स्व. श्री. ताम्बे की 'मधु-घट' शीर्षक रचना का भावानुवाद]

मधु माँग न, मेरे मधुर मीत !
मधु के दिन मेरे गए बीत !

मैंने भी मधु के गीत रचे !
तेरे मन की मधुशाला में,
यदि हों मेरे कुछ गीत बचे—
तो अुन गीतों के कारण ही
कुछ और निभाले प्रीत-रीत !

मधु कहाँ ? यहाँ गंगाजल है !
प्रभु के चरणों में रखने को
जीवन का पका हुआ फल है !
मन हार चुका मधुसूदन को,
मैं भूल चुका मधुभरे गीत !

वह गुप-चुप प्रेम-भरी बातें,
यह मुरझाया मन भूल चुका
वन-कुंजों की गुँजित रातें !
मधु-कलशों के छलकाने की
हो गई मधुर वेला व्यतीत !

ढलता है रे, दिन ढलता है !
अंधियारी जीवन-संध्या में
डगमग पग नहीं संभलता है !
अब तो उस पार लगीं आँखें,
जग के रंग-रस से नहीं प्रीत !

मधु माँग न, मेरे मधुर मीत !
मधु के दिन मेरे गए बीत !

— नरेंद्र शर्मा





अनुक्रमणिका

जो
समाज की निगाह में आवारा,
मेरी निगाहमें बेरहम,
कानून की निगाहमें गुनहगार
माना गया
वह—



— एस्. एम्. जोशी

"चलिये मास्टर, आपको बुला रहे हैं।" जुम्मा वार्डर की नम्रता पूर्वक किन्तु रोआबदार आवाज आयी।

मेरी 'कैदी पुस्तक, लेकर वह सामने खड़ा था परन्तु वह कब आया यह मुझे मालूम। न हो सका सबेरे का समय था। न मालूम कौनसी पुस्तक लेकर मैं वराण्डे में खड़ा उसके पन्ने पलटा रहा था। पढने के उद्देश्य से मैंने उसे लिया था परन्तु उसे अभी देख भी न पाया था।

सामने बहने वाले नल की ओर मैं ताक रहा था। विचार चक्र चल रहा था। दस वर्ष पहले मैं इसी जेल में था उस समय भी यही नल इसी जगह पर मौजूद था। नीचे वही गोल फ़र्श, वही बहने की तड तड आवाज और उड़ने वाले छींटों से आस पास कीचड, सब कुछ वैसे ही था। मेरे जीवन में भी ती कोई फर्क, कोई सुधार भला कहाँ हुआ था ? परन्तु उस मुश्किल सवाल का जबाब सोचने से पहले ही जुम्मा ने पहले मुझे चौंका दिया।

"क्या बड़े साहब आ गये ?" मैंने पूछा।

"जी हाँ।" उसने जवाब दिया।

"बहुत अच्छा।" कहकर मैं ने पाँव में चप्पल डाले और वार्डर के साथ चलने लगा।

दस वर्ष पहले मैं इस जेल में जरूर था परन्तु उस समय 'क' दर्जे का नजरबन्द।

मेरा दर्जा बढ़ गया था जिसकी वजह से अफ़सरों के बर्ताव में काफ़ी फ़र्क़ हुआ था। जेलर आदि नम्रता से पेश आते कि मुझे गुदगुदियाँ सी हो जाती थीं। परन्तु जरा गम्भीर होकर विचार करने के बाद उस में का खोकलापन मैं महसूस करने लग जाता, और जुम्मा और उसके जैसे दूसरे कैदी वार्डरों का आदर–उसमें अपना पन मुझे दिखाई देने लगता क्योंकि उस समय भी जुम्मा मुझे 'मास्टर साहब' कहकर पुकारता और आजकी तरह बड़ी नम्रता से पेश आता। मेरे सम्बन्ध में उसकी कल्पना स्वतन्त्र थी। हुकूमतने ऊपर का दर्जा मुझे देने के बावजूद भी वह बदला नहीं यद्यपि अफ़सरों की दृष्टि में अब मैं सम्मान और मरतबे का पात्र हो गया था।

मुझे सब से बडे अफ़सर के सामने खड़ा किया जानेवाला था। जेल के कानून के मुताबिक





अनुक्रमणिका

* * *

साथी अेस् अेम्. जोशी : स्वदेश के राजनैतिक मसलों के बारें में जितने दत्तचित्त है अुसी भाँति जीवनकी संवेदनाओं को लिपिबद्ध करने के प्रति सजग है। आर्थिक विषमताओं से अुत्पीडित वर्तमान शोषित वर्गकी करुणा आपकी साहित्य सर्जना की आधार भूत शिला है। जब साहित्यकार के पास अनुभूतिकी सचाई की शक्ति विद्यमान होती है तब अुसकी रचना अनायास ही सुन्दरता का परिधान धारण करती है, सम्भवतः जोशी जी की कहानियोंकी यही सही परख होगी।

मैंने गुनाह किया था। 'अे' क्लास का नजरबन्द होने की हैसियत से मैं बीड़ी आदि पी सकता था अुसका लाभ अुठा कर मैं ने अेक वॉर्डर को बीड़ियाँ लाकर दी थी।

जिस समय बड़े साहब के दरबार में मैं आ पहुँचा तो साहब बहादुर नीचे झुक कर कुछ लिख रहे थे। अलबत्ता दूसरे अफसर भी खड़े ही थे। मुझे भी खड़ा रहना पड़ा। 'अे' क्लासके कैदियों को बैठने के लिअे कुरसियाँ दी जाती थी परन्तु आज मैं गुनहगार होने की वजह से मुझे कुर्सी नहीं दी गअी। रोज की तरह साहब ने आज गुड मॉर्निंग भी नहीं किया।

मेरे आने की आहट तो अुन्हें जरूर लगी होगी क्योंकि सिर अूपर अुठाकर मेरी ओर देखते हुअे अुन्होंने कहा—

"क्यों मिस्टर... ...यह क्या बात है! आप को दी हुअी सुविधाओंका आप ने दुरुपयोग किया है। आप जैसे प्रतिष्ठित 'अ' वर्गीय राजबन्दियों को अैसा बर्ताव करना शोभा नहीं देता"।

"जी, मैं समझ सकता हूँ, मेरी प्रतिष्ठा को क्या शोभा देता है और क्या नहीं अिसकी चर्चा करने के लिये मुझे यहाँ नहीं बुलाया गया। नियम का भंग करने के कारण मुझे यहाँ लाया गया है। इस लिए तात्विक चर्चा में न जाते हुअे आपके क़ानून के मुताबिक़ जो ठीक नज़र आअे वह कीजिए"। मैंने बड़ी शान्ति से कहा।

"यह भी कोअी बात है? आप एक विशेष उद्देश्य के लिए और एक महान नेता की आज्ञानुसार अपना कार्य कर रहे हैं। आपके इस कृत्य का क्या महात्मा गांधी भी समर्थन कर सकेंगे?"

ब्रिटिश सरकार की गुलामी करते हुए जिसकी जिन्दगी बीती, जिसने अनेक देशभक्तोंकी अवमानित किया तकलिफें दीं, वह अफ़सर सत्य अहिंसा के पाठ पढ़ाने का प्रयत्न करें इसका मुझे आश्चर्य हुआ और गुस्सा भी आया। मैं ने कहा—

"गान्धीजी का लक्ष्य क्या हैं और वे किस बात का समर्थन करेंगे आदि सम्बन्ध में आप कुछ न कहें तो बेहत्तर है। क्यों कि वह आपका अधिकार नहीं और मैं समझता हूँ वह मेरा भी नहीं। आप अपने कर्तव्य का पालन कीजिए।"

"क्या आप यह समझते हैं कि आपसे बिल्कुल गलती भी नहीं हुअी?" किसी क़दर चिढ़कर, गुस्से से अुन्होंने सवाल किया।

"वैसा मैंने कब कहा। मेरे कहनेका का मतलब केवल अितनाही है कि मुझे अपनी सफाअी आप के सामने बयान करने आवश्यकता मालूम नहीं होती। जिनकी न्याय-बुद्धि पर मेरी श्रद्धा है अुनके सामने यथा समय मैं अपना अहवाल पेश करूँगा। और बड़ी खुशीसे अुन का निर्णय मान्य करूगा। अुस समय तक आप ठहर जाँअें-यह तो मैं नहीं कहता। आपके क़ानून के मुताबिक़ जो भी सजा होगी वह आप मुझे दीजिअे यही मुझे कहना है।" मैंने कहा।

मेरे अिस विचित्र बर्ताव से साहब आगबबूला हो गया।

मेरे खत भेजने और मुलाक़ात के सारे हक़ दो महीने तक छीन लिअे गये। यही मेरे लिअे सजा थी। बाहर लौटते समय मैं जाहिरा हँस रहा था लेकिन मेरा मन बड़ा ही प्रक्षुब्ध हो गया था।

लिखाअी, पढ़ाअी तो क्या, समाचार पत्रों की ओर भी मेरा ध्यान नहीं लगता। अपनी कफियत जनता की अदालत के सामने मैं पेश करूँगा यह कहकर मैंने छुटकेरा पा लिया था। आज अुस सम्बन्ध में विचार करने की आवश्यकता नहीं है, सो मैं समझता था। परन्तु वह सारा भ्रम था। कल वापस आते समय ही वह अदालत मेरे मनःचक्षु के सामने नजर आने लगी थी और अपनी सफाअी के सिलसिले में ज़रूरी बातें जमा करने में मेरे मन की दौड़ धूप शुरू हो गअी थी।

मेरे मन में बापू वार्डर का विचार आगया, मेरी सजा तो बिल्कुल मामूली थी। तीन माहों की खत-मुलाक़ात-बन्दी तो कुछ भी नहीं। परन्तु अुसका तो पगड़ी पट्टा छीन लिया गया था। अुसे अभी सात वर्ष जेल में बिताने थे। वार्डर की पगड़ी मिली अुस अवसरपर अुसे कितना आनन्द हुआ था। वार्डर को गेहूँ की रोटी मिलती थी अिसके अलावा शारीरिक मेहनत का काम भी अुसे करना न पड़ता। कैदियोंकी देख भाल करना, यही अुसका काम और जिसके लिअे मासिक आठ आने तनख्वाह। दूसरे कैदियों की अपेक्षा ज़्यादा तौरपर अुधर अिधर घूमने-फिरने की भी अुसे अधिक सुविधा और अवसर मिलता हैं। परन्तु अब अुसकी सारी सुविधाएँ छीन ली गअी थी। अब वह फिरसे अेक मामूली कैदी था। वार्डर का फिरसे कैदी बनना कितना बड़ा अपमान, कितनी बड़ी सजा। मैं अुसके सम्बन्ध में विचार करने लगा। मेरी और अुसकी पहली मुलाक़ात हुअी तबसे सिनेमा की तरह सारे चित्र मेरी आँखों के सामने घूमने लगे।

अब की बार जब मैं जेल आया अुस समय रात हो चुकी थी, सारे

कैदी बन्द हो चुके थे। मुझे मेरी कोठी में पहुँचा कर दरवाजे का अधिकारी वापस चला गया और मैं वैस ही सो गया। दूसरे दिन सवेरे मेरी, और बापू की जान पहचान हो गअी। मेरे अहाते का वही वॉर्डर था। जब मेरी चीजों की अेण्टरी के लिये मुझे दफ्तर में बुलाया गया तो बापू ने मुझे सूचित किया—"आप से पूछा जायगा कि बीडी पीते हो–जरूर 'हाँ' कहना।"

"ओह्! अच्छा!! अैसा ही कहूँगा, अच्छा हुआ तुमने पहले ही जो बता दिया" मैंने कहा।

अुस की वह सूचना सचमुच समयोचित और अुपयुक्त थी। धूम्र-पान करने की मेरी आदत नहीं थी। और कभी मौक़ा आया तो सिगरेट पीता हूँ। यदि पहले ही कह देता कि मैं बीड़ी नहीं पीता, तो कभी बीड़ी आदि मँगा नहीं सकता था। और फिर बापू जैसे लोगों को मेरे 'अ' वर्ग से क्या फ़ायदा? अुस की अिस दूरन्देशी पर मुझे आश्चर्य हुआ।

धीरे धीरे मेरी और अुस की दोस्ती जम गअी। जीवन की हर घटना साफ तौर पर अुसने बता दी। अब वह मेरे सामने बिलकुल खुल गया था।

वह अेक 'रामोशी' था। विजापूर की तरफ़ का निवासी। बम्बई के जेब कतरों की तरह मैंने चोरी नहीं की बल्कि तडीपार होने की वजह से अुसे जेल आना पड़ा है अैसा अुसने नहीं कहा। बल्कि अनेक चोरियाँ और डाके डाले अिसे स्पष्ट रूप से अुसने कबूल किया। अिस समय भी अुसे डाका डालने के अपराध में सजा हो गयी थी! परंतु इस समय सजा के सिवा और किसी वस्तु का उसे लाभ नहीं हुआ था! उसने वह सारी हक़ीकत पूरे तफसील से मुझे सुनाई थी।

बिल्कुल आधी रात के समय उसकी टोली ने एक गाँव पर डाका डाला, रायफल बन्दूक़ जैसे नये ज़माने के हाथियार अुनके पास नहीं थे। भाले बरछियाँ और गुलेल यही अुन के हथियार और साधन थे।

पहले गुलेल की बौछार किस तरह की जाती है और सॉंय सॉंय की आवाज करते हुए जब पत्थरों की वर्षा...शुरू होती है, तो गाँववालों में कैसी घबराहट हो जाती है उसका वर्णन वह बड़े ही रोचक ढंग से करता।

वे गाँव में घुसे और एक साहूकार की कोठी पर छापा मारा। साहूकार भी बड़े ही मजबूत दिल का आदमी था। ऐसे बीसियों प्रसंग अुसने अपने जीवन में देखे थे।

ऐसे प्रसंग तो आ ही जाते हैं इसका खयाल अच्छी तरह से वह करता था। गटर के कीड़े गटर ही में पलते हैं अुन्हें वह विष नुक़सान नहीं पहुँचाता।

बापू ने जब एक चाबुक लगाया तो वह जमीन पर तलमलाने और जानवर की तरह चिल्लाने लगा। परंतु पूँजी कहाँ है यह बताने से वह साफ इन्कार करता रहा। "मेरे भाइयो, भगवान की क़सम मेरे पास कुछ भी नहीं। जो कुछ माया पूंजी है वह सब अुस ट्रंक में है, वह लेकर चले जाओ मगर भगवान के लिए मुझे न मारो।" वह कहने लगा। परन्तु अुस ट्रंक में चालीस पचास रुपियों से ज्यादा कुछ भी न था।

यह सब करने में बहुत सा समय बीत गया। बापू के दुर्भाग्य से

अुस रात अेक पूलिस दरोगा अुसी गांव में आया था। परन्तु वह अकेला क्या कर सकता था? डाके का समाचार सुनकर वह भी घबरा गया था गाँववाले बाहर निकलने से डरते थे और अुसे। भी अकेला निकलने की हिम्मत न होती थी। आखिरकार अुसने यूँ ही बन्दूक चलाअी। लेकिन यह आवाज सुनकर गांववाले तो और भी घबराअे। वे समझे कि डाकुओं के पास बन्दूकें-रायफल भी हैं। वे ही बन्दूकें चला हैं। परन्तु डाकू बन्दूक की आवाज सुनकर घबराअे। वे समझे कि पुलिस पार्टी आ पहुँची। वे नौ दो ग्यारह हो गये।

जब वे गाँव के बाहर निकले तो पौ फँट रही थी। थोड़ासा चलने के बाद देखते हैं कि अेक गड़रिया भेंड़ें लेकर आ रहा हैं। रात का नाकामी स बापू का दिमाग अुचक गया था। अुसके दिमाग के कीड़े ने अुसको काटा। अुसने अेक छोटीसी भेंड अुठाअी और कन्धेपर रखकर चलता बना। गड़रिया चीखा चिल्लाया परन्तु अिसके सामने अुसकी कुछ भी न चली। आखिर में यही भेंड अुसे ले डूबी और वह पकड़ा गया और डाके की सारी हकीकत खुल गअी।

अपने डाकोंका बर्णन करते हुअे बापू बड़े मौज में आ जाता। अुस समय वह सारी दुनिया को भूल बैठता। बहादुरी और शौर्य की लकीरें अुसके चहेरे पर प्रकट होतीं और पेशानी पर की दो रगें अुभर आतीं। अुसका वर्णन सुनने के बाद जान पड़ता था कि सारे गुनाहों में डाका ही सबसे मुश्किल और कठिन है। अुसके लिअे हिम्मत और बहादुरी की जरूरत है यह मुझे मानना पड़ता। अुसके भाव और जोश को देखकर मेरा मरा हुआ मन और सोया हुआ शौर्य अेक क्षण के लिअे अुठता और सोचने लगता कि अेक बार स्वयं भी यह अनुभव कर के देख लें।

बापू वैसे साधा भोला और बुद्धि के लिहाज से तो बिलकुल बुद्दू था। अुसकी अुमर लगभग सताअीस-अठाअीस वर्ष की होगी। शरीर से मज़बूत, मझोला क़द, गोल चेहरा, नाक चपटी, आंखें छोटीं, परन्तु रंग लाल-लाल गोरा था। अुसे देखने के बाद मुझे अपने घर की पुरानी कुल्हाड़ी की याद आ जाती। हम अुसे 'ढोकन' कहते थे। अुसे सान तो तो बिल्कुल न थी। जब दूसरी तेज़ कुल्हाड़ी किसी लकड़ी को थोडासा सुराख या चीर डालती तो फिर कुल्हाड़ी अपना काम करती और बड़ी से बड़ी लकड़ी के टुकड़े-टुकड़े कर डालती। बुद्धि से बापू बुद्दू जरूर था पर निरा मूर्ख भी नहीं था।

इसका अनुभव मुझे बहुत जल्द ही हो गया। खुद का फ़ायदा वह बराबर समझता था। युद्ध में जख्मियों के अुपयोग में लाने के लिए बाहर खून जमा करने का प्रयत्न जारीथा। अब वह प्रयत्न जेलके भीतर भी शुरू हो गया था। जो कैदी खून देगा अुसे सात रोज की मुआफी और गेहूँ की रोटी देनेका लालच देकर जेल का डॉक्टर ब्लड बँक के लिए खून जमा कर रहा था। एक बार यह काम चल ही रहा था कि बापू का मज़ाक करने के हेतु से दूसरे वार्डरने अुससे कहा–" बापू तू अच्छा खासा हट्टा कट्टा है तू क्यों नहीं देता खून?" यह सुनकर दूसरे कैदी भी खिलखिलाकर हँसने लगे। क्यों कि बापू सबके मज़ाक का एक विषय था।

डॉक्टरने सिर अुठाकर बापूकी ओर देखा और कहने लगा, " हाँ बापू, तू देता है अपना खून?"

" माफ़ी कितनी दोगे?" बापू ने पूछा।

" दूसरों को देता हूँ अुतनी दूँगा, ज़्यादहसे ज्यादह तुझे दुगनी दूँगा और एक महिने तक रत्तल दूध भी दूंगा," डाक्टरने लालच दिखाया।

" मेरा खून लेंगे और केवल पन्दरह दिन की माफ़ी? तीन महिने देंगे?" बापूने घूरकर पूछा—

" तेरे खून की इतनी कीमत? दूसरे कैदी सात दिनोंकी मुआफी पर देते हैं और तुझे तीन महिने कौन देगा?" डाक्टर ने अुलटा सवाल किया।

" दूसरे देनेवाले पागल होंगे!। मनुष्य का खून नाले में बहनेवाला पानी जो नहीं? हमारे खून की कोई कीमत नहीं है तो फिर भैंसों का खून क्यों नहीं लेते?"

बापू की यह युक्ति कारगर हुई। सारे कैदी हँसने लगे परन्तु अबकी बार मज़ाक स नहीं बल्कि गौरव की भावना से।

जेल की भाषा सर्वसाधारण हिंदी हो गई है। पहले गोरे साहब अफ़सर हुआ करते थे अुन्हें मराठी क्यों भला आती? अनपढ कैदियों से बेतूकी फूटी हिन्दी में ही बात चीत करत। फिर साहब की हिन्दी और बापू की हिन्दी में मुकाबला शुरू हो जाता। सुननेवालों का अच्छा खासा मनोरंजन हो जाता अुससे। " क्या माँगटा हाय, टुमम्हुट हाय, वग़ैरह" साहब कहता और कैदी कहता " खालीपिली खटलेवर आणलाय साब।" बापू की हिन्दी सुनकर तो हँसी के मारे मेरा दम निकल जाता। " जो का दौड़त दौड़त आया की फाटक परसे एकदम गटारांत कुद्या"। " तुम खटलेपर कायकु उभा करताय हमकु!" इस प्रकार के वाक्यों की वर्षा शुरू हो जाता।

अपने से कुछ न कुछ गलती हो रही है इसका अुसे कभी भूल से भी खयाल न आता था। वह तो अपनी ही धुन में मगन रहता। इस स्थिति में अुस के भाव अुसी तरह अुस के चलने फिरने में भी अेक प्रकार आत्म संभावना की भावना खास तौर से प्रकट होती थी।

पाप-पुण्य-भलाअी-बुराअी, के सम्बन्ध में भी अुस की कल्पनाअें मौलिक थी, अैसा मेरा ख्याल है। सौंदर्य के सम्बन्ध में तो वह दूसरे

की बिलकुल परवाह नहीं करता था। अुसकी दुनिया ही निराली थी वह जेल के वातावरण में रहता था। फिर भी अुसका मन अुस के साथी स्नेहियों के साथ घूमता होगा अैसा जान पड़ता था। वह वार्डर था। वार्डर की पोशाक दूसरे कैदियों से निराली रोआबदार और चुस्त होती है। ठीक पहननेसे वह और भी आकर्षक बनाओ जा सकती है। दूसरे कैदी बाल नहीं रख सकते परन्तु वार्डर को अुस की इजाजत है। दूसरे वार्डर फेशनेबल बाल रखकर अूपर पगड़ी पहनते थे। बापू भी बाल रखता था परन्तु अुसका तरीका विचित्र था। अुस की पेशानी छोटी थी। वह अिस के दोनों सिरों से बाल मुँड़वा लेता था, जिसकी वजह से दोनों ओर खम्बायत की दो खड़ियाँ दिखाओ देती थी। हमें यह विचित्र मालूम होता। परन्तु वह जब मेरे आओने में अपना चेहरा देखता तो बहुत ही प्रसन्न होता और देर तक टकटकी बाँधे हुअे अपने चेहरे को देखता ही रहता।

"बापू तेरी शादी हो गओ?" मैंने अेक बार यूँही अुससे सवाल किया। तब अुसने अपने विवाह के सम्बन्ध में मुझे सब कुछ बता दिया। सजा होने से लगभग तीन वर्ष पहले अुसकी शादी हो चुकी थी। लेकिन शादी होने के साथ ही बहू को अुसने अपने मैके जो भेज दिया तो फिर ला ही न सका। क्यों कि अुसे अपनी सास पर गुस्सा था। कुछ जमीन अपने दामाद के नामपर कर देने का शादीसे पहले अुसने वचन दिया था। और शादी होने के बाद अुसके बारेमें टाल मटौल करने लगी। अैसी बातों से बापू को बड़ी चिढ़ थी। न वह किसी को फँसाना जानता था और किसीकी फंसानेकी टेढी चाल वह सहन कर सकता था। जब अुसकी बहू बडी हो गओ तो सास ने कहा "बापू, जाने दे अुस बात को तुम्हारे पास भगवान की कृपा से बहुत जमीन हैं। अैसी, हजार जमीनें तुम खरीद सकते हो।" परन्तु यह बात बापू की समझ में न आई। मैं ने भी अुसे समझाने की कोशिश की लकिन अुसमें सफल न हो सका।

अुसके माँ के सम्बन्ध में मैं सोचा करता अुस बेचारी का क्या हाल होगा? इकलौता एक लड़का। छोटे से बड़ा किया और जब कि अुसकी अुम्मीदों के बहार के दिन थे कि बापू को सात वर्ष की सजा हो गओ। शादी करके दी, मगर बहू के साथ चार दिन भी नहीं बिताए। कम से कम अुस बुढिया को खत भेजता तो भी अुस बेचारी को खुशी होती, ... जालिम ने चार वर्ष में चार भी शब्द तो अुसे लिख कर भेजे होते। मुझे लगता, बापू का मन कठोर है। अुस के दिल में अपनी माँ से ममता नहीं।

मैं प्रति दिन अुसे सात आठ बीड़ियाँ दिया करता था। मैं स्वयं अुसके सामने सिगरेट के कश लिया करता–तो अुसका मन ललचाता नहीं होगा? मैं विचार करने लगता। मैं अुसे सिगरेट नहीं देता, मेरा खयाल था अुसे बीड़ी ही पसन्द होगी। असल में यह खयाल मेरे लिअे फायदमन्द भी था। महँगे सिगरेट मैं अुसे दे भी नहीं सकता था। अुस के सामने पैसों का सवाल नहीं था। यदि इजाजत होती तो वह अपनी जेब के पैसों से अिस से बढिया सिगरेट का प्रबन्ध कर सकता था। लेकिन अुसे इजाजत नहीं थी अिसीलिअे तो अुसे हम जैसों के सामने गिड़गिड़ाना पड़ता था। हाथ फैलाना पड़ता था। परन्तु अेक बात मेरी समझ में नहीं आती। मैं अुसे रोज बीड़ियाँ देता पर अुसे मैंने कभी अेक जगह शांति से बैठकर खुशी से बीड़ी के कश लेते हुअे नहीं देखा। कुछ दिनों तक मैं यह समझता था कि मेरे सामने बीड़ी पीने को शायद लाजता होगा। वैसे जल्दी-जल्दी में और घबराहट से बीड़ी पीने में मजा भी नहीं आता। आराम के साथ और पैर फैला कर कश लेने में ही धूम्रपान का सही लुफ है। पर मेरा यह तर्क भी कुछ समय के बाद गलत साबित हुआ। क्यों कि थोडे ही दिनों में हम अेक दूसरे के अितने नजदीक आअे कि अब हम में कोओ पर्दा ही न था; फिर भी मैंने अुसे अपने सामने बीड़ा पीते नहीं देखा था—

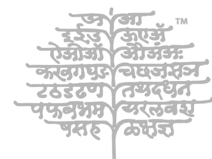
अेक दिन अचानक यह समस्या हल हो गयी। सोमवार का दिन था। जिन वस्तुओं की जरूरत होती अुनका आर्डर अुसी दिन हमें देना था। मैं नहा धोकर अेक पुस्तक लेकर बैठा था। बापू हौले से मेरे कमरे में आया। शेल्फ पर रखा हुआ आओना अुठा कर कुछ देर वह अपना चेहरा देखता रहा। मूछों पर ताव देकर अुन्हें पेंच देने का प्रयत्न करने लगा। फिर आओना अपनी जगह पर रखते हुअे अुसने मुझसे कहा —

"मास्टरजी, आज अपने लिअे अेक रुपये की बीडियाँ मँगाना" यह सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ।

"हर दिन जो देता हूँ वे काफ़ी नहीं होती? और तुझे बीड़ी पीते हुअे तो मैं ने अेक बार भी नहीं देखा है।"

"मुझे नहीं चाहिए"। अुसने अुत्तर दिया।

"यदि तुझे नहीं चाहिअे तो फिर दूसरों को बाँटने के लिअे नहीं मिल सकती। मेरे पास अितने पैसे नहीं हैं"। मैं ने जरा नाराज होकर कहा।





अनुक्रमणिका

अनुक्रमणिका





" आप खर्च न कीजिअे। मैं देता हूँ बीड़ियों का रुपया "। डरते डरते अुस ने कहा।

अुस के शब्द सुनकर मेरे दिमाग में प्रकाश पड़ा। मैं चौंका। बापू बीडियाँ लेकर वह दूसरे कैदियों को बेचा करता था। अब वह बडे पैमाने पर व्योपार करना चाहता था। और अुस के अिस व्यापार में मैं अुसकी सहायता करूँ यह अुसकी मन्शा थी। मुझे अुसपर गुस्सा आ गया। मेरी सादगी, भलमनसी और अच्छाई से बापू अिस तरह फायदा अुठा रहा था। और मुझसे स्नेह सम्बन्ध निभाने का अुसका यह अेक दाँव तो नहीं था? मुझे अुसपर गुस्सा ही नहीं बल्कि नफरत हुअी।

"बापू, यह मुझसे नहीं होगा। बापू, मुझे तू अिस पचड़े में न डाल"। मैं ने जरा अस्नेहकी भावना से कहा और पढ़ने के बहाने पुस्तक के पन्ने पर नजर गढ़ा दी।

वह खिन्न हो गया परन्तु बाहर से हँसता हुआ चेहरा बनाकर वहाँ से चला गया।

मैंने निश्चय कर लिया कि अब कभी भी बापू को बीडियाँ नहीं दूँगा। अेक दो दिन वह भी मेरे पास नहीं आया। मगर मुझसे रहा न गया। मैं ने विचार किया खरीद कर नहीं दूँगा परन्तु पहले की तरह देने में क्या हरज है? अुसे सजा देने वाला कौन होता हूँ और वह बीडियों का क्या करता है इसका पता मुझे भी कहाँ था। तीसरे दिन मैंने स्वयं अुसे बुलाया और कहा:—

"बापू, तुझे और कअी सालों की सजा काटनी है फिर यह करतूत तू क्यों करता है? यदि अकाध समय पकड़ा गया तो पगड़ी पट्टा छीन लिया जायेगा और मिली हुअी मुआफी भी मुफ्त में खो बैठेगा।"

"अच्छा, मास्टरजी अब अैसा नहीं करूँगा।" अुसने मुझे पक्का वचन दिया।

अुस के अिस जवाब से मेरा समाधान हो गया। मैंने पहले की तरह अुसके हाथ पर बीड़ियाँ रखी और अपने काम में लग गया। मैं समझता था कि बीड़ियाँ लेकर वह चुपचाप चला जायगा पर वह वहीं खिन्न मनसे खड़ा ही रहा और हलके से कहने लगा:—

"मास्टरजी अब मैं व्यापार नहीं करूँगा मगर आप मेरा अेक काम करेंगे? मैंने अबतक दस रुपये जमा किये हैं अुन्हें आप अपने पास रखेंगे?"

दो दिन पहले अितना सब कुछ होने के बाद भी अुसका फिर अिस प्रकार का सवाल! बड़ा अचम्भा हुआ। मैं अुसकी ओर देखता ही रह गया! मैं कुछ कहनेवाला ही था कि अुसने कहना शुरू किया "ये रुपये मुझे अपनी माँ को भेजने हैं। आप अिन्हें लीजिअे और अुसे किसी तरह मिल जाएँ अिसका प्रबन्ध कीजिए। हमारे जिले में बड़ा भयानक अकाल पड़ा है और सुनता हूँ कि सैंकड़ों आदमी अुस में बे मौत मर रहे हैं। बुढ़िया को अिस समय थोडीसी मदद पहुँच जायगी।"

बापू की बातें सुनकर मैं हैरान हो गया। टेबल पर कोहनियाँ रख कर दोनों हाथों से सिर पकड़ कर मैं विचार करने लगा। किसी न किसी भावना से मेरा सारा शरीर काँपने लगा। अुससे बात तक करने की शक्ति भी मुझ में न थी। मैं एक मिनट वैसे ही बैठा। कुछ




समय पश्चात् मैं ने अुठकर अुसके कन्धे पर हाथ रखा और कहने लगा, "लाओ रुपये; मैं भेजने का प्रबन्ध करूँगा। "

यह सुनकर वह प्रसन्न हुआ। अुसका आनंदित चेहरा देख कर मुझे भी आनंद हुआ परन्तु चेहरेपर करुणा लबालब भरी थी। बापू के मन में अपनी माँ से प्रेम नहीं, अुसे अपनी तरह लगन नहीं सो मेरी समझ थी। लेकिन मैं कितनी बड़ी गलती कर रहा था। वह जेल में रह कर अकाल में फँसी हुआी अपनी माँ की केवल चिन्ताही नहीं बल्कि चार पैसे जमा करके अुसकी सहायता करने की दौड़ धूप कर रहा था।

जेल में तमाकू का व्यापार करना वे कानूनकी निगाह से गुनाह समझते थे। दूसरों के व्यसनोंपर पैसे अिकठ्ठा करके अुसे फिरसे व्यसन ही में खर्च करना कितना बुरा है? मुझे भी अुस दिन बापू पर गुस्सा आया था क्यों कि वह मुझे भी अुस चुँगुल में फँसाना चाहता था। मैं भी बेकायदा बर्ताव करूँ? अिस लिअे क्यों कि बापू तमाकू का व्यापार करें? जेलरने अिसीलिअे तो अुस रोज मुझे बातें सुनाअी और नीति के पाठ पढ़ाये? अुस की दृष्टि में मेरा बर्ताव घृणित था।

अब मुझे अुन पर हँसी आ रही थी। किसका बर्ताव निंद्य है और कौन गुनहगार? शराब और गाँजे के व्यसन पर करोड़ों रुपये कमानेवाली सरकार बापू को गुनहगार ठहरायअे? लाखों लोग भूख से तड़प तड़प कर मरें और केवल अपने स्वार्थ के लिअे यह सरकार अुन की परवाह भी न करें? अैसी सरकार बापू के व्यापार को अनैतिक करार दे? अुस का गुनाह यही है कि-अुस की माँ भूख से तड़प तड़प कर न मरे, अुसे बचाने के लिअे जेल में वह बीडियों का व्यापार करके, अुसे पैसे भेजने का वह प्रयास करता था।

हम अपने आप को प्रतिष्ठित समझनेवाले लोग बापू जैसों को हमेशा के लिअे पतित समझकर अुन के साथ घृणा रखते हैं। अुन के जीवन में भी मातृप्रेम सन्तान-प्रेम, पीड़ितों के लिअे सहानुभूति इत्यादि कोमल भावनाएँ हैं यह मानने के लिअे हम कतअी तैयार नहीं। साहुकारी, कारखानदारी, जमीनदारी अित्यादि व्यवसाय करके गरीबों का खून चूसना ओर अूपर से सौजन्यताका स्वाँग करके अकड़ना! यह अच्छा खासा न्याय है!

जेल में अफसर ने मुझसे कहा था कि आप सत्याग्रह आन्दोलन के कारण जेल आये हैं! आपको यह शोभा नहीं देता। आप लोगोंकी सरकार होने के पश्चात् क्या आप अिस बातकी अिजाजत देंगे?

मैं ने अपने दिल में कहा—हमारा राज्य होने के पश्चात् क्या किया जाय यह समय आनेपर देखा जायगा। समाचार पत्रों में छपे हुअे पीड़ित लोगों के चित्र मैं ही बापू को दिखाया करता था। हृदय को पिघलानेवाले वे चित्र देख कर अपनी माँके लिअे अुसकी परेशानी बढती जाती थी, अुस के कलेजे के टुकड़े टुकड़े हो जाते थे। परन्तु अैसा करने में अुस की मानवता नजर आती थी कि गुनहगार वृत्ति? अफसर ने हम दोनों को दोषी ठहराकर सजा तो दे दी पर सही अर्थ में गुनहगार कौन?

● ●

अनुवादक—मुहम्मद परकार



अपराध हमारा

अिस में क्या अपराध हमारा?
स्नेह – सिक्त बाती जलती है,
परस अगर 'करता अंगारा!

मिट्टी के भाजन को तुमने,
प्राण फूँक सचल बनाया!
और वासना का जल भर जब,
मानस अस्थिर तरल बनाया!
तो फिर आवेगों का प्रतिफल
है केवल दायित्व तुम्हारा!

मैंने पढ़ी ज्ञान की पोथी,
कर्म – योग – अभ्यास किया है!
किन्तु न – जाने क्यों तुमने यह,
मुझको सरल स्वभाव दिया है!
कि अवनत नयन लाज-लाल मुख,
लगता है चँदा – सा प्यारा!

'स्वजनों को ही देख युद्ध – रत
पार्थ आर्त हो कितना रोया!
और अुसी के हाथों से फिर,
पूज्य भीष्म ने जीवन खोया!
यह सब तुमको ही अभीष्ट था,
बस, निमित्त था, वह बेचारा!

व्यर्थ कर गये पाप – पुण्य का,
विश्लेषण मुनि वैशम्पायन!
व्यर्थ सिख गये ज्ञान - गर्भ में,
ज्ञानी रामायण – कृष्णायन!
जब कि डूबता मनुज तुम्ही हो,
तुम्ही जलधि हो तुम्ही किनारा!

—'कार्तिकेय'

अनुक्रमणिका

मँडरानेवाले बादलोंको देख मयूर
नाचता है,
अुठनेवाली जवानीको देख
कोई मतवाला होता है,
क्या मर्तू-?
क्या अर्जुन-?
क्या—



रगुणा

— पं. महादेवशास्त्री जोशी

पारवड़ गाँव के हनुमानजी के मंदिर में जिस रोज मर्तू का ब्याह हुआ, अुसके दूसरेही रोज, सुबह होते ही, भाअीकी बारात लेकर भागी अपने गाँव लौटी। वहाँ आने पर, सीधे अपने घर न जाकर, दूल्हा दूलहन को अपने साथ वह ब्राह्मणों के मोहल्ले में अुन्हें ले गअी। दोनों कंधो से होकर, माला के जैसे लकटने वाले अंगोछे के दोनों छोरों को हाथ में लिअे मर्तू ने 'बम्मन मोहल्ले' के, हर मकान के, हर बुजुर्ग के पैर छूये। धानी रंग की चढ़ाव की नयी चुनरी के बोझ को सम्हालते हुअे, अुसके भीतर छिपे, सुहाग की चूड़ियों से युक्त अपने हाथों को जोड़कर मर्तू के साथ ही साथ नअी दुलहन भी झुक पडी। मर्दोंने सिर्फ मुँहभर आशीष देकर ही छुट्टी पा ली लेकिन औरतों ने अपनी-२ गठरियों में जतन से रखा हुआ चोली का अेक अेक नया कपड़ा निकाल कर दुलहन के हाथ में थमा दिया। दुलहनकी गोद भरते हुअे, अुसे छेड़ने के अिरादे से अेक स्त्री बोली—

"ओ री लजवंती, जरा घूँघट हटाकर मुखड़ा तो दिखाना अपना–।" किसी के मुँहसे इन शब्दों के सुनते ही भागी झट से आगे बढ़ जाती और दुलहन की ठुड्ढी हौले से ऊपर की ओर उठा देती। उसी क्षण दो भोली भाली कजरारी आँखें टिमटिमाने लगती। उस उठती कोंपल की ओर और उसकी बगल ही में खडे मर्तू के ठूँठे पेड़ की ओर एक साथ निगाह जाते ही, देखने वाले के दिल में अेक टीस सी उठती। लेकिन जो होना था सो तो हो चुका था। अब अुसपर पछताना बेकार था। तब भी, एक मुँह फँट स्त्री से रहा न गया। भागी को ताना मारने के इरादे से उसने कहा,

"भगिया, भाभी तो बड़ी अलबेली पायी है तुमने! यह तो—बिल्कुल गुडिया सी लग रही है......"

और भागी भी लोगों के मुँह से ठीक यही कहलवाना–सुनना चाहती थी। इन्हीं शब्दों को सुनने के लिये अुसके प्राण लालायित हो अुठे थे। आँगन के एक छोर की ओर जाकर अुसने पच्च से मुँह में का भरा तमाकू थूँक दिया। हाथ की चूने की डिबिया का ढक्कन खट् से बंद किया और बटुवे को टेंट में खोंचकर, कुछ आगे की ओर बढ़ते हुए अुसने कहा—

"क्या बताअूँ तुम्हें चाची! पिछले पाँच साल में मैंने अपना खून पसीना एक कर दिया! मर्तू के ब्याह के लिये मैंने क्या–क्या नहीं

अनुक्रमणिका





पण्डित महादेवशास्त्री जोशी : संस्कृत के ही नहीं अपितु मानवी जीवन के भी नामा कोविद है। देववाणी के गम्भीर अध्ययन के कारण आपकी जीवनाभिव्यक्ति भी महासागर सी प्रशान्त अेवं घनी बनी है। गोमंतक प्रदेशके निवासी होने के नाते आपकी कहानियों में अधिकांशतया अुस प्रदेशके लोकजीवनके चित्र प्रस्तुत हुए हैं।

किया यह तो सिर्फ भगवान ही जानता हैं ! इस की उम्र के तमाम छिलगों का ब्याह होकर आज वे दो दो बचों के बाप बन बैठे हैं। लेकिन यह तो कुवाँरा का कुवाँरा ही रहा। बातचीत के लिये कोअी तैयार ही न होता था। किसी भी लड़की वाले के पास सगाई की बात छेड़ों, इसे देखकर वह नाक भौं सिकोड़ने लगता। मैं तो चाची, तंग आ गयी थी। एक रोज, पडोस में रहने वाला, वह भला आदमी......अुस निगोडेका नाम मुझसे पूछिये मुझसे कहने लगा,' भगिया, अब तो तेरे मर्तू का ब्याह मर-घट पर ही होगा ... ...काजू की लकड़ियों के संग........' सच कहती हूँ चाची, अुसकी बात सुनकर गुस्से के मारे मेरी आँखों में खून अुतर आया। अुसके सामने खड़े होकर, छाती ठोककर मैंने कहा—" मर्तू का ब्याह होगा और जरूर होगा। अगर मैंने मर्तू का ब्याह न कर दिखाया तो मैं अपने माँ बाप की बेटी ही नहीं कहलाअूँगी...और साथ ही साथ अुसका ब्याह हो जाने पर, मैं तुम्हारी मूंछे नोंच न डालूँ तो मेरे मुँह पर थूँक देना......।"

"तुम तो हरदम नाराज होती हो भगिया! लेकिन बात यह हैं कि मर्तू की अुम्र अब लगभग पैंतीस साल की हो चुकी हैं; और यह लड़की तो बारह साल से ज्यादह दिखाअी नहीं देती। मैं हैरान हूँ कि लड़की के पिता ने यह रिश्ता पसंद कैसे किया?"

"रिश्ता सेंत मेंत में थोड़ेही पसंद किया अुस मुँहझौंसे ने! दो मन धान, वीस मन मडुआ और छना छन सौ रुपये नक़द, दान दहेज में मुझ से अैंठनाअें और तब कहीं दिल ठँडा हुआ अिसके बाप का।"

"हाँ! तब तो ठीक ही है! लेकिन मैं भी तो जाँनू कि ब्याह के लिये अितना रुपया पैसा तुमने पाया कहाँसे! शायद अुस साजू बामन का ही गला काटा है तुमने!" हाथ के कंगन चूड़ियों को खनखनाते हुअे, अेक स्त्री ने बाल की खाल निकालते हुअे पूछा। अुसके मुँह से साजू बामन का नाम सुनकर भगिया के चेहरे पर पलभर अेक रक्तिम आभा दौड़ गयी।"

"और दूसरा कौन मेरी मदद करता चाची! आठों प्रहर अुसकी ही सेवा चाकरी करती हूँ,। तब आड़े वक्त में मेरी सहायता करना क्या अुनका कर्तव्य नहीं है?"

हाथ घुमा फिरा कर भागी यह सब कह रही थी। यह सब कहते हुअे अुसकी खुशी अुसके दिल में समा नहीं रही थी। आज अुसने कमाल कर दिखाया था। असंभव को संभव कर दिखाया था। आठोंपहर ताने अुलाहनों के साथ बात करने वाले मोहल्लेवालों, पड़ोसियों की नाक आज अुसने नीचे कर दिखाअी थी। क्यों न वह खुशी के मारे फूली समाअे। मर्तू तो अुसका छोटा भाअी था! लेकिन माँ बाप की मृत्यु के बाद अुसने अपने बच्चे की भाँति अुसकी परवरिश की थी। अुसके लिये दुख अुठाअे थे। अुस आदमी बनाया था। मानों मर्तू ही की खातिर, बचपन ही में बेवा बनकर भगिया अपने मैके लौट आयी थी। खानदान का चिराग अुसने आज दुबारा रोशन किया था। मर्तू के परिवार को खंडित होने वाली कोंपल पर आज अुसने जल सिंचन किया था। भगवान ने चाहा तो निकट भविष्यत् में ही वह कोंपल फूलेगी...फलेगी। अितनी तसल्ली तो अुसे आज ज़रूर हुअी।

गोधूली की बेला पर मर्तू ने अपनी दुलहन के साथ गृह-पूजा की और झोंपड़े में कदम रखा। बारह साल की सगुणा भी एक झोंपड़े का त्याग कर आज दूसरे झोंपड़े में कदम रख रही थी। फर्क यही था कि पहले झोंपड़े की दीवारें 'कारवां' की लकड़ियों से बनी थीं और इस झोंपड़ की दीवारें बनी थीं 'दिण्डा' की लकड़ी की। इस घर के लोग उसके लिये जरूर अजनबी थे लेकिन पारिवारिक दशा में कोई अंतर नहीं था। मिट्टी के बने वही चार टूटे फूटे घड़े। वही दो चार फटे पुराने चिथड़े। आगंठी से धधकता हुआ वही आँगन। और अुसके बगल में वही राख का ढेर! अन्य सभी दृष्टि से मकान बिलकुल साफ'! चूहों ने कभी नहीं चाहा कि वहाँ पर अपना बिल बनाये। चोरों ने कभी नहीं सोचा कि अुस मकान की ओर आँख उठाकर देखे—

सगुणा अब तक अपनी नयी चुनरी चोली ही की खुशी में खोई हुई थी। हाथों को नीचे अूपर को और उठाते हुए सुहाग की नयी चुड़ियाँ खनखना अुठी कि अुसके हृदयमें भी खुशी की लहरें हिलोरें मारने लगतीं। बार बार अुसका जी चाहता कि छल्ले बिछुअे पहने हुअे अपने सुकुमार पैरों की ओर देरतक जी भर कर देखती ही रहे। अिस बात से वह सर्वथा अनजान थी कि अब वह किसी की बहु बन चुकी है। और कोअी अजनबी व्यक्ति अुनका पति बन चुका है। अुस दृष्टि से अुसने मर्तू को ओर कभी देखा ही नहीं था।

लेकिन अड़ोस पड़ोस में रहने वाली बुढ़ियों ने अुसे अपने बीच घेर कर, अिस बात से अुसे अच्छी तरह परिचित कराते हुअे कहा, "कान खोलकर सुन ले लड़की! अब मर्तू तेरा आदमी है...तेरे जन्म जन्म का साथी! अब अुसी के साथ तुझे जिंदगी की नाव पार लगानी होगी। अुसी की सेवा चाकरी लगन से करनी होगी। अुसका बचा खुचा झूठा खाने से कभी मुँह नहीं मोड़ना होगा ... अुसी पर जान निछावरनी होगी...।"

और न जाने क्या क्या कहा अुन्होंने। लेकिन जब सगुणा ने 'अपने आदमी' की दृष्टि से मर्तू की ओर देखा, तब अुसे क्या दिखाअी दिया...?

हड्डियों का अेक ढाँचा—केवल अेक कंकाल! मर्तू बाँस के जैसा ऊँचा ही ताड बढ़ गया था लेकिन अुसकी देह पर नाम को भी मांस नहीं था। कमर की करधनी बार बार नीचे खिसकती जाती और वह अुसे लगातार अूपर की ओर खींचता जाता। तलुओं की बिवाअियाँ

अनुक्रमणिका

फूट आयी हुअी। बलिश्त भर के सीन में एक छोटासा गड्ढा। आँखें अन्दर में धँसी। आँखों की पुतालियों के गिर्द दिखाअी देने वाले पीले से रंग का अेक दायरा और अुन में सुर्ख आँखें। अुसके शरीर पर यह सभी लक्षण हमेशा के लिये विद्यमान थे।

अुस महा पुरुष को अेक बार आँखें भर देख लेने के बाद, अुन बुढ़ियों की 'सिखावन' का सहसा स्मरण होकर सगुणा ने अपने आपसे कहा, 'क्या यही है मेरे जीवन का साथी! क्या इसी की मुझे सेवा चाकरी करनी होगी! क्या इसी की जूठन खाने में मेरे नारीजीवन की सार्थकता है! छीः, छी...' उसने मुँह एक ओर फेर लिया। घृणा के कारण उसे मतली सी होने लगी।

अुस रोज साजू बामन के घर, काम करने के लिअे भागी गअी थी। मर्तू अकेला ही बरामदे में बैठ बीड़ियाँ बनाने के काम में जुटा था। झोंपड़े के भीतर चूल्हे के सामने बैठी सगुणा की ओर बार बार ध्यान आकर्षित होने के कारण बीडी के पत्त से तमाकू नीचे गिर रहा है अिस बात की ओर अुसका ख्याल भी नहीं था। भीतर की ओर जो लड़की काम कर रही है वह अुसकी स्त्री है—अिस अेक ही अनोखी भावना के कारण वह सलज्ज भावना से अपने आप ही रह रहकर मुस्करा रहा था। बगैर तमाकू की बनी अुँगली अितनी बीड़ी बना लेने के बाद, दरवाजे की ओर देख कर सख्त आवाज में अुसने हुक्म चलाया—

"आग हाड़ वांयच्। " [जरा आगी तो ले आ...]

अुस हुक्म को सुनते ही सगुणा को कुछ दिनों पहले की वह घटना याद हो आयी! एक रोज, अुसीके मोहल्ले में रहनेवाला एक नौ जवान लड़का—अर्जुन—अुसके बरामदे में आकर बैठ गया। साँवले से रंग का, गठीले शरीर का हृष्टपुष्ट युवक। वह कमर में सिर्फ़ लंगोटा पहने था। लेकिन वह लंगोटा मामूली सुफेद कपड़ का नहीं—चौखानेदार चौखुटी कपड़े का बना हुआ था। सुर्ख रंग के अुस कपड़े पर एक बहुत ही सुंदर बेलबूटी गढ़ी थी। माँग निकालते समय अुसके बालों में लगाये तेल का चमकीला-पन अब तक अुस के चेहरे पर चमक रहा था। बगैर बाहों की एक महीन बनियाअीन वह पहने था और अुस में अुसकी पौरुषयुक्त चौड़ी छाती, ढँकी रहने पर भी, नंगी सी मालूम पड़ती थी। जैसे कि मुनिम कारिंदे अपने कान के अूपर कलम रख लेते हैं। अुसी तरह अुसके कान पर चँफे का फूल विश्राम कर रहा था। सगुणा अुस फूल की ओर गौर से देख रही थी। अुसकी पौरुषयुक्त देह ओर चेहरे से टपकने वाले रोब की ओर देख कर वह ठगी सी रह गयी थी......।

तभी अपने दूसरे कान पर रखी बीड़ी हाथ में लेकर अुसने सगुणा आवाज को देते हुअे, हुक्म के स्वर में कहा था—

"अगो! आग हाड़ वांयच।"

अिस वक्त मर्तूने हुक्म चलाया था। वही हुक्म अर्जुन ने भी चलाया था लेकिन अुस हुक्म में अेक अजीब सी मस्ती भरी थी। अुस में अेक नशा सा छाया हुआ था। अुस में, अिस बात का अभिमान टपकता था कि मेरे अिस हुक्म की तुम किसी हालत में पामाली कर न सकोगी? वह शब्द अेक पुरुष के, अेक मर्द के मुँह से निकले हुए शब्द थे। अुन शब्दों को सुनते ही कठ-पुतली की भाँति खड़ी सगुणा भीतर से माचीस लाने के लिअे हड़बड़ा कर यूँ दौड़ी थी कि मानों किसी ने अुसकी पीठ पर कोड़ा फटकार कर अुसे काम के लिये विवश कर दिया हो। भीतर से माचिस ला कर अुसने अुसके सामने रख दी थी। और अर्जुन ने अिस तरह मस्ती भरी लापरवाही के ढंग से अुसके कलेजे पर नैनों के तीर चलाते हुअे अुसके हाथ से माचिस ले ली थी कि जैसे अुसकी आँखें कह रही थीं, 'भीतर से माचिस लाकर देने में तुमने मुझपर कोअी अेहसान थोड़े ही किया है?' और अुसके अिस पौरुषयुक्त बर्ताव को देख सगुणा की रग रग में खुशी की अेक लहर सी दौड़ गयी थी।

लेकिन मर्तू के मुँह से अुन्हीं शब्दों को सुनते ही अुसके माथ में बल पड़ गये। अिन शब्दों में मानों जान ही नहीं थी। मानों लकवा मरी जबान और कटे होठों से अुनका अुच्चारण किसीने किया था। अुन शब्दों को सुनकर अुस के दिल में न तो प्यार अुमड़ा और न ही अुन्हें सुनकर अुसे किसी तरह की घबराहट सी महसूस हुआ। वह तेज तर्रार मिर्च देहली पर आकर खड़ा हो गया... घृणा से भरी निगाहों से, मर्तू के कलेजे को कुचलते हुअ अुसने कहा,—

"हाय राम! यह निगोड़ा भी क्या बीडी पीयेगा? मैं कहती हूँ, आँगन में अंगीठी धधक रही है। वहाँ जाकर क्यों नहीं बीड़ी सुलगा लेता! तुम्हारे पैर थोड़े ही कट गये हैं।"

अिन शब्दों को सुनते ही मर्तू बुरी तरह चौंक पडा। अुसे जान पड़ा कि जैसे किसी जहरीली नागिन ने ही अुस पर फुफकारा हो। वास्तव में अुस अबोध बालिका के प्रति अुस के दिल में एक दहशत सी पैदा हो गयी थी। लेकिन भागी ने अुसे बार बार आगाह करते हुअे कहा था कि मुश्किल से पाअी हुअी अिस नयी दुलहन को देख कर कहीं वह फिसल न पड़े। कहीं अुसे मुँह चढी न बना







देना। अुस के सामने आठोंपहर दुम हिलाते अगर रहोगे लल्लो पत्तो करोगे, तो देखते-२ वह तुम्हारा पानी अुतार देगी। मैं देखना चाहती हूँ कि तुम किस तरह अुसे अपनी आँखों के अिशारों पर नचाते हो—...किस तरह पैरों की जूती पैर ही में रखते हो......।"

अिन शब्दों का स्मरण होते ही अुसने सोचा कि अिस बदतमीजी के लिअे, अिसे बिना दो चार चाँटे दिए बिना काम न चलेगा। अुसके दिल के किसी कोने में अलसाया सा पड़ा 'पति देव' सहसा जाग्रत हो अुठा! लेकिन मारने के लिअे, अिर्द गिर्द कहीं लकडी... या डंडा कुछ न दिखाअी देने के कारण, अंत में, हाथ अुठाकर ही वह अुसे मारने दौड़ा! लेकिन सगुणा ने झट् से आंगन में छलाँग मारी। अुसे पकड़ने की कोशिश में वह भी एक छलाँग मारना चाहता था लेकिन बारामदे की सीढ़ी ने गरीब को धोखा दिया। अुसने देखा...हाथ मटकाते हुए सगुणा अुसे मुँह चिढा रही थी। मामूली तौर से नहीं—धवल-दंत पंक्तियों के चौकी पहरे से अपनी जबान की सुर्ख नोक को बाहर निकाल कर! अुसका पीछा करते हुए मर्तू चार डग आगे बढ़ा भी नहीं था, कि वह बछड़े के जैसी अुछलते कूदते, वहाँ से भाग निकली। पसीने से तर मर्तूने, घर के सामने-खड़े हो, जितनी भी गालियाँ अुसे याद थी अुन सबको दोहरा डाला और तब कहीं अुसका क्रोध कुछ शांत हुआ।

लगभग आधे पौन घंटे के बाद चारों ओर नज़र उठाकर, और अिस बात का इतमिनान करते हुए कि कहीं मर्तू अब तक अुसकी ताक में यहीं पर बैठा है, या वह कहीं बाहर चला गया, सगुणा ने चुपकेसे झोपड़े में झाँक कर देखा। देखा कि मर्तू अपनी काली सूरत लेकर कहीं चला गया है। वह संतोष की साँस भी न ले पायी थी कि तभी बाहरसे भागी आ धमकी। सीर पर ढोकर लाये हुअे लकड़ी के गठ्ठे को आँगन में धमूसे पटककर, बरामदे की सीढ़ी चढ़ते हुअे अुसने पूछा,—

"मर्तू किधर गया है, री...?"

"गया होगा भाड़ में! मैं क्या जानूँ!" सगुणा ने झट् से कह डाला। शाम के समय भौजाअी के मुँहसे निकले ये अमंगल शब्द भागी के कलेजे को चीरते चले गये।

"रांड़ला, मातलंय गो?" (रांड़ कहीं की! सीधे मुँह बात नहीं करती) कह कर भागी ने सगुणा के दोनों गाल चिकोटे। "दुबारा मुँह से अैसे अमंगल शब्द निकाले तो जबान ही खींच लूँगी! समझीं?" अुसे अेक और ठेल कर भागी ने कहा। सगुणा अच्छी तरह जानती थी कि जिस तरह अुसने मर्तू को मुँह चिढ़ाते जबान दिखाअी थी, अुस तरह जबान दिखाने पर भागी अुसकी पीठ की खाल अुधेड देगी। अिसलिये सिर झुकाये वह चुपचाप खड़ी रही।

'बामन', 'कायथों' सी, गोरी चिट्टी लड़की को अपनी भौजाअी बनाने पर कुछ दिनों पहले भागी के हाथ आसमान को छूने लगे थे, लेकिन अब अुसे लग रहा था कि अुसने कहाँ से यह आफत मोल ली है। अब अुसके सामने यह जटिल समस्या थी कि सगुणा को किस तरह कानूनमें रखा जाय। घर गृहस्थी के काम में अुसका तानिक भी दिल नहीं लगता था। वह तो बस जितना भी काम करने के लिए कहा

जाय, अुतना ही काम करना जानती है। दिल में आन पर रोटियाँ भी ठीक से बना लेती है, माँड़ भी, पतला गाढ़ा-जैसे तैसे बना लेती है। लेकिन जैसे ही अर्जुन की परछाँही पड़ी कि बस, सब काम ठप!!

सिर पर मटका लिअे पानी भरने के लिअे चली कि नहर के किनारे मटका छोड बेधड़क किसी के भी, नरियल सुपारी के बगीचे में वह घुस जाती। वह किसी के बगीचे से नारियल तोड लाना नहीं चाहती और न अुसे संतरे या नारंगियाँ चुराने की जरूरत थी। अुसे तो चाह थी सिर्फ फूलों से! फूल......बस, फूल कहीं पर भी दिखाअी दिये कि सगुणा के पैर अनजाने ही अुस दिशा की ओर मुड़ जाते। जूही, चमेली, की नन्हीं नन्हीं कलियों को, दो दो की कतारों में लेकर, आन की आन में वह खूब-सूरत गजरे बना लेती और अुन्हें पहनकर अपनी चोटी सजाती। खास किस्म का गुले-अब्बास का गजरा बनाने में तो कोअी अुसका सानी नहीं रखता। मन-भावन सावन के महीने में किसी भी किस्म की धरती की छाती में खिलनेवाले, नाखून के जैसे तूँब के नाजूक, सुफेद-से फूलों से वह वह अपने लिअे नथुनी और नन्हीं नन्हीं अंगुठियाँ बना लेती। ढँढानेदार पत्तोंवाली, कौसुम्बी रंग की, जसवन्ती की अधखिली कालियाँ अुनके मुलायम और लंबे से डंठलों के कारण कानों में आसानी से झुमके जैसी लटकायी जा सकती थीं। मौलसिरी के पुष्प अुसके दोनों नथुनों की शोभा बढ़ाने में सहायता करते और अिस तरह पुष्पवती के रूप में सजकर, पतलीसी कमर पर पानी से छलकती गगरी लिअे, द्रुतविलंबित छंद की गति में वह घर की ओर चल पड़ी कि मोहल्ले के तमाम नौजवान 'झिलगे' हाथ का काम अधूरा ही छोड़ देते और अपने कलेजेको थामकर, बरसों से प्यासी आँखों से अुसकी ओर यूँ घूरघूर कर देखते मानों वे अुसे आँखों के जरिअे ही पी जाना चाहते हों...

अुनकी अिन हरकतों को देख भागी जलभुन जाती। 'निगोड़ों की आँखें भी नहीं..फुटतीं' कह कर, वह अुनके अमंगल की कामना करती! और अर्जुन ने तो जैसे सगुणा पर मोहन का प्रयोग किया था। अुसके साथ बात चीत करते हुए सगुणा मख्खन से भी ज़्यादह मुलायम और शहद से भी ज्यादह मधुर बन जाती। शायद मर्तू को इस बात का पता तक नहीं था। दो एक बार अुसने सगुणा के साथ पति का रिश्ता निभाने की कोशिश की थी लेकिन अिस काम में अुसे ऐसी बेभाव का सबक सिखाना पड़ा था कि तब से अुसने निश्चय कर लिया था कि अब, आगे चल कर वह सगुणा का कभी नाम तक नहीं लेगा......

लेकिन हर बात में अिस नामर्द भाई की सहायता करने वाली भागी में जो मर्दानगी थी, अुसे सगुणा की ये तमाम हरकतें कैसे गँवारा हो सकती थीं? अेक रोज़ अर्जुन को रस्ते के बीच में रोक कर, अुसने अिस विषय में अुससे साफ़ साफ़ पूछा। अुसे डाँटा, खूब आड़े हाथों लिया। अुसे, 'औरों की सुखी गृहस्थी में ज़हर डालने वाला चांडाल' कहा और अंत में यह धमकी भी दिलाअी कि अब की दुबारा कभी अुसने सगुणा की ओर आँख अुठाकर भी देखा, तो जूते मार मारकर वह अुसकी खोपड़ी पिलपिली कर देगी।

लेकिन अर्जुन अुसकी धमकी में आने वाला नहीं था। दिलेर, साहसी अर्जुन भागी की नस नस को पहचानता था। अपनी शानदार मूँछ पर अकड़ के साथ हाथ फेरते हुअे अुसने अुसे फटकार दिया— "जूतों की बात मुझसे नहीं, अुस साजू पंडित से करना भगिया। वह तुम्हारी धौंस चुपचाप सह लेगा। पहले यह तो देखो कि अपने पैरों तले क्या हो रहा है, और बाद में औरों की ओर अुंगलियाँ अुठाना। अुस पंडित की स्त्री बेचारी दिनरात भगवान से प्रार्थना करती है कि तुम्हारी अरथी जल्द ही निकले। खुद तो औरों की हरी भरी गृहस्थी में आग लगा रही है...और बेहूदापन तो देखो, कि लोगों को अुपदेश के पाठ पढ़ाती है। थूँ...थूँ..."

भागी चली थी अर्जुन को अुल्टा सीधा सुनाने, लेकिन अर्जुन ने ही अुसे खूब आडे हाथों लिया-एक का दस सुनाया...भागी अिनकार भी तो किस मुँह से कर सकती थी? अर्जुन के अुन जहरीले शब्दों की चोट से बुरी तरह घायल होकर, तिलमिला ते हुए वह घर लौटी...

और अिसके बाद सगुणा और अर्जुन का मन मुटाव न होने की अुसने जी तोड़ कर कोशिश जारी रखी। ज़्यादह तौरपर वह सगुणा को अपनी आँखों के सामने ही रखती। अुस पर आठों प्रहर कड़ा पहारा रखती और जब किसी कार्यवश अैसा करना अुसके लिये असंभव हो जाता, तब वह अुसके पीछे जासूस लगा देती। लेकिन अितने सख्त पहरे के बावजूद भी, जो होना था वह तो होकर ही रहता। अर्जुन के तड़पते दिल की प्यार भरी पुकार सगुणा को कहीं भी सुनाअी देती...और सगुणा की आर्त अुत्कंठा अर्जुन को कहीं से भी अुसके निकट खींच ले आती। आखिर ये तो वे, अेक ही कुअें के मेंढक! बिना अेक दूसरे के संपर्क में आये, चारा भी तो नहीं था।

और अेक रोज तो अुन दोनों की बेहूदा हरकतों को अपनी आँखों से देखकर, भागी के तलुअे में लगी आग सिर में जाकर बुझी। साजू पंडित के नरियल के बगिचे में जोताअी गोडाअी का काम चल रहा

अनुक्रमणिका





था। केले नरियल के पेडों तले अलग अलग कतारों में बैठ कर मजदूर–औरतें और मर्द–काम में जुटे थे। औरतों की कतार में सगुणा काम कर रही थी और मर्दों की कतार में अर्जुन। साजू पंडित के घर का काम होने के कारण मर्तू को भी हाथ बँटाने आना पड़ा; लेकिन अुससे तो कुदाल तक सम्हाले नहीं सम्हल रही थी। और अिसी से औरतों की कतार में जाकर घास काटने का जनानी काम वह कर रहा था। औरतों के दिलबहलाव के लिअे बीच बीच में वह अैसे गीत भी सुना देता, जिन्हें अक्सर चक्की पर आटा पिसते हुअे औरतें गाती हैं। मजदूरनियाँ भी अुसे अपने में का अेक मानती थीं और नारी जीवन की विभिन्न नाजुक समस्याओं का जिक्र, बिना किसी झिझक से अुसके सामने करती......

मर्तू की अिन जनानी हमदर्दी को देख, और किसी समय सगुणा शर्म के मारे धरती में समा जना चाहती; लेकिन आज अर्जुन अुस के निकट था। गठीले शरीर का, बलिष्ट नौजवान अर्जुन! शान के साथ बीड़ी जलाने का अुसका ढंग अुसकी आँखें प्यार से देखती थीं। मजबूत बाहों में पकड़ी अुसकी कुदाल की दना दन चोटें उसके कानों को सुनाअी दे रही थी अुसको आभास हो रहा था कि अुन के होठों से हौले हौले बजने वाली सीटी नरियल की हरी भरी चाटियों पर झूमते हुए आसमान की छाती चिरती हुई चली जा रही है। अुसके मुँहसे निकले, मस्ती भरी जवानी के गीतों की झनकार कानों पर पड़त ही वह एक अजीबसी सिहरन का अनुभव करने लगती! और मुहब्बत भरे गीतों की अुस रुमानी दुनिया में खो जाने से काम करते हुए अुसका नाजुक हाथ अनजाने ही बार बार रुक जाना चाहता था, अुसकी काजरारी आँखों की पलकें बोझिल सी होकर मिट जाना चाहती थी......

सगुणा का अिस तरह प्यार में बेसुध हो जाना, भागी की आँखों से नहीं बचा था। और मजदुरनियाँ भी, आँखों ही आँखों में, एक दूसरी की ओर अिशारा करने लगी। भागी बेहद झुँझला पड़ी। लेकिन अुसमें यह हिंमत नहीं थी कि इस वक्त अर्जुन को कुछ अुलटा सीधा कहती–क्यों कि वह अब तक हद से बाहर नहीं गया था। अिसलिये सगुणा पर ही वह उबल पड़ी और अिस अिरादे से कि अपने भाअी का पौरुष सब के सामने प्रस्थापित हो जायें,—मर्तू से अुसने कहा—

"मेरा मुँह क्या ताक रहे हो! लातों के भूत को जरा अपनी ठोकर तो दिखा। राँड़ को न काम आये न मौत? पराये मर्दों के सामने नखरे दिखाती है। अुनसे आँखे लड़ाती हैं।"

भागी के भाअी साहब अुठ खड़े हुअे। पहले तो अुन्होंने अपनी नकी सी आवाज में सगुणा को अेक बढ़िया सी गाली दे डाली और बाद में हाथ में पकड़ी हँसिया को ठीक से सम्हालने के बदले, अपनी लँग सम्हालते हुअे वे सगुणा के सामने आ खड़े हुअे। सगुणा भी झट अुठ खड़ा हुअी। अुसने और कुछ नहीं किया, अभी ही छिली हुअी घास की पत्तियों से चिपकी हुअी गीली मिट्टी को मुठ्ठी में भरकर फट से मर्तू के मुँह पर फेंक मारा और छलाँग लगा कर वहाँ से भाग निकली।

[शेष पृष्ठ ११३ पर चालू]

अनुक्रमणिका



फूलोंकी खोज

— श्री. जोशी

" अजी बाबूजी, इस वक्त फूल ? अगर फूल चाहते ही है तो रातको फूल दिखलाअेंगे... तबीयत खुश हो जायगी। मेरठसे आअी है। ताजा, खूबसूरत और—" हमने कहा,— हमको...' वैसी ' कोई चीज़ तो....

हमलोगों को फूलों के अेक हार की जरूरत थी अिस लिअे हम बाजार में चले गअे थे।

किसी भी बड़े गाँवमें फूल मिलने के स्थान प्रायः निश्चित होते हैं। एक सब्जी वगैरह की दूकानों के आसपास, दूसरा किसी मंदिर के दरवाजेपर, और तीसरा — अिसे आप हमारी तर्कबुद्धी की असभ्य छलाँग भी समझेंगे किन्तु फूल मिलने का तीसरा स्थान वेश्याओं की बस्ती में हुआ करता है।

'नया बाजार' से अजमेरी दरवाजा होकर जो सड़क नअी दिल्ली की तरफ़ जाती है के अिसीको दिल्लीवाले ' बजारे हुस्न ' कहते है अुस सड़क पर से शाम समय आप कभी जाएंगे तो फूलों के हार बेचनेवालों को अपने पीछे दौड़ते पाएंगे। क्यों कि चावड़ी बाजार से अुठी हुअी वेश्याओं की बस्ती अुसी सड़कपर है।

किन्तु हम किसी अच्छे फूलवालेको बड़े हारका ऑर्डर देना चाहते थे। इसलिये हम जैसे दिल्लीमें नये नये आये हुए अजनबियोंसे एकही स्थान परिचित होता है, यानी, फतहपुरी मसजिद; वहाँ गये और इधर अुधर देखने लगे कि कहीं फूलोंकी दूकान नजर पड़े।

चर्चकी तरफ जानेवाली सडकपर लस्सीवालों की दूकानें थी जहाँ दिल्ली के लाला और सूट पतलून वाले पंजाबी, फुटपाथपरही खड़े खड़े खा रहे थे, कोअी खुरचन खा रहे थे, या जलेबी की खुराक ले रहे थे। फतहपूरी मसजिद के दरवाजे के पासही सूखे मेवों की दूकानों में नअी दिल्ली की " देसी " मेंमें चार आनेका माल बारह आने में खरीद रहीं थीं। सामने गोटेवालों की दूकानों में बेगमें अपनी गोरी, नाजुक, सुडौल—या कहीं काली भद्दी और बेडौल—अुंगलियाँ बुर्केके बाहर निकालकर गोटा-किनारी की परख कर रहीं थीं। दूसरी तरफ लाल कुँअे को जानेवाली सड़कपर दो-तीन तख्तियाँ " हमाम गर्म है " के नारे कर रहे थे। अिसी के बीच घड़ाड़्-खड़ाड़् करती हुअी ट्रामें बेलगाम दौडती थीं। और मसजिद के सामने चौके में दो मस्त साँड टक्कर लगाने के लिये पैतरे ले रहे थे।

लेकिन यह दिखाअी देता था, फिरभी सब फूलोंकी दूकान कहीं नजर न आती थी। अिसलिये हम पासही नुक्कडपर दिखाअी देनेवाली सब्जी की दूकानपर पूछताछ करने चले गये। पहले तो दूकानदारने हमारी तरफ ध्यान भी नहीं दिया। लेकिन अुसकी दूकान बडी ठाठसे सजाई हुई थी। रंगरंगकी पत्तेवाली और फलसांग और सेंगें अिस रोचकतासे रची थीं के अुस में अेक रंग-संविधान निर्माण हुअी थी। सब्जियों के रंगोंका ख्याल रखके अुनकी सजावट मैंने बम्बई या पूना में कभी नहीं देखी थी। बहुत देर तक सब्जीवाला हमको ग्राहक समझकर हमारी तरफ देखता रहा।

हमने पूछा " यहाँ फूल कहाँ मिलेंगे ?"

प्रश्नको सुनतेही अुसका चेहरेके रंग पलटने लगे।

हमारा अनाडीपन और दिल्लीमें नौखुआपन हमारे चेहरोंपर साफ रंगता रहा होगा। क्यों कि फौरनही उसकी आँखों में दिल्लीवालों की जन्मजात शोखी चमकने लगी।

" फूल ? और अिधर ? सब्जीकी दूकान में भला फूल कैसे मिलेंगे ?" अुसने कहा।

अनुक्रमणिका

प्रा. रा. भि. जोशी :—अुन विरला कलाकारोंमें से अेक है जो गोल्डस्मिथ की भाँति स्पर्शित कला को कनकाभी बनाते हैं। आपने मराठी साहित्य में अनेक नयी प्रवृत्तियाँ अुद्‌गमित करने तथा विकसाने को समयोचित सहयोग प्रदान किया है। मराठी की भाँति हिन्दी साहित्य के संवर्धन के बारेमें आप काफ़ी सजग है।

"वह तो हम जानते हैं। लेकिन कहाँ मिलेंगे यह आप बता सकते हैं? हमें एक हारका ऑर्डर देना है।"

"फूलों के हार आपको रात पड़ने पर चावडी बाजार में मिलेंगे। अिस वक्त के बारे में मैं नहीं कह सकता। लेकिन आप खुद पूछताछ कीजिये। वहीं कहीं। यहाँ तो कोअी फूलवाला नहीं है।"

चावड़ी बाजार याने वेश्याओंकी पुरानी बस्ती। फिलहाल वह बस्ती वहाँसे लगभग अुठ गयी है। शहर के शरीफ लोगोंकी अिज्जत साबूत रहे अिस अुद्देश्यसे "वैसी" औरतों को यहाँसे हटाके अेक फर्लांगपर अजमेरी दरवाजेके बाहर निकाल दिया गया है। स्वाभाविक ही शहर के अिज्जतदार लोग अब अुधर, "बाजार-अि-हुस्नमें" जाया करते हैं। फिर भी चावडी बाजार में "वैसी" औरतें कुछ कुछ तो हैं।

दिनके वक्तका चावड़ी बाजार और रातके वक्तका, अिनमें जमीं आस्माँका है फर्क। यहाँ की वेश्याओं के रहने के स्थान ऊपर के मंजिले पर हैं। रातका अंधेरा छाने पर वह प्रकाशित होती हैं। यों दिनभर चावडी बाजारमें तांबा-पीतल के बर्तन, लोहेके सामान, अमृतबान और कांचके बर्तन, कागज और स्टेशनरी इन चीजोंका योक और परचुरन व्यापार चलता रहता है। आम तौरपर बडी धूमधाम बनी रहती है।

दिल्ली का यह एकही हिस्सा ऐसा होगा जो रात और दिन सजग रहता है। वेश्याओं की बस्ती शहरके बीचमें रहनी चाहिये या बाहर हो, इसपर मतभेद हो सकता है। लेकिन चावडीबाजार जैसा मध्यवर्ती स्थान अपने धंधे के लिये निश्चित कर लेनेमें इन स्त्रियोंने सचमुचही बड़ी समझ और दूरदृष्टि दिखाई है इसमें संदेह नहीं। क्यों कि चावडी बाजारको एक तरफ मुसलमानोंकी बस्ती है और दूसरी तरफ बसे हैं हिंदु और जैन। जामे मसजिद, जैन मंदिर और अप्पाजी गंगाधर मंदिरभी यहाँसे करीब ही हैं। सभी धर्मोंके अनुयायिकों के लिये मुक्त-द्वार रखनेवाली इन विश्वयोषिताओंके इससे अच्छा स्थान ढूँढने पर भी नहीं मिलता।

जब यह निश्चय हुआ कि फूलोंकी खोज चावडी बाजार में ही करनी आवश्यक है, तब हम लाल कुँआ जानेवाले ट्राममें बैठकर चावडी बाजार गये। और "बड शाहबूला" के पास अुतर कर फूलों की दूकानें ढूँढने लगे।

अूपर की खिड़कियों में से यहाँ वहाँ कुछ चेहरे झाँक रहे थे। नीचे दूकानों में ग्राहकों के झुंड थे। किन्तु फूलोंकी दूकानें कहीं नजर न आयीं। यह भी समझ में न आया कि किससे पूछें। इतनेमें अेक मकान के दरवाजे में अेक आदमी अपनी रंगाअी हुअी गलमूँछों में कंगन फिराता नजर आया। अुसके पास जाके हमने अुससे फूलों के बारेमें पूछताछ करना शुरू किया। वह ताज्जुब करता नजर आया। फूलों के बारेमें पूछनेमें हमने कुछ अनुचित किया था अथवा आनाडी पना बताया था, हमारी समझ में नहीं आया। नीचेसे अूपर तक हमारी तरफ देखकर मूछों में अुँगलियां फेरते हुअे अुसने कहा—

"अजी बाबूजी, इस वक्त फूल? अगर फूल चाहते ही हैं तो रात को आअिये अैसे अैसे फूल दिखलाएंगे कि आपकी तबीयत खुश हो जायगी। अभी अभी मेरठसे आयी है। ताजा, खूबसूरत और—और फिर अच्छे खानदान की है—वैसा पेशा करनेवाली नहीं है। मुसीबतमें पड़ी है—"

पास ही लाल—पीली लूँगी पहेना हुआ अेक जवान आदमी अेक छोटेसे आअिने में मुहँ देखता। मूछको बल देता, गुणगुना रहा था—

"हसीनों को तिरछी नजर देखता हूँ
हुहूँ हूँहु अिन्हें हिनां बेचता हूँ।"

हमारी तरफ मुडकर कहने लगा,—

"बाबूजी, रातको आअिये, जैसी चाहिये मिल जायगी।"

हमने कहा, "हमको 'वैसी' कोअी चीज नहीं चाहिये। हमें तो फूल के अेक हारका ऑर्डर देना है। फूलों की दूकानकी हम कर खोज रहे हैं।"

"ओह, यह बात है; तो आपको फूल अिस वक्त यहाँ नहीं मिलेंगे।"

"तो...कहाँ मिलेंगे?"

"आप्पा गंगाधर के मंदिरे पर जाअिये, वहाँ शायद मिलेंगें।"

"वह कहाँ हैं?"

"आपको नहीं मालूम? आप किधर के रहने वाले हैं?"

"हम पूना-दख्खन-के रहनेवाले हैं...अभी अभी दिल्ली आये हैं।

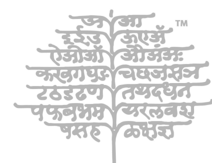
ओह यह बात है। तो आप्पा गंगाधर का मंदिर भी तो किसी दखनी का ही बनाया हुआ बताते हैं। आप यहाँ से यूँ हो के लाल किले की तरफ जाअिये कोअी भी बता देगा।"

अितना कह कर फिर अपनी मूछों को वल देते हुअे गुनगुनाने लगा—

गुजरते हैं यहाँ से तो, नजर अुठाकर देखते भी नहीं
और हम हैं कि रातदिन, अिंतज़ार में बैठे रहते हैं।"

पापडी बाजार से निकल के जामे मसजिद होते हुअे, हम लाल किले की तरफ जानेवाली सड़क पर आये। और मंदिर जैसा न दिखनेवाले आप्पा गंगाधर के मंदिर पर पहुँचे। हमको बड़ी आशा थी कि यहाँ फूल मिलेंगे। फतहपूरीसे यहाँ तक आते हुअे दस बज चुके थे। धूप चल रही थीं और अुसके साथ निराशा थी।

वहाँ पहुँचकर देखते हैं तो फूलों की दूकानें उठ चुकी हैं। फूलों की राशियोंपर छिडके हुए पानी की सुर्ख धाराअें फूलोंके अभावका प्रत्यय बडी तीव्रतासे दिला रहे थे। पथ-भ्रांत प्रवासी की तरह अगतिक होकर,





अनुक्रमणिका

'अब क्या किया जायें ?' यह प्रश्न मन ही मन पूछते हुए हम खडे थे। इतनेमें एक लालाजी तोंद संभालते हुए, कुछ बुडबुडते मंदिरकी सीढियाँ उतरते नजर आये। अबतक दो दफा पूछे प्रश्न हमने उनसे भी पूछे।

"फूल ? बाबूजी इस वक्त य ाँ, फूल कहाँ मिलेंगे ! फूलोंकी दूकानें तो अब उठ गयीं। हाँ; आप अगर सुबह सात-आठ बजे आते तो जरूर मिलते।"

क्या आपके इस दिल्ली शहरमें फूल कहीं भी नहीं मिलेंगे ? इतना बड़ा शहर—'

"अजी, वाह, बाबूजी ! यह भी कोअी बात है ? फूल क्यों नहीं मिलेंगे ? आप इसी रास्तेसे यों ही दरीबेमें जाइये किसी पनवाडीके यहाँ चाहे जितने फूल मिलेंगे।"

मैं अूब गया था बल्कि क्रुद्ध हुआ था। सुबह से लेकर तीन घंटे हम फूलों के लिये दिल्ली भर घूम रहे थे। लेकिन सब बेकार रहा। खैर, दरीबा वहाँसे कुछ बहुत दूर था। हिम्मत बाँधके दरीबा पहुँचे। 'महबूबचंद बजाज,' 'अिकबाल नारायन जौहरी,' 'मेहताबराय अित्रफरोटो'—अैसी हिंदु मुस्लिम संयुक्त सभ्यता की निदर्शक तख्तियाँ पढते पढते, पनवाडी की दूकान पर ध्यान रखते चलने लगे। दरीबेका रास्ता तंग, लेकिन वहाँका तिजारत बड़ा दिखाअी दिया। अिस रास्तेका अेक सिरा है चाँदनी चौक रास्तेपर और दूसरा जामे मशजिद के पास। अेक हिंदु है तो अेक मुसलमान। नाना रंगों के अेक कोशमेंसे दूसरा सुरङ्ग निकलता है किन्तु अुसकी विभाजक रेषा दिखाअी नहीं देती, यह अुसकी खूबी है। आखिर पनवाड़ीकी दूकान मिल गयी। लेकिन पनवाडी जगहपर न था। अिधर अुधर पूछनेपर देखा, किसी सब्जी बेचनेवाली से बात चीत कर रहा था। बुलानेपर आ गया था। बूढ़ा था लेकिन रंगीला दिखाअी दे रहा था।

जिस तरह भीख माँगने बैरागी किसी भी दरवाजे पर खड़े होकर "अलख" का सवाल करता है वैसे हमने भी अपना सवाल किया।

हमारा सवाल सुनते ही, जैसे वह अपने हृदयसंपुट का आवरण दूर करता हो, अुसी अंदाजसे अुसने तिरछे खडे किअे हुअे अेक तख्तेपर से अेक गीला कपडा अेक कोना पकड के अुठाया।

"हाँ, हाँ, बाबूजी, लीजिये। कैसे फूल चाहिये ?"

अुस गीले कपडे के नीचे केवल दोचार बिल्वदल ...तुलसी की दो तीन मंजिरियाँ, और पानी चूसकर पारदर्शक बने और मुरझाए हुअे पांच सात फूल जैसे प्राणहीन पडे हुअे थे—।

"दरीबमें पनवाडी के यहाँ चाहे जितने फूल मिलेंगे" अुस तोंद-वाले लालाने कहा यह है—"चाहे जितने" फूल ! इन्हीं के लिअे हम तीन चार घण्टे खाली पेट चक्कर काटते रहे। बदमाश। दिल्ली के शोहदों के बारे में हमने बहुत कुछ सुना था। वह अब सच निकला ! दिल्ली जैसे राजधानी के शहरमें जहाँ "फलवालों की सैर" जैसे उत्सव मनाये जाते हैं। वहाँ वक्तपर एक हारके लिये फूल नहीं मिलते आश्चर्य है। मैं बहुत ही चिढ़ गया था। पैसे खर्च करनेके लिये तैयार होते हुए भी हम को टांगें तोडनी पड़ीं थीं। अब मैं एक कदम भी आगे चलनेके लिये तैयार नहीं था।

इतनेमें पनवाडीने कहा, "बाबूजी, आपको जितने और जैसे चाहिये उतने और वैसे फूल फूलों की मंडी में मिलेंगे।"

"फूलोंकी मंडी ?" मैंने मन ही मन कहा "दिल्लीमें केवल फूलोंके लिये एक मंडी है ?" दिल्ली पर मुझे जो क्रोध हुआ वह, या यह, सुनकर कुछ कम हुआ मै ने कहा-"ठीक ही तो है दिल्ली जैसे बादशाही शहर में फूलोंके लिये खास मंडी होना उसकी शाही शौकतको उचित ही है। "फूलों के ढेर पर ढकेले जानेपर भी आगे चलनेके लिये मैं एक क्षण के पहले तैयार नहीं था। किन्तु फूलों की मंडीने मेरी आशा फिर जगा दी—

मैं ने पूछा "कहाँ है यह मंडी ?"

"नील के कटरेमें"

* * *

" नीलका कटरा कहाँ है ? "

" लाला घन्नामलकी जायदादके पास "

" धन्नामल की जायदाद कहाँ हैं ? "

अेक अेक नाम सुनके मेरा दिल भारी होता जजा रहा था। न जाने यह स्थान कहाँ थे '

" अरे, बाबूजी, घन्नमाल की जायदाद आप को मालूम नहीं ! अितने बड़े रअीस हैं— या आप नए हैं शायद ! "

" जी हाँ, हम अभी अभी दिल्ली आये हैं। "

" तभी तो; अच्छा, आप अंदर ही अंदर से नयी सडक होते हुअे घण्टाघर जाअिये, वहीं हैं, पास में। कोअी भी बता देगा—"

नयी आशासे भरे हुअे हम फिर आगे बढ़े, त्यों ही जरा ठहरकर कहने लगा—

" अजी, क्या कहूँ बाबूजी ! पहले शाही जमाने में यहीं नजदीक ही थी, फूलों की मंडी। सुनहरी मसजिदके परे मोती बाज़ार की पड़ोस में और जहाँ घण्टाघर है वहाँ कारवा सराय थी जहान आरा बेगम की। गया वह जमाना। ठीकही तो कहा है—

जफर अहवाल आलमका
कभी कुछ है, कभी कुछ है,
कि क्या क्या रंग अब हैं,
और क्या क्या पेस्तर—सां थे। "

बूढ़े पनवाडी के चेहरे पर खिन्न स्मृति की एक लहर चमक गयी।

पटवाअियोंकी, जिन्सोंकी, गोट-किनारीवालों की, दूकानों के सामने से गुजरते हुए नयी सडक की रूख से हम चलने लगे। मैं मन ही मन फूलों की मंडी का खाका बना रहा था। सदेह नहीं, कि दिल्ली के लोग रंगीन मिज़ाज़ और शौकीन हैं। जामुने बेचना हो अुनपर गुलाब पंखडियाँ और जर के तार बिखेरकर बेचते फ़िरेंगे। कोई खोंचे-वाला अथवा भडमूँजा भी गाँव जाने लगे तो फूलदार कुर्ता और मलमल को पहनकर गाडीपर सवार होगा। वह मेरठ या छः मीलपर गाजियाबाद भी क्यों न जा रहा हो अुसे बिदा करने के लिए चार पांच दोस्त फूलों के हार लिए स्टेशनपर अुपस्थित होंगे। और केवल अुसके ही नहीं एक दूसरे के गले में भी हार डालेंगे। गर्मी के मौसम में शाम के समय रास्ते से जायेंगे तो गले में मोतियोंके कंठे और कलाई में मोतियों की पोहोंचियाँ पहन कर जायेंगे। ब्याह बारात या किसी उत्सव समारोह को दिल्लीवाले हार बनाते हैं तो आदमी उन हारों की तरफ केवल देखता रहता हैं इतने बडे, सुंदर और शानदार होते हैं। उन्हें देखते हुए दृष्टि कृतार्थ होती है। हाथीकी सूँड जैसे मोटे, भारे हुए सुनहरी, रुपहले चांदीसे चमकनेवाले पावतक पहुँचनेवाले। मैं अपने नशेमें चूर था, सब्जी चटनियों के गंध से भरी हुअी परोंठे की गली। रेशमी और जरी साडियोंसे चमकनेवाली सुरती साडीवालोंकी दूकानें कब पीछे रह गयी अिसका मुझे ध्यान भी न रहा। हम नयी सड़कपर निकल कर घण्टाघर के पास और वहाँ से पूछते पूछते नीलके कटरे से पास पहुँच गये। यानी फतहपूरी से निकल कर दिल्ली शहर की आंतोंमें से घूमते घूमते हम फिर फत्तेपूरीके पासही आगये। फतहपूरी के अुस सब्जीवालेनें हम को अगर पहले ही बता दिया होता कि नीलके कटर में फूल की मंडी है और वहाँ फूल मिलेंगे तो हमारा धूम धाम और मेहनत न बचती ! लेकिन वह अगर अैसा करता तो दिल्लीवाला न होता। बाहरसे दिल्ली आये हुअे लोगों की खिल्ली अुड़ाने में दिल्ली वालों को बड़ा मजा आता है अिसमें संदेह नहीं। नीलके कटरेके अुस कोठे फर्शमय कूचे में घुसकर हमने फिर पूछताछ शुरू की और फिर अेक बार बाँअे को फिर, दाहिने और फिर बाँअे मुडकर चक्रव्यूह भेद किया और वहाँ खेलते हुअे अेक लडके से पूछा,—

" यहाँ फूलों की मंडी किधर है ? "

" यह सामने ही तो है आपके, " अुस लडकेने जवाब दिया।

अब हमारा यह फूलों की खोज Holy grail के खोजका सा हो गया था।

तीन खाने वाली अेक खुली और दूकानकी तरफ वह अंगुली निर्देशित कर रहा था।

" यह है फूलों की मंडी ?" अुस शून्य की तरफ देखते हुअे मैंने पूछा। " लेकिन यहाँ फूलों कीं दूकाने कहाँ हैं ? "

" दूकानें ? इतनी देर तक ? वह तो नौ बजे अुठ चुकी "

मैंने माथे पर हाथ मार लिया। कुछ बोलने के लिये मेरे पास शब्दही नहीं थे। यह तीन खानेवाली-अितनी-यह दिल्ली की फूलों की मंडी।

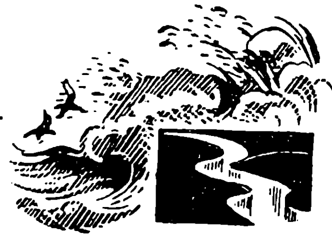
किसी के अूपर क्रोध का अंगार बरसाने के लिअे जी चाहता था किन्तु किसके अूपर आग क्यों बरसायी जाय ?

अुस दूकान की जमीनपर खजूर के पत्तोंके बोरिये बिछाये हुअे थे अिधर-अुधर दो चार फूल, अपने साथियोंसे बिछुड जाने के कारण, रूठ कर अितनासा मुँह किअे दबे पडे थे।

अबतक मैं यह भी भूल गया था कि किस अुद्देश्य से हम फूलें की मंडी में आये थे।

मैं अुस खाली दूकान की तरफ देखता रहा, फिर अुन विरही अुदास फूलों में से मैंने अेक अुठा लिया, और अन्य फूलों को 'नमस्ते कर के हम अपने घर लौट आये।

● ●



अेक मर्तबा मैंने निर्झर के सामने सागर का वर्णन किया निर्झर को लगा कि मैं अेक कल्पनाशील गप्पीदास हूँ .....

और जब मैंने सागरसे निर्झरके बारेमें बतलाना शुरू किया तब अुसको लगा कि मैं अेक कृपण निन्दक मात्र हूँ।



मैंने विदा माँगी तो—“ चलिए मुझे भी बाज़ार ही चलना है—” कहकर वह मेरे साथ हो लिए। सरदारजी चुपचाप चलते रहे--चुप्पी मुझे अखर रही थी-- तभी सरदारजीने बडी विनम्रता से कहा-- “ भाअीजी, मेरी अेक विनती है।”

अतिथि का विश्वास

—शामू सन्यासी

बचपन की कसरतें और योगासन काम आये और मैं डिब्बे के अन्दर दाखिल हो गया। अभी कपाल का पसीना पोंछ भी नहीं पाया था कि गाड़ी चल दी। अन्दर बडी गरमी थी। यात्रियों के सीने और पीठ और और बाहों के अटाटूट के बीच सिर घँसाते हुअे किसी तरह खिड़की तक अपना चेहरा पहुँचाया। तेज हवा के झोंके ने जैसे तमाचा कस दिया। सिर हिलाकर झटके से गर्दन मोडी तो देखता हूँ कि एक सिक्ख सरदार हाथ में बड़ा भारी ट्रंक थामे गाडी के हत्थे से लटक रहे हैं। जैसा सरदारजी का डीलडौल था अुसी के अनुरूप ट्रंक भी भारी भरकम था। तीस मील की रफ्तार पकड़ती डाक गाड़ी की पटरी पर यों लटके हुअे अुस सरदार के लिअे मन गहरी संवेदना से भर आया।

मैंने कहा : “सरदारजी, क्या जान अेकदम फालतू है ? क्यों अितना जोखिम लिये हो ? अन्दर क्यों नहीं चले आते ?”

पाँच मिनट पहले जो यात्री मुझे बे-सरो सामान को भी अन्दर नहीं आने दे रहे थे, अिस समय सहायता के लिअे तत्पर हो अुठे और सरदारजी अपनी विशाल काया और विशालतर ट्रंक के साथ अंदर खींच लिये गये। सरदारजी आदमी भले थे। अन्दर के सब भाइयों से अुन्होंने ‘सत् सिरी अकाल’ किया और बहुत-बहुत माफी माँगी और, हाथ जोड़-जोड़कर ‘ मिहरबानी जो तुहाड़ी ’ की। मेरे इस कथन पर-कि सरदारजी यों जान को बाजी पर लगाकर गाड़ी से लटकना समझदारी नहीं,—अुन्होंने जटाजूट दाढ़ी में सफेद दांतों को चमकाते हुए दार्शनिक भाव से जवाब दिया, अजी मौत को जब आना होगा आ कर रहेगी और न आना होगा तो ढोल बजाने से भी न आएगी—आपकी मदद के लिए बहुत-बहुत शुक्रिया।

फिर रेल कम्पनी के सिस्टम को लिस्टम-पिस्टम करार देकर और गिरह का पैसा खर्चकर चोर की तरह लटकने पर कहुवाहट से हँसकर अुन्होंने मुझसे पूछा ‘ तूसी किथे जाओगे जी ? ”

मैं हरदा जा रहा था ओर सरदारजी ने भी प्रसन्न होकर कहा, “ असी वी अुथे ही जा रिहाश रियां सी– ।”हरदा आया और हम दोनों अुतर गये। प्लेटफार्म से बाहर निकले तो रात के ग्यारह बजे थे और हलकी बूंदाबाँदी हो रही थी। सरदारजी ने प्रस्ताव किया “ आअिये, अेक कप चाय पी जाय—”

अिस प्रस्ताव में आग्रह की ध्वनि, कुछ अिस विश्वास से बोल रही थी मानो जानती है कि अुसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता, और आग्रह के साथ सम्मान भरा आतिथ्य का पुट भी था–अेक अैसा पुट जो केवल पंजाबी कंठ की अपनी विशेषता है।

लेकिन मैंने अस्वीकार किया, क्योंकि अपरिचितों का आतिथ्य मुझे अहसान लगता है।

सरदारजी ने मेरा अस्वीकार, मगर, सुना ही नहीं। होटेलवाले को बड़े ही परिचित लहजे में पुकारकर अुन्होंने दो ‘ डबल स्पेशल ’ का आर्डर दे ही दिया। फिर अपने बलिष्ठ हाथ से मुझे लकड़ी के बेंच पर बैठ कर चाय आने तक वह अपनी लकड़ी की आरा मिल, लकड़ी के ठेके, कलकत्ता के अपने कारबार, पंजाब की अपनी जिन्दगी और मौजूदा हालतों पर बातें करते रहे। चाय पीकर अुन्होंने जोर का चटखारा लिया, बढ़िया चाय के लिअे होटेलवाले की तारीफ की, पैसे चुकाये और तब मुझसे पूछा : “ अब आप कहाँ जायेंगे ? ”

● ●

रात आधी हो रही थीं और मैं अिस विमर्ष में था कि और भी आधे घंटे बाद मंगल बाजार जाकर मित्र का दरवाजा खटखटा कर अुसके आराम में खलल डालूँगा और अुससे भी अधिक मित्र पत्नी



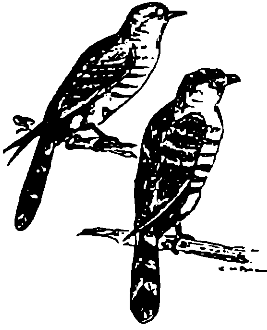


का रोष ही अर्जित करूँगा। अिससे तो अच्छा होगा कि रात स्टेशन के वेटिंग रूम में ही काट लूँ। लेकिन मन का यह मन्थन तो सरदारजी से कह नहीं सकता था। बोला " शहर में एक मित्र हैं, अुन्हीं के यहाँ जा रहूँगा— "

सरदारजी ने कहा " अब इतनी रात बीते कहाँ जाओगे ? हमारे ही साथ रात गुजार लो "

और मेरे उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना अुन्होंने एक हाथ में अपना सन्दूक और दूसरे में मेरा झोला उठा लिया और आगे हो लिये। मेरे लिए कुछ कहने की गुंजाइश ही नहीं रह गई। सरदारजी अपने बुलन्द गले से 'अरे सन्तोकसिंह' 'अरे बिसाखासिंह' 'अरे गुरुमुखसिंह' करते कोयले की एक अन्धेरी टाल में घुसे और मुझसे कहा " चले आइए " अन्दर पहुँचकर सरदारजी ने अधिकारपूर्ण स्वर में कहा ' किथे सरदारा ' शेरसिंहजी।

टाल के रखवाले ने जागकर बतलाया कि शेरजी तो जंगल में कूप कटवाने गये हैं। सरदारजी ने अुसे पुचकारकर एक बालटी पानी मँगवाया, हमने हाथ-मुँह धोये और जो सोये तो सवेरे नींद खुली। सरदारजी ने परम आतिथ्य भाव से शौच-स्नान की व्यवस्था कर दी। निवृत्त होकर मैंने अुन्हें नाश्ते का न्यौता दिया। जैसे यह तो होना ही था, कुछ इस भाव से सरदारजी ने स्वीकार कर लिया। अन्त में जब मैंने अुनसे विदा माँगी तो 'चलिए मुझे भी बाजार ही चलना है' कहकर वह मेरे साथ हो लिये।



अ मृ त

मुझे न मरने का डर, औ' नहिं
जीवन की उत्कट अभिलाषा,
फिर मदिरा को बुरा मानकर
तुझे प्रतिष्ठा क्यों दूँ, अमृत ?

— बने रहो तुम अमर देवगण
लेकिन रखना याद बात यह
अगर चाहूँ तो अमर रहूँगा
विना पिये दो बूँदें अमृत !

— शरू रांगणेकर

* * *

कुछ दूर तक सरदारजी चुप चलते रहे। चुप्पी मुझे बड़ी अखर रही थी साथ चलने वाले तो अपरिचित भी बतियाते हैं। क्या बात है कि चुप न रहने वाले सरदारजी चुप हैं ? तभी सरदारजी ने बड़ी विनम्रता, बड़ी आजीजी कहा। " भाअीजी मेरी अेक बिनती है "

आँख अुठाकर अुनके चेहरे कीओर देखा तो वहाँ याचना का भाव था। समझ न सका कि अिस आदमी की अैसी क्या विनती हो सकती है, जो यह अिस भाव से कह रहा है मानी मैं ही अुसे अुबार सकता हूँ। मैं ने प्रश्नसूचक मुद्रा में सरदारजी को देखा। वह मेरे समीप आ गये ओर गोपनीय बात की तरह बोले " जी, अिस समय मुझे बीस रुपये की सख्त जरूरत है। अगर आप दे दे तो बड़ी मेहरबानी। मुझ पर यकीन रखिये मैं आपका रुपया मनी ऑर्डर से भेज दूँगा पता यही—३५ आड़ाबजार, अिन्दौर—है न ? "

सिर्फ रेल और रात के परिचय पर यों बीस रुपये माँगने वाले अुस विक्ख की हिम्मत पर मैं तो चकित रह गया। परिचियों के अुधार माँगने पर मुझे आश्चर्य और पीड़ा होती है। फिर वह तो नितान्त अपरिचित था और अुधार माँग रहा था।

कारण पूछने पर सरदारजी ने बतलाया—"कि वह अेक टेंडर भरने के सिलसिले में इरदा आये है। अिस समय बड़ी गर्दिश में हूँ। किसी तरह जुगाड़ किया है, लेकिन बीस रुपये कम पड़ रहे है। शेरसिंह के भरोसे चले आये लेकिन वह माँ का पुत्तर कूप कटवाने चला गया और पैसा आज ही जमा करना हैं। होनी अिसको कहते हैं। काम हजार पाँच सौ के लिअे नहीं रुका और रुकने को हुआ तो अब बीस पर रुकता दाखता हैं। और स्वर में विनम्रता भरकर बोले। भाअीजी, मैं आपका आहसान कभी न भूलूँगा, दे सकें तो दे दीजिए इतना यकीन मानिए कि हाथ में आते ही सबसे पहले आपकी अमानत वापस करूँगा। जान-पहचान के तो आपकी दुआ से बहुत है लेकिन किसी के सामने हाथ फैलाकर अपनी साख गिराना नहीं चाहता। और बाबूजी सच बात तो यह है कि जान-पहचान वाले की बनिस्बत गैर पहचानवाले से माँगना ज्यादा आसान है, अगर वह इन्कार कर भी दे तो मन में कलंक नहीं होती।'

यह सब सरदारजी ने कुछ इस तरह कहा कि मुझे विश्वास हो गया कि आदमी वाकई जरूरतमन्द है। और इस समय मुसीबत में है। और दिल का साफ और खरा है और इसकी मदद करनी ही चाहिए। मैने जेब से दस-दस के दो नोट निकालकर सरदारजी के हाथ में थमा दिये।

मुझे बड़ी उम्मीद थी कि सरदारजी गदगद हो जाएँगे। मेरी सराहना करेंगे। मुझे गले लगा लेंगे। बड़े एहसान मानेंगे। लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। उस खुदा के बन्दे ने बड़ी " मेहरबानी तुहाडी ' तक न कहा। मेरे हाथ से इस तरह रुपए ले लिये मानों मैं उसका बरसों का कर्जदार हूँ और हजारों तकाजों के बाद रुपए चुका रहा हूँ।

सरदारजी रुपए लेकर एकदम चल दिये और मैं अपनी जगह पर

अनुक्रमणिका

इस तरह खड़े रह गये मानों मिठाई की आशा में बढ़े जाते बालक को कोई निर्ममता से तमाचे मार दे। मुझे विश्वास हो गया कि मैं ठगा गया और एक चलता पुर्जा बीच बाजार में मुझे उल्लू बना गया। रात दिन के साथ उठने-बैठने वाले तो उधार लेकर लौटाते नहीं। यह अपरिचित सिक्ख क्या लौटावेगा। अच्छे बुद्धू बने।

पता नहीं कब तक वहाँ खड़ा अिस घटना की मीमांसा करता रहा। यह भी नहीं कह सकता कि हरदा जिस काम से गया था, उसे कर भी सका या नहीं। मित्र और अुसकी पत्नी की बातों में भी मेरा मन नहीं रमा और दूसरी ही गाड़ी से मैं इन्दौर लौट आया।

घर आकर मैंने अपनी पत्नी से भी यह किस्सा न कहा। आदमी अपनी होशियारी का ढिंढोरा पीटता है, अपने बुद्धू बनाये जाने की बात अपने कान को भी नहीं सुनाता। लेकिन कअी दिनों तक मन बड़ा अुद्विग्न रहा। डाकिये को देखकर विह्वल हो जाता, आश बाँधकर देखता कि अभी वह आकर कहेगा, यह आपका बीस रुपए का मनि-आर्डर है। अिस बीच कअी मनि-आर्डर आये। अुनमें बीस रुपए के भी थे लेकिन कोअी किसी सरदारजी का नहीं था। और मुझे विश्वास हो गया कि वह सिक्ख सरदार मुझे फाँसी दे गया और मैं एक ही गोबर गणेश हूँ।

अिस बात को महीने बीते और पूरा साल हो गया और साल पर भी तीन महीने चढ़ गये। मैं लगभग अिस बात को भूल ही गया। केवल किसी सिक्ख को देखकर मुझे अुस सरदार की याद हो आती, मन खिन्न हो जाता, और क्षण भर के लिए सभी सिक्खों के प्रति मन गहरे अविश्वास और अनास्था से भर जाता।

तभी कार्तिक आया। एक दिन बच्चों के आग्रह के आगे परास्त होकर अुन्हें मुल्लाजी की दूकान से पटाखे दिलवाने ले गया। भीड़ में घुसकर पटाखे पसन्द किये जा रहे थे कि मैंने अपनी बगल में एक आवाज सुनी—"सत् सिरी अकाल भाभीजी," स्वर कुछ परिचित सा लगा। मुड़कर देखा तो एक सरदारजी को अपनी ओर देखकर मुस्कराते पाया। सरदारजी बोले " ओह, आपने मुझे पहचाना नहीं ? "

मैं पहचान गया था। यह वही सिक्ख था। मैंने व्यंगपूर्वक कहा—"आपको कभी भूल सकता हूँ ?" और आवेश में मैं आगे कहने जा रहा था, मैंने अपनी उमर में तुम्हारे जैसा बेईमान और झाँसेबाज आदमी नहीं देखा। तभी सिक्ख ने पूछा " ये आपके बच्चे हैं क्यों बेटा ? "

और उसने झुककर बच्चों को प्यार किया और तब मुझसे बोला—बाबू साहब मैं आपका कुसूरवार हूँ। आपके आगे शर्मिन्दा हूँ। आपके बीस रुपए आज तक नहीं लौटा सका। आपकी माफी चाहता हूँ। बात असल यह हो गई कि पहले मैं काम में फँसा रहा, फिर बीमार हो गया फिर पंजाब चला गया और इतने में आपका पता भी खो गया रोज। आपके रुपयों की याद आती थी लेकिन भेज नहीं सकता था। आपकी भलमन्सी का खयाल आता और मैं शरमिन्दगी और जिल्लत में डूब जाता। होनी अैसी कि अपका नाम भी भूल गया और मुहल्ला भी भूल गया। आज आप दीख गये। यह लीजिए आपकी अमानत। इस पैसे ने अैसी बरक्कत दी कि दो हजार देकर भी आपसे उऋण नहीं हो सकता। और मुझे मुआफ कर दीजिए।

मेरी छाती में रुलाई उभरणे लगी और मेरा मन मुझे धिक्कारने लगा सरदारजी से आँख मिलाने की मेरी हिम्मत नहीं हुई। हाय, इस आदमी पर मैंने अविश्वास किया, ओर इसे बेइमान करार दिया।

सरदारजी ने वे बीस रुपए अेक तरह से जबर्दस्ती मेरे हाथ में रख दिये और जब मैं पटाखों के पैसे देने लगा तो अुन्होंने मुझे पैसे नहीं देने दिये और बच्चों के लिअे ढेर-सारे खिलौने-और सेरों मिठाअी खरीदकर साथ घर आये और 'भेणजी' को असीम श्रद्धा और भक्ति भाव से 'सत् सिरी अकाल' किया। मेरे आतिथ्य के आगे संकुचित होकर अुन्होंने मेरे घर का प्रसाद पावन किया। और जब वह चले तो मैं अपने आँसू न रोक सका। बारबार यहीं विचार मन में आता था मैं अिस आदमी के आगे कितना पामर हूँ।

आज अिस बीस बात को बरसों बीत गये। सरदारजी मेरे परिवार के ही अेक सदस्य की तरह है। मेरे घरवाले अुन्हें सरदार विश्वास-सिंह के नाम से जानते हैं। और दिवाली के दिन जब तक यह नहीं आ जाते मेरी पत्नी लक्ष्मी पूजन नहीं करती, मेरे बच्चे पटाखे नहीं छोडते। और मुझे बीसियों दीये अुजालने पर भी अन्धेरा-अन्धेरा लगता है।

— —



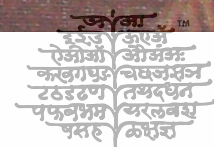
कन्या चाहती है कि अुसके पति केवल रूपवान् हो, अुसकी माता चाहती है कि वह केवल सम्पन्न घरका हो, पिताजी का लक्ष्य अुसकी विद्याकी ओर केंद्रित होता है; तो रिश्तेदार चाहते हैं कि वह केवल भद्र कुलका हो और अन्योंका अीप्सित होता है कि अुसके कारण चार-दिन पक्वपक्वानोंका मोहनभोज झरता रहे।





अनुक्रमणिका

अनुक्रमणिका





['सगुणा'—शेषभाग—पृ. १०२ से आगे चालू]

वह मरियल टट्टू अपनी मिचमिची आँखों को मुश्किल से तरेरते हुअे, न जाने कबतक, बुतके जैसा वहीं पर खड़ा था। औरतों और मर्दों की मिली जुली हँसी से अुसके कानों के परदे फट रहे थे। अिस दृश्य को देख अपनी अभी अभी भीगी मसों को अैंठने का नाट्य करते हुअे अर्जुन मुँह ही मुँह में पुटपुटाया "वाह रे बहादुर लड़की—!" और तभी सहसा माथा ठोक कर भागी ने कहा– "देख लिया न मर्तू ! अब यह मामला हद से बाहर बढ़ गया है... हे भगवान अिसकी जवानी पर बिजली गिरे......"

सगुणा अब पूरे पँद्रह साल की होने वाली थी। अुसकी टाँगों की पिंडलियों को अेक सलोना सा रूप प्राप्त हो रहा था। नितंबों में गोलाअी आकर वे चक्राकर से दिखाअी दे रहे थे। काँच और पितल के कंगनों से युक्त अुसकी कलाअियाँ देखने वाले के मन को विमोहित कर रही थी। पीठ की रीढ़ ने, भीतर धँसते हुअे हुए अुसके अुरोंजो को अुन्नत बना दिया था। अुदार चरित यौवन के प्रदान किये अिस अनमोल खजाने की रक्षा करते हुअे वह घबड़ा गयी थी, सकपका गयी थी। और अुसकी नस नस से टपकने वाली यौवन की मादकता को देखकर दिल ही दिल में दुहाई दे कर भागी भगवान से प्रार्थना कर रही थी, 'भगवान अिसे जल्द ही बालिग बना दे...जवान होकर, एक बार यह अपने 'खसम की मेहरियाँ, बन जायें...तब मैं देखूँगी कि अिसकी अिस अुठती जवानी का जोश कैसे ठंडा नहीं पडता !"

और वह सुअवसर जल्द ही आया जिस की भागी बरसों से प्रतीक्षा कर रही थीं। जरूरी रस्मों की तैयारी में भागी खुशी खुशी जुट गयी। साजू पंडित ने मुहूर्त बताया। भागी बड़ी चतुर स्त्री थी। मनोविज्ञान के कुछ प्रारंभिक पाठ, बिना किसी के पढाये ही अुसे ज्ञात थे। अुसने नाअी को बुलाकर खास ढंग से मर्तू के बाल बनवा लिये। बदन में तेल मल कर अुसे अुपने हाथों नहलाया अुसे अुसकी गंदी देह पर चढ़ा मनों मैल को धो डाला। माथे में टीका लगाया। आज तक जतन से गठरी में बाँध कर रखा हुआ अंगोछा निकाल कर, अुसके कंधों पर डाला और अपनी राय में, अुसे नवजवान और प्रति मदन की मूर्ति में बदल कर पुण्य वाचन के पीढ़े पर अुसे बिठा दिया।

रात को खाने पीने से निबटने के बाद बीडी का दम लगा कर, खाँसते खँखारते बैठे मर्तू को, घर के भीतर ढकेलकर भागी ने बाहर से आहिस्ता से दरवाजे को साँकल चढ़ा दी। घर में अंगीठी धधक रही थी। कुछ डरी सी, कुछ घबडायी, यौवन, रूप और माधुर्य की वह साकार मूर्ति अपने लंबे गीले से केशों को पीठ पर लटकाये अुस अग्नि, ज्वाला के प्रकाश में दमकती दिखाअी दे रही थी। अुसके बाअें कपोल पर प्रकाश की किरणें झूम झूम कर नाच रही थीं और दाहिने कपोल पर अुसकी निश्चल सी परछाँही नजर आ रही थीं। आग की लपटें जैसे ही झूम कर अूपर की ओर अुठती, तुरंत ही रोशनी अिस ओर आकर परछाँही के कलेजे की गहराअी में घुसने की कोशिश करती। और पल भर के लिअे, लपटों के दब जाने पर अुस रिक्त स्थान पर कुछ देर के लिअे परछाँही अपना अधिकार जमा लेती। अुस क्षण मानों यौवन के रंगमंच पर साक्षात् रूप में प्रकट होकर, स्वयं रसराज शृंगार ही रास-क्रीडा में लीन हो गया था।

काश, अिस सुनहरे अवसर पर मर्तू अेक कदम आगे बढ़ाता...... काश वह अपने रिश्ते को निभाना न भूलता ! काश, अपनी कमजोरी भी क्यों न हो, लेकिन प्यार भरी बातों में निःशंक होकर सगुणा को भर लेता—कौन कहे। अैसा होने पर शायद अनहोनी भी होने में बदल जाती ... लेकिन 'करमगति टारे नहीं रे टरे...'

लेकिन आजतक के तजुरबों ने और खास कर अुसके दगाबाज बुझ-दिल दिल ने ठीक वक्त पर अुसे धोखा दिया। वह अिस स्थान पर खड़ा था, वहीं का वही ठिठक गया। निःष्प्राण...निष्प्रभ...निश्चेतन...। सामने धधकती अंगीठी के बावजूद भी अुसके शरीर में, तनिक भी गर्मी नहीं बची थी। मुक्त केशों में अुसके सामने खड़ी सगुणा अुसे प्रलयकारिणी महाकाली सी प्रतीत हो रही थी......

अेक पल...दो पल...तीन...पाँच...दस...और न जाने कितना समय बीत गया। अब भी निर्भर एकांत में बैठे अुन दो प्राणियों के बीच का अंतर जौ भर भी कम न हो पाया था। अबतक सगुणा अपने पैरों के नाखुनों पर आँखें गड़ाये वहीं खड़ी थी...अब अुसकी निगाह पत्थर के बने अुस बुत की ओर गयी। अंगीठी की धधकती आग अब अुसकी आँखों में उतरकर धधकने लगी। थर्राने वाले अपने अधर को अुसने दातों तले काँटा। अुसने गर्दन को अिस अदा के साथ अेक झटका दिया कि अुसके अध खुले से अुरोजों को हौले हौले गुद गुदाने वाली बालों की कुछ लटें दुबारा झट्ट से अुसकी केश राशी में जाकर छिप गयी। दूसरे ही क्षण वह तेजी से, दरवाजे की ओर लपकी--

लेकिन दरवाजा बाहर से बंद था।

"भगिया, झट्ट से दरवाजा खोल दो...खोल दो...वर्ना ठीक न होगा" भीतर की आहट लेते हुअे दरवाजे के बाहर बैठी भागी के सिर पर मानों कड़ाके के साथ बिजली गिरी ! तब भी, तेज स्वर में अुसने कहा--,



मछली पानी में तैरती है, साँप वायु प्राशन करता है, मेंढा पत्तल चबाता करता है, पपिहा केवल जलबिन्दु के स्वाद पर जीवित रहता है, चूहा विवर में अेकान्तवास को धारण करता है, गर्दभ हरदम रक्षासे लथपथा होता है और बक सदा साधना मग्न होता है... परन्तु क्या ये सब निःश्रेयसकी गति पाते हैं ?



चिर विरहिणी

—नीरज

बज चुकी हजारों बार मिलन की शहनाअी
कर चुकी कोटि शृंगार धूलवाली काया
लेकिन यह अेक विरहिणी है मेरे घर में
आज तक न जिसका परदेसी प्रियतम आया !

सदियाँ सोअी, खोअी अितिहासों की स्याही
हो गये मूक सौ सौ कवि तुलसी – सूरदास,
पर अक्षयरूपा अैसी राजकुमारी यह
जिस को अब तक पी से मिलने की लगी आस !

लाखों सन्ध्याओं का सुहाग – सिन्दूर झरा,
लाखों रातों के हार सितारे टूट गये
लेकिन, अिस गीली पलकोंवाली गोपी के
जब जब पोंछे आँसू भर आये नये नये !

अनगिन बसन्त आँगन में खिले, हँसे, रोये
अनगिन बचपन ले चाँद खेल आये द्वारे
अनगिन जन्मों की थकन चरण दाबते थकी
पर सोये अब तक नयन न अिसके निंदियारे !

जाने किस मन मोहन की मुरली सुन निशि दिन
बैठी रहती यह नयनों के यमुना–तट पर
जाने किस नरनागर की सुधि– गागर थामें
जब देखो प्यासी खडी हुअी है पनघट पर !

होते ही साँझ सिसकने लगती साँसों में,
शशि की खिड़की पर बैठी रात बिताती है,
भोर के साथ ही गीले फूलों में छिपकर
हर अेक हवा से पता कहीं पढाती हैं !

जो बोल बोल देती बन जाता महाकाव्य,
सुन लेती जो ध्वनियाँ हो जाती है श्रुतियाँ
जो आँसू पोंछ छिड़क देता है त्रिभुवन में
वे नभ में तारे भू पर कहलाते कलियाँ !

यह चिर वियोगिनी कौन ? कहाँ से आयी है ?
किस छली श्याम की यह मतवाली मीरा है ?
यह मिट्टी की माया ? या छलना श्वासों की ?
या मेरी ही आत्मा यह मिलन अधीरा है ! ● ●

‘ लेटी भी रहो चुप चाप। बाहर आना चाहती है, चुड़ैल कहीं की ! ”

लेकिन भागी के मुँह के शब्द वायु मंडल में विलीन भी होने न पाये थे कि दरवाजा भीतर से जोर जोरों से घड़घड़ाने लगा। यह देखने के लिअे कि भीतर क्या प्रलय हो रहा है भागी ने आहिस्ता से दरवाजे की साँकल खोली और दोनों बाहों को फैलाकर अेक दीवार सी बन कर चौखट के बीच वह खड़ी हो गयी। लेकिन तभी, लपक कर, अुसके हाथ के नीचे से होकर सगुणा कमरे से बाहर भाग निकली। भागी पूछ भी न पायी थी कि “ किधर जा रही हो ” ? तब तक, सगुणा अंधेरी रात के गर्भ में, न जाने कहाँ छिप गयी थी।

यह घटना इस तरह अप्रत्याशित थी, कि अुसे देखकर, पल भर तो दोनों भाअी बहन हैरान रह गये। मुँह खोल कर एक दूसरे के सामने बुत के जैसे, वे दोनों न जाने कब तक खडे थे।

सगुणा ने दिल में पहले ही सोच रखा था कि अुसे कहाँ जाना है। तीर की तेजी से संकल्पित दिशा की ओर अुसके पैर बढ रहे थे। अितनी रात हुए, सुन सान जंगल में एक नवयुवती को अकेली देख, अचंभे में आकर अपने अुटपटाँग शोर के संगीत में झिल्ले, जुगनू आदि एक दूसरे से पूछने लगे, “ क्यों भाअी, आखिर मामला क्या है ?” पींपल की पत्तियों ने फडफडा हट कर जबाब में कहा–“ अबला जीवन, हाय तुम्हारी यही कहानी !’ मेरे दोस्तो, यह बेढब मामला तुम्हारी समझ के परे है... ” अुलुओं ने घूँ घूँ की आवाज के साथ यह कह कर अुस ‘ खंडिता ’ नवयुवती को साहस प्रदान किया कि, “ हिम्मत न हारो बेटा ! हम सब तुम्हारे साथ हैं...... और न तुम गुम राह हो... जिस पहाड़ की चोटी पर तुम जाना चाहती हो, वह यहाँ से बिलकुल करीब ही है... बढ़ी चलो .. बढ़ी चलो...”

सगुणा अुस पहाड़ की तराअी के निकट आ पहुँची। अब अुसे पहाड़ के बीच बने चट्टान पर जाना है, जहाँ अुसके अर्जुन से अुसकी मुलाक़ात होगी। अुस पर्वतीय मैदान की भूमि के अेक टुकड़े में अुसने ‘ नाचनी ’–मडुआ–की फसल की थी। दिन रात कष्ट अुठाकर अुस बंजर भूमि को अुसने सुंदर खेत में बदल दिया था। अुस खेत में ‘गोड़ी’ की थी, बीज बोये थे, दयालु बादलों ने पानी दिया था, स्नेह-मयी धरती ने हरे हरे पौधे अुगाये थे, जिन में अुसने नलाअी की थी। फिर ‘ नाचनी ’ के अुन पौधों पर भुट्टे निकल आये थे और भुट्टों में–दूध भरे दाने धरती ने अुगाये थे। जैसे जैसे दिन गुजरने लगे भुट्टे जवान होने लगे। जंगली सुअर अुन की खुशबू की आहट पा चुके थे। हिरन, बारह सिंगे, आदि अपने अतृप्त नेत्रों से अुस ताकतवर खुराक को देख गये थे। जिस फ़सल के लिअे अर्जुन ने अपना खून पसीना किया था। और अिसीलिअे अुस ने अेक झोपड़ा बना लिया था......
और कुछ दिनों के लिअे वह बन–निवासी बन बैठा था। अुसके खेत के दोनों ओर अुसके साथियों के खेत थे वे भी ‘ पर्वत पर अपना डेरा ’ डाले, वहीं पर रहते थे...

सगुणा ने पहाड़ चढ़ना शुरू किया और पूर्व दिशा दया भाव से आर्द्र होकर मुस्कराने लगी। अगहन के कृष्ण पक्ष की चौथ का चाँद, रोहिणी के साथ हँसी दिल्लगी करते हुअे पहाड़ की नुकीली चोटी पर आ खड़ा हुआ था। तमाम खेतों पर अेक सुनहला सा जादू फैल गया था। अब किसानों के पैरों तले दबकर बनी, खेत में की बलखाती पगडंडी सगुणाकी आँखों को साफ दिखाअी दे रही थी। सगुणा की ललचाअी आत्मा को तृप्त कर सके अितनी तादाद में गेंदा और गुंडी के फूल, खेतों में चारों ओर मदमाती मुस्कान के साथ खिले थे। मानों वे अुसे अपने निकट आने के लिअे, और स्वीकार करने के लिअे अनुरोध कर रहे थे। लेकिन अिस वक्त सगुणा को रुकने के लिअे अवकाश ही कहाँ था। अुस के प्रतिप्राण तो पर्वतीय मैदान में बने अर्जुन के झोपडे में जा पहुँचने के लिये छुट पटा रहे थे। एक एक कदम से वह अुस स्थान के निकट जा रही थी। पहाड चढ़ते हुअे अुसका दम फूल रहा था...लेकिन तब भी, वह पल भर भी ठहरना नहीं चाहती थी...अूपर पहुँचने के बाद ही वह विश्राम करनेवाली था।

लेकिन तभी, सहसा, तेजी के साथ वायु मंडल के रूप में परिवर्तन होने लगा। क्षितिज के किनारे किनारे दूर तक फैले हुए और अुस सुहावनी चाँदनी की गोद में आराम की नींद सोने वाले बादलों को अूपर से हुक्म मिला, 'झट् से मैदान मे अिकठ्ठा हो जाओ।' तुरंत, सर्राटे के साथ हवा चलने लगी। धावा बोलने की तैयारी में, लगभग सभी जल बादल पहाड़ की चोटी पर, झुंड के झुंड में इकठ्ठा हो गये। पहले हमले का शिकार हुआ बेचारा चाँद! प्रीतम की नगरी की यात्रा में सहायक, अुसका जो पथप्रदर्शक था, वह भी मानों गुम हो गया!

हड़बड़ा कर, चौंक कर अुसने अपने इर्द गिर्द देखा। लेकिन अुसके चारों ओर, किसीने गहरे अंधेरे की स्याह चादर तान दी थी। सगुणा डरने लगी कि जो दिशाअें खा बैठा, जिसने अितने बड़े पहाड़ को अपने पेट में समा लिया, वह सर्व भक्षी अंधेरा कहीं अुसे भी देखते देखते निगल न जाये! अुसने आर्त स्वर पुकारा,-"अर्जुन-" लेकिन अुस पुकार का जवाब दिया बादलों की घनघोर गर्जना ने!! अिसके तुरंत ही बाद टेढ़ी मेढ़ी, तिरछी चाल से आकर पानी की बौछारें अुसके मुँह और छाती को भींगोने लगीं। अेक हाथ से मुँह पर टपकता पानी पोंछते हुअे, और पानी की बौछारों से बचने के लिअे दूसरा हाथ आँखों के सामने पकड़, अेक अेक कदम पहाड़ चढते हुअे अुसके प्राण गलेको आने लगे। साथ ही साथ, अूपर से तेजी के साथ बहक कर आने वाले पहाड़ी चश्मे भी अुसके कदमों में लड लड़ाते हुअे, पहाड़ चढ़ने का अुस हिम्मत परास्त करने की कोशिश कर करने लगे। लेकिन अब किसी भी हालत में, पीछे कदम अुठाना अुसके लिये भी नामुमकिन था। पर्जन्य वृष्टि ही नहीं, शोलों की वृष्टि, पाषाणों की वृष्टि होने पर भी अुसे तो कदम आगे ही बढ़ाना चाहिये...हाँ-आगेही...

अंत में, मुश्किल के साथ अुस पर्वतीय मैदान पर वह आ पहुँची। हाँफते हुअे जाकर अुसने अर्जुन के झोपडे का दरवाजा खोल दिया। झोपड़े में भी जलधाराओं का ताडव नृत्य जारी ही था। मस्तिष्क पर लगातार होने वाले अिस आमर्षक ने अर्जुनको नींद से जगा दिया था। मिट्टी के तेल की एक ढिबरी जलाकर, झोंपडे में बचे अेक सूखे स्थान पर, हाथ पैरों को पेट में समट कर अर्जुन बैठा था।

और अैसे में, जाड़े में ठिठुरते हुअे, सिहरते हुअे, होठों की पँखाडयों को थर्राते हुअे, भीषण वर्षा में पैर से सिर तक नहाअी सगुणा अुसके सामने आ खडी हुअी थी। जगह जगह टाँके और चिथडे लगी, और तन ढँकने लिए अपर्याप्त सा वह धोती अुसके बदन से चिपकी सी नजर आ रही थी। दोनों हाथों को मोडकर अपनी दोनों बाहों को वह कसकर पकडे थी। आँधी पानीकी सतायी वह कदली आधार के लिए, लडखडाते कदमों से अर्जुन के सामने खड़ी थी।

पलभर तो अर्जुन अपनी आँखों पर विश्वास न कर सका। हैरान होकर वह झट् अुठ, खड़ा हुआ। दो डग आगे बढ़कर अुस ने कहा—

" सगुणा ? तुम यहाँ ? और अिस तरह भीषण आँधी पानी में ? "

" हाँ अर्जुन, मैं ही हूँ ! लेकिन अिस वक्त मुझ में अितनी ताकत नहीं बची है कि तुम्हें अपनी सब राम कहानी सुनाअूँ। सर्दी से मेरा कलेजा कँप रहा है..."

" लेकिन पहले तुम अपनी भींगी धोती तो बदल डालो... "

सगुणा ने झोपड़े में अेक नज़र देखा। यह तो ठीक है कि भींगी धोती बदलनी चाहिये ! लेकिन...लेकिन कैसे बदलें ? वहाँ पर दूसरी कौनसी धोती थी। जिसे वह पहन लेती। सर्दी से वह मरी जा रही थी। धोती बदलना निहायत जरूरी था। बेबस होकर नीचे सिर झुका कर अपने कंधे से अुस ने आँचल हटा दिया...और दूसरे ही क्षण...चाँदी का कड़ा पहने हुअे अर्जुन के मजबूत हाथ ने अपना आधा कंबल अुस के गिर्द लपेटकर अुस के नंगे जिस्म को ढँक डाला।

बाहर अब भी अुमड घुमड कर, बादल घिरघिर मँडरा रहे थे, जोर शोरों के साथ गरज रहे थे। रह रह कर बिजलियाँ कौंध जाती थीं। पहाड की तराअी की ओर दौडने वाले जलप्रपातों की मगरूर आवाज कानों के परदे फाड ही नहीं रही थी, तो रह कर थपेडे दे कर, आँधी के कारण टूट जानेवाले दरख्तों की, आखिरी साँस लेते हुअे, अेक अजीब सी करुण चीत्कार सुनने वालों के कलेजों को दहला भी रही थी...

लेकिन तब भी, तांडव नृत्य के साथ बाहरी दुनिया के कलेजे में आतंक पैदा करने वाले अिस सँहार भैरव के दृश्य को देखकर सगुणा तनिक भी नहीं डरी...वह अब अर्जुन की बाहों में थी...वह अब निर्भय थी,...निःशंक थी,...निरातंक थी... !

वह भीषण रात बीत गअी। आँधी पानी का वह प्रलयंकारी जोश ठंडा पड गया...और सुबह हुअी। सुबह हुअी और और वह अपने साथ अर्जुन के जीवन में एक नयी समस्या ले आयी। सगुणा अुसके यहाँ आयी थी, कुछ ही दिनों के लिये नहीं... हमेशा अुसके यहाँ रहने के लिये वह आयी थी। अब वह दुबारा अपने घर कभी लौटना नहीं चाहती थी। यह सच होने पर भी, कि सगुणा अपनी मर्जी से अुसके यहाँ आयी थी, किसी की ब्याहता स्त्री को अपने यहाँ रख लेना कानून की निगाह में जुल्म था। अिस सुस्वादु ग्रास को आसानी से हजम करना अुसको ताकद से बाहर था। वह पशो पेश में पड गया...और देर तक सोचने के बाद अुसने तय कर लिया कि अिस से पहले कि भागी पुलिस में जा पहुँचे, वह स्वयं ही सगुणा को अपने साथ लेकर कॅप्टन डिमेलो के सामने जाकर खड़ा रहेगा और फरियाद करेगा।

कॅप्टन डिमेलो वालपयी अिलाके का सर्वाधिकारी था। वह भला आदमी था, जो बड़ा ही दिलदार और रहम दिल व्यक्ति, लेकिन अिन्साफ के काम में वह बड़ा ही निष्ठुर था। अुसके सामने आने वाले तमाम मामलों का वह तुरंत अिन्साफ कर देता। बेअीमानी, अन्यायी व्यक्ति को वह कड़ी से कड़ी सजा देता। लेकिन अिन्साफ करते हुअे वह आदमियत को कभी नहीं भूलता। अर्जुन और सगुणा दोनों अुसके सामने जाकर खड़े हो गये—

" साब, यह लड़की... मेरी पडोसिन है। अिस का नाम है सगुणा, बेचारी, दुख की मारी, दर्या में डूब मरने के लिये जा रही थी। अपने गले में अिसने एक बड़ा पत्थर भी बाँध लिया था। यह तो भगवान की दया, कि मैं ठीक वक्त पर पहुँचा और अिसकी जान बचा ली। मैं ने अिसे बचा तो लिया। लेकिन साब बाद में, अिस डर से कि आगे चलकर मुझ पर कोअी झूठा अिलजाम न आये अिसे आपके सामने हाजिर करने के लिअे अपने साथ ले आया..."

अपनी कंजी आँखें सगुणाके मुख पर से हटा कर वह पोर्तुगाली साहब अर्जुन की ओर गौर से देखने लगा। बड़ी देर

अनुक्रमणिका





तक गर्दन को तिरछी किये, अेक अजीब से ढंग से, अर्जुन की आँखों की पुतालियों में वह झाँक कर देखता रहा मानों वह अुसके दिल की गहराअी तक पहुँच कर सचाअी की जाँच कर रहा था अुसके अिस तरह देखने से, दर्द के मारे अर्जुन यों तड़प अुठा कि मानों कोअी अुसके कलेज में हजारों भालों की नोकें अेकसाथ ही भोंक रहा हो। अुसकी मन गढ़न्त...झूठ की अिमारत अुस अुग्रसेन की पैनी दृष्टि के सम्मुख धाराशाअी होने ही को थी।... तभी साहब ने कहा—

"देख ही रहे हो कि मेरी मेज पर वह 'पाल्म तोरी' पड़ी है। अुसकी अेक चोट पड़ी कि पाँच ही मिनटों में अपनी हथेली, पकौड़ी के जैसी फूली फूली सी तुम्हें नजर आयेगी। सच सच बताओ...क्या बात है?..."

"हाँ साब, सच बताता हूँ...बिलकुल सच सच बताता हूँ... लेकिन...भगवान के लिअे अुस 'पाल्मतोरी' को वहीं पर पड़ी रहने दीजिअे, बात यह है साब, कि कल रात यह लड़की अपनी मर्जी से मेरे झोपड़े में आअी..." लड़खड़ाती जबान से, मुश्किल से अर्जुन अितना ही कह पाया।

दूसरे क्षण साहब बहादूर की निगाह सगुणा के मुख की ओर गअी सख्त आवाज में दुबारा वही शब्द सुनाअी दिअे—

"बताओ लड़की, सच बात क्या है? क्या कलरात तुम अपनी मर्जी से अिसके यहाँ गयी थी?"

सगुणा ने 'हाँ' में सिर हिलाया। सत्य नग्न रूप में प्रकट हो रहा था।

"क्या अिस नौजवान की बातों में आकर तुम अुसके यहाँ गयी थी?"

सगुणा ने 'नहीं' में सिर हिलाया। "तब आखिर बात क्या थी, कि अपने आदमी का घर छोड़ तुम्हें पराअे मर्द का सहारा लेना पड़ा?"

"साब," सगुणा ने कहा, "साब, वह सब मैं अपनी जबान से कह न सकूँगी! मेरे गोहत्यारे पिता ने जिस कसाअी के हाथों मुझे बेच दिया, अुसी को—मेरे आदमी ही को—यहाँ पर बुलाअिये, तब मेरे बिना कुछ कहे ही, सब कुछ आपको समझ में आ जायेगा...।"

मरी मुर्गी आग में झुलसने से नहीं डरती! सगुणा का यही हाल था। भिसी से, बिना झिझक के, साहब के सवाल का अुस ने जवाब दे डाला। साहब हैरान था कि अुस के जैसे ब्रह्मराक्षस के सामने, डट कर खड़ी हो, यह मासूम लड़की किस तरह निडर होकर जवाब दे रही थी। सगुणा की अिस निडरता पर वह दिल ही दिलमें खुश हुआ था और अब अिस मामले की ठीक से तहकीक़ात करना अुस के लिअे जरूरी था।

तुरंत पुलिस को दौड़ाया गया। दो घंटे के भीतर ही अुन्होंने मर्तू को साहब के सामने लाकर हाजिर कर दिया। साहबको देखकर, मर्तू को काटो तो खून नहीं! मारे घबड़ाहट के अुसकी तो घिग्गी बँध चुकी थी। यह तो अुसकी खुश-किस्मती थी कि हरदम अुसकी हिंमत बढ़ाने वाली भागी इसवक्त भी अुसके साथ थी...वर्ना अुसके तो डर के मारे वहीं के वहीं प्राण ही निकल जाते। साहब ने अुस मारियल टट्टू की ओर एक नजर डाली।

"क्या यही है तुम्हारा आदमी?" संदेह भरे स्वर में अुसने सगुणा से पूछा। अिस तरह का अधेड़ अुम्रवाला कंकालसा व्यक्ति अैसी नाज़नीन नवयुवती का पति हो सकता है अिस बात का, पोर्तुगाल की आबो-हवा में पले अुस साहब को यकीन नहीं आ रहा था। लेकिन अुसके पूछने पर सगुणा ने 'हाँ' में सिर हिलाया था, अिस लिये दूबारा अुसने पूछा, "लड़की, क्या यह बात सच है कि यही व्यक्ति तुम्हारा आदमी है?"

अिस बार सगुणा के बदले जवाब दिया भागी ने!

"हाँ साहब, सच है; बिल्कुल सच है!! यह मेरा भाअी...अिसका खसम है...और यह राँड़ अिसकी मेहरिया है। कलमुँही कलरात अपने मर्द के घर से भाग निकली। अिसे अपना आदमी अच्छा नहीं लगता...यह तो यार के साथ—अिस अर्जुन के साथ गुलछर्रे अुड़ाना चाहती है..."

लेकिन साहब के अग्नीय नेत्रों की ओर ध्यान जाते ही भागी जो कुछ भी आगे कहना चाहती थी, मानों भीतर घुट गया।

"अच्छा तो मर्तू, मैं जानना चाहता हूँ कि तुम्हारी अुम्र क्या है?"

"म...म...मैं क्या जानूँ साहब, अितना मुझे याद है कि जिस वक्त राणा का फ़साद हुआ था, अुस वक्त मैं कोअी बीस अेक साल का था।"

"तो अिसका मतलब साफ़ है...राणा का फ़साद हुअे बीस साल हो चुके हैं...और तुम्हारी अुम्र चालीस साल की हो चुकी है।"

"हाँ साब, अितनी ही होगी..."

"तब क्या अितनी कम अुम्रवाली लड़की से ब्याह करते हुअे तुम्हें शर्म भी नहीं आयी?"

"लेकिन...लेकिन साब, ब्याह तो मैंने नहीं...मेरी अिस बहन ने किया...मैंने लाख मना किया साब! लेकिन अिसकी...अिस भागी की जिद के सामने मुझे मजबूर होना पड़ा... मैं बेकसूर हूँ साब..."

साहब सब कुछ भाँप गया। प्रश्नार्थक मुद्रा से अुसने भागी की ओर देखा।—





"हाँ साब, मैंने अिसका ब्याह कर दिया...लेकिन मुफ्त में नहीं, अिस मुँहजली के बाप को मैंने छना छन सौ सूरती रुपये गिन कर दिये और तब कहीं अपने भाई के साथ अिसका ब्याह कर पायी..."

"ओह! यह बात है। तब तो यू कहना चाहिअे कि तुमने अिसे खरीदा है। तो क्या, किसी दिन अिसे हल से भी जोता था या नहीं—?" साहब ने कडुवाहट भरे व्यंग्य के साथ पूछा। पल भर के बाद अुसने सगुणा से कहा, "सुनो लडकी, तब तो तुम अिनकी गुलाम हो... और सुनो, अब चुपचाप अिनके साथ घर चली जाओ। अगर ये लोग तुम्हें हल में भी जोतना चाहें तो अिनका हुक्म तुम्हें तुरंत अमलमें लाना होगा...और अगर तुम्हारा यह आदमी तुमसे कहे तो अुसे पीठ पर लाद कर बिना जरा भी चूँचपड किअे, तुम्हें अुसे बाजार ले चलना होगा..."

भोली भाली सगुणा की समझ में नहीं आया कि साहब यह सब व्यंग्य से कह रहा है। साहब का फ़ैसला सुनकर अुसका कलेजा मुँह को आ गया। आर्त स्वर में अुसने कहा, "साब, आप मेरे माअी बाप हैं। चाहे तो मुझ अपनी 'बंद खनी" [जेलखाने] में ठूँस दीजिये... लेकिन अिन के साथ जाने के लिये मुझे मजबूर मत कीजिये। वर्ना आप के चरणों में सिर पटक कर मैं यहीं...मर जाअूँगी! भला अिसे भी कोअी आदमी कहेगा? क्या दुनिया की कोअी लड़की अिसे अपना मर्द मान सकती है? जिंदा लड़की की तो बात ही छोड़िये साब, लेकिन कोअी लाश तक पति के रूप में अिसका स्वीकार नहीं कर सकती...!"

साहब अपनी भूरी मूछों के नीचे मुस्करा पड़ा। अुसे सगुणा पर तरस आ रहा था। लेकिन वह भी तो कानून के खिलाफ अिन्साफ़ कैसे दे सकता था। बिना तलाक के मर्तू का सगुणा पर का हक, वह अस्वीकार नहीं कर सकता था। यूँ ही अुसने मर्तू से और अेक प्रश्न पूछा—

"क्या तुम्हारा ब्याह रजिस्टर किया गया है—?"

"नहीं साब!"

साहब की आँखों में अेक दीप्ति सी झलकने लगी। सहसा वह गरज पड़ा—

"तब यह ब्याह हुआ कैसे?"

"ब्याह यहाँ नहीं हुआ था साहब...गोवा की सरहद के बाहर—"

सहसा समस्या सुलझ गअी। साहब ने अपने दिल में जो फैसला तय कर रखा था, वह कानून की चौखट में ठीक बैठ गया। सख्त शब्दों में अुस ने कहा,—

"यह ब्याह पोर्तुगीज कानून को मंजूर नहीं। अिस जुर्म पर यदि चाहे तो मैं तुम्हें सजा भी दे सकता हूँ। अेक मासूम लड़की को, अुस की मर्जी के खिलाफ़ अपने घर में तुमने जबर्दस्ती ला रखा, यह इल्जाम तुम पर लग सकता है। लेकिन मैं नहीं चाहता कि तुम्हें जेलखाने भेज दूँ। मैं ने तुम्हें मुआफ़ कर दिया...तुम दोनों माअी बहन अिसी वक्त मेरी आँखों से दूर हो जाओ, —निकलो यहाँ से"

स्त्री से हाथ धोना पड़ा अिसका दुःख होने को अपेक्षा, खुद के बेदाग छुट जाने पर मर्तू को खुशी ही ज्यादह हुअी। उद्वेग, क्रोध अिन सब के अुबाल आ रहे थे भागी के पेट में! मुश्किल से कचहरी की सीढ़ियाँ उतर ते—वापस लौटते हुए, साहब के शब्द अुसे सुनाअी दिये—

"सगुणा अब तुम अपनी मर्जी के आदमी के साथ ब्याह कर सकती हो।"

"तो साब, क्या मैं अिस के साथ भी ब्याह कर सकती हूँ?" अर्जुन को लक्ष्य करते हुए सगुणा ने पूछा। अुसकी उत्सुकता चरम सीमा को पहुँची थी।

"ओह! तो अब तुमने अपनी सची ख्वाहिश जाहिर की। खैर, अगर यह काला शैतान तुम्हें पसंद आया हो, तो जरूर अिसीसे ब्याह कर लो, ताकि जब तुम पानी में डूब मरना चाहोगी, तब यह तुम्हें अधिकार के साथ बचा सकेगा। क्यों न अर्जुन?"—

साहब ठठा कर हँसने लगा। अपनी छुटाअी को और एक बार अुसे छेड़ते देख, अर्जुन सलज्ज भाव से मुस्कराने लगा।

भागी और मर्तू वेलसअी के पुल के निकट पहुँचे भी नहीं थे कि अुनका पीछा करते हुअे ये दोनों वहाँ तक जा पहुँचे सगुणा अब धरतीपर नहीं चल रही थी। अुसके तो जैसे पर निकल आअे थे और वह आसमान में अुड़ाने भर रही थी। मर्तू की मनहूस सूरत की ओर देख कर, दुबारा अेक बार जबान बाहर निकाल कर सगुणा ने अुसे मुँह चिढ़ाना चाहा। तभी बनावटी गुस्से से अर्जुन ने कहा—

"अब चुप भी रहो सगुणा! वर्ना अेक थप्पड़ कस दूँगा! भला मरे को मारना यह भी कोअी भले आदमी का काम है!" अुसे कंधे से खींचकर अर्जुन ने आगे की ओर ढकेला। दूसरे ही क्षण वे दोनों भी वहाँ से खुशी खुशी चल दिये। अब मर्तू अपनी बहन को सांत्वना दे रहा था—

"अब बार बार क्या देख रही हो अुसकी तरफ़! जाने भी दो चुडैल को! पाप कटा! अैसी चमकी स्त्री की मुझे भी कोअी जरूरत नहीं......"

यह सुनते ही मूर्त के मुँह के सामने साथ मटका कर भागी अुस पर अुबल पड़ी... "तुम्हारे मुँह को आग लग जाये मुरदार! किस लिये तुमने खसम की ज़िंदगी पाअी! अरे, अिस से तो अच्छा होता कि भगवान तुम्हें पत्थर की ज़िंदगी देता। ताकि तुम कमसे कम किसी बाँध या तालाब की दीवार खड़ी करने के तो काम आते...

अनुवादक : माणिकलाल परदेशी



सुन्दर अक्षर भला कैसा हो?
अक्षर मदमाती युवती के कुचोंकी भाँति
समानाकार, वर्तुल, घना और परस्पर विलग्न हो!

तुम मुझे कितना चाहते हो
अिसे मैं जानती हूँ।
परन्तु
बदनाम मैं, तुम्हारे
पवित्र प्रेम को कैसे धारूँ ?
क्या करूँ—
मुझपर छायी हैं



पाप की छाया

— विरेन्द्र मोहन

पाँच वर्षों के बाद आज नीलिमा अतीत की मधुरस्मृति-सी सहसा आ पहुँची है। निश्चय ही, अब वह नीलिमा नहीं, श्रीमती नीलिमा दत्त है। और सरोज भी मि. सरोजकान्ति सरकार, अघोरबंधु बैंक की धनबाद शाखा के सुयोग्य मैनेजर !—

काफी देर तक मौन रहने के बाद दोनों के मन में बर्फ के पर्त-सी जमी कुण्ठा पिघलने लगी। दोंनों ने एक दूसरे के विगत का विवरण आँखों ही आँखों सूचित किया।...पर कुण्ठा की बर्फीली पर्तों के पिघलाव के साथ मन का अवांछित अवरोध जल्दी दूर नहीं हो रहा था; अथच अुन्मुक्त प्रवाह भी आकांक्षा अुन्मुक्त समतल भूमि की शोध में व्यग्र था।...

मि. सरकारने अपने को यथा-साध्य संयत करते हुए औपचारिक बातचीत समाप्त की। नीलिमा भी संक्षेप में अुत्तर देती और प्रति-प्रश्न करती रहीं। पर औपचारिकता का आडम्बर अुनके वास्तविक प्रश्नों को अुपयुक्त विकास-मार्ग नहीं दे पा रहा था। दोनों यही चाहते कि मैं कुछ अधिक सुन पाता, पर जबान कहती, 'मैं कह पाँअू तो किस तरह !"

कुछ देर निदारुण मौन रहा। प्रश्नों की अेक लम्बी तालिका मन ही मन बन बिगड़ रही थी, पर स्वर कुण्ठित हो अुनके शब्द-रूप लेने में बाधक था। फिर अेक बार मि. सरकार ने साहस बटोरा, गले के अटकाव को साफ किया और अपने आवेश को संयत करते हुअे पूछा-

"तुम यहाँ कब से हो ?"

"छः-महीने से अधिक हुआ !"

"तुम्हारे पतिदेव ?"

"यहीं हैं; अपने पैतृक घर पर।"

"...तो तुम्हारी ससुराल...?"

"यहीं है।..."

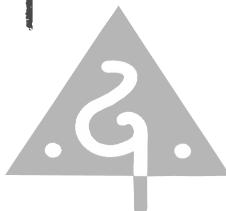
"कभी बताया नहीं था।"

"......"

मि. सरकार ने यह प्रश्न असावधानीसे ही कह दिया था। नीलिमा के मौन से अुन्हें ध्यान आया, अुस के विवाह के बाद दोनों मिले ही कब ? अतः



अनुक्रमणिका



संयत हो अुन्होंने अुलटा प्रश्न किया— " ...वे तो कहीं कलकत्ते में ही नौकरी करते थे न ?

" छोड़े हुअे दो साल हो गये..."

"...तुम कुछ नहीं करती ?..."

" क्या करूँ ? पत्नी धर्म निभाती हूँ, अुनकी सेवा शुश्रूषा ही करती हूँ

" सेवा—शुश्रूषा ?..."

" हाँ, वे यक्ष्मा से पीड़ित हैं। विवाह के कुछ ही दिनों बाद अुनका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा था, यों तो अच्छा पहले भी नहीं था।..."

मि. सरकार के करुणार्द्र मन में अुपचेतन-सुप्त अीर्ष्यालु पुरुष जाग पड़ा—"...विवाह के पूर्व तुम्हें यह मालूम नहीं था...यानी तुम्हारे पिता-भाअी आदि ने अिस पर ध्यान नहीं दिया था।"

नीलिमा मर्माहत हुअी जरूर, पर अपने को छिपाते हुअे कहा— "मालूम था।"

" फिर...?"

" भाग्य ही मान लो!" नीलिमा का स्वर कुछ अधिक आविष्ट था।

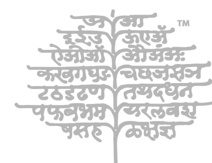
मि. सरकार का अीर्ष्यालु मन मानों किसी तीव्र विष-दंश से शांत हो गया। अुन्होंने साहस कर फिर वार्तालाप का सूत्र जोड़ा—" कलकत्ते से अधिक यहाँ चिकित्सा की सुविधा नहीं है, फिर भी—?"

" वहाँ रहते कब तक ?...नौकरी अुनकी कब तक रही, रही। तीन महीने तक कम्पनी-वालों ने अुनके खाट पकड़ लेने पर आधी तनख्वाह दी, किसी तरह काम चल जाता। अुसके बाद मैंने बाध्य होकर खुद नौकरी कर ली, एक स्कूल में। अिस से अुनकी सेवा शुश्रूषा में असुविधा होने लगी।...मैंने अपने सारे गहने बेंचे, यथा-साध्य पिताजी भी आर्थिक सहायता देते रहे—सब मिला-जुला कर अुनकी चिकित्सा करती रही। कुछ अच्छे भी होने लगे थे। अुम्मीद थी कि कुछ महीनों में स्वास्थ्य सुधर जायगा।...रुपये बहुत खर्च होते थे—दवा, डॉक्टर, सुअियाँ, फल! सब किसी तरह पूरा करने के लिये रुपये की जरूरत थी। अस्पताल जाने को वे तैयार न थे।...निदान मैंने नौकरी के साथ ही तीन ट्यूशन भी कर लिये। आखिर और करती क्या ?...पिताजी जबतक रहे, वे आकर कुछ दिनों तक रहा करते। पर अुनकी वृद्ध काया मेरे कष्टों को अधिक दिन तक न झेली सकी, उन्होंने भी मुझे निस्सहाय कर दिया।...भैया बेचारे की जितनी तनख्वाह है, अुनसे वे अपने ही बाल-बच्चों को अच्छी तरह नहीं रख पाते, मुझे क्या मदत करते ?... डेढ़ साल तक मैंने अिसी तरह चलाया, अुनकी सेवा में भरसक चूक न होने दी। पर स्कूल और ट्यूशनों में बहुत अधिक समय चला जाता। अिस से मैं अधिक समय अुन्हें नहीं दे पाती, वे बहुत चिढ़ते। मुझे कअी बार बहुत कुछ कह भी देते। अुनकी मनःस्थिति तथा आर्थिक स्थिति दोनों का ध्यान रख कर मैं चुपचाप सह लेती।...पर धीरे धीरे अुनकी मानसिक स्थिति और खराब होती गअी। परिणामतः, सुधरता हुआ स्वास्थ्य, फिर गिरने लगा। मेरा स्वास्थ्य भी अिन सब परिस्थितियों का अब साथ नहीं दे रहा था।...अंततः अेक दिन अुन्होंने अपने स्वास्थ्य के पुनः खराब होने का कारण मेरी नौकरी को ही बताते अुए कहा—" नीलिमा, अगर तुम मुझे जिलाना चाहती हो, तो नौकरी छोड़ दो। सारे दिन भर अकेले पड़े पड़े मेरी तबीयत और खराब हो रही है—तुम तो अुधर अपने दोस्तों में अपना जी बहला लेती हो...।"

" अिस क्षीण अुछ्वास के बीच दबी हुअी आग की तपिश मैं पहले भी महसूस करती थी। पर अुस दिन जब अुन्होंने स्पष्ट कह ही दिया, तो मैंने भी सोचा, न जाने क्या हो ? कहीं अैसी वजह अुनका स्वास्थ्य फिर बिगड़ रहा हो ?...अतः, मैंने अनिच्छा होते हुअे भी स्कूल में त्यागपत्र दे दिया। शिक्षक-शिक्षिकाओं ने मुझे बहुत समझाया, पर मैं मजबूर थी। स्कूल छोड़ने के कुछ ही दिनों बाद ट्यूशन भी छूट गये। दवा और फल तो दरकिनार, दोनों जून भात जुटाना मुश्किल पड़ने लगा। गहना तो नाममात्र का ही रह गया था, जो था वह भी बिक गया। कुछ दिनों में घर के आवश्यक बर्तन बासन और अन्यान्य सामान भी बेंच देने पड़े। अंतमें अब कोअी आधार नहीं रहा, मैंने यहाँ आने का निश्चय किया।...दूसरा करती ही क्या ? यहाँ कम-से-कम घर का किराया तो नहीं देना पड़ता।...अुनकी हालत भी अब खराब ही है।..."

कह कर नीलिमाने अेक दीर्घ अुच्छ्वास लिया, मानो सरोजदा 'से सबकुछ कहकर अुसने अपने मन का भार हलका कर लिया मि. सरकार की आँखें अिस अविचल नारी में कुछ ढूँढ़ने की कोशिश कर रही थी।...कितना अंतर आ गया है अिसमें! कहाँ वह पूर्व की चंचल नीलिमा और कहाँ यह स्थिर गम्भीर नारी! अतीत-समृद्ध कितनी ही स्मृतियाँ मि. सरकार के मन में घुमड़ने लगीं।

नीलिमा, अुसका छोटा-सा सुसंस्कृत परिवार—पिता, माता, भाई। माता की मृत्यु के बाद ही सरोज के परिवार से नीलिमा का घनिष्ठ परिचय हुआ था।... सरोज अुस समय स्कूल के अूँचे दर्जे का विद्यार्थी था। मातृहीन नीलिमा सरोज की माँ के अकृपण स्नेह की सहज ही अधिकारिणी बन गयी थी। स्कूल से आने के बाद सरोज नीलिमा को पढ़ाता। अुसी की प्रेरणा से नीलिमा ने मैट्रिक की परीक्षा दी थी। ...अुस समय वह बी. ए. का छात्र था। चिरकालिक सान्निध्य ने दोनों के मन में सहज स्नेहाकर्षण का जन्म तो न-जाने कब का दे दिया था तारुण्य के आवेग ने दोनों को कअी बार आवेशाकुल भी किया। पर चंचल नीलिमा ऐसे अवसर पर अपने को अत्यंत कठोरता से संयत कर लती। सरोज को अिससे कितनी बार ठेस भी





अनुक्रमणिका

लगी होगी, पर नीलिमा की कठोर दृढता नहीं टूटी।... अत्यंत सामीप्य में जब दोनों की आँखों में रक्त के अुत्ताप की छाया झाँक उठती, सरोज के अंग-प्रत्यंग में उत्तेजना की लहर दौड जाती और वह चाहता कि नीलिमा के उभरे वक्षजों की मध्यवर्ती रिक्तता में अपने को डुबो देता—उसके गौर, सुडौल बाहुओं के आश्रय में अपनी अुद्दामता को विश्राम दे देता, अुसकी विस्फारित भावुक आँखों में अपने मन की माधुरी के चित्र आँक देता...और अुसके रक्तिम, स्पंदित अधरों को अपने हृदय की समस्त संचित अभिलाषा पिला देता—अुस समय नीलिमा अपने को बिलकुल समेट लेती, मानों मानवीय आवेशों का सारा कोष ही अुसका रिक्त हो। सरोज के मन में कड़वाहट भर जाती, नीलिमा विषाद-पूर्ण नेत्रों से सरोज की अभ्यर्थना करने लगती।...

पर अेकदिन जब सरोज ने अपने को नहीं रोक पा कर पूछ ही दिया—"क्या तुम मुझे नहीं चाहती, नीलिमा?..." नीलिमा की आँखें छलछला आयी थी। कदाचित् अपने आँसू पोंछने के लिअे कमरे से बाहर चली गयी थी। सरोज हतवाक् वहीं बैठा रहा। थोड़ा देर बाद जब वह अपने चेहरे पर कृत्रिम हँसी लाती हुअी आकर बोली—"सरोजदा', जरा बाजार चलो, कुछ खरीदना है!"

सरोज भारी मन से नीलिमा के साथ हो लिया था। रास्ते में बहुत देर तक दोनों मौन ही रहे। अंत में नीलिमा ने ही मौन भंग किया था—

"सरोजदा,' तुम बुरा मान गये क्या?..."

"किस बात का?..." सरोजने आत्मगोपन किया।

"अच्छा, चलो पास में बैठ कर बातें करेंगे।" नीलिमाने चंचलता पूर्वक सरोज की ओर देख कर कहा था।

पास में दोनों आमने-सामने बैठे थे! नीलिमा अपने मन के विषाद को बरबस छिपाती हुअी सस्मित बोली थी—"...तुम मुझे बहुत प्यार करते हो न सरोजदा!"

अिस अप्रासंगिक प्रश्न पर सरोज मौन ही रहा।

नीलिमा कहती ही रही—"...तो मेरी अेक बात मानोगे?"

"क्या?" सरोजने साश्चर्य कहा था।

"तुम अपना ब्याह कर लो!"

"मैं कब ना कहता हूँ।" सरोज ने प्रश्नता पूर्वक कहा था।

"मैं अुसे खूब सजाअूँगी-सँवारूँगी। अुसकी बलैया लूँगी।...तुम बड़े अच्छे हो सरोजदा'! मेरी प्रसन्नता के लिअे अितना तुम जरूर करोगे। माँ की भी कितनी साध है...।...

नीलिमा जितने ही अनाविष्ट भावसे यह सब कहती जा रही थी, सरोज के हृदय में वैसे ही शल्यसा चुभता जा रहा था। लगता था, अब वह बेहोश जायगा। अंततः अुस ने अपने को बड़ी कठिनता से संयत करते हुए कहा था- "नीलिमा...!"

"सरोजदा,' मेरी बड़ी अभिलाषा है।" नीलिमा ने सरोज के चरण छूकर अपनी आँखों से लगाते हुअे कहा था।

"नीलिमा...? आज तुम्हें हो क्या गया है?... तुमने मुझे पहले ही क्यों नहीं कहा था कि, तुम मुझे नहीं चाहती...।"

"नहीं चाहती?... यह तुम कहते हो? तुम्हें मैं चाहती हूँ कि नहीं—यह मैं नहीं बता सकती!..."

"फिर...आज यह प्रस्ताव?"

"क्यों कि, मैं तुम्हें सुखी देखना चाहती हूँ।..."

"मेरे सुख-दुख से तुम्हें क्या लेना-देना है?" सरोज के स्वर में प्रताड़ित पौरुष का रोष बोल रहा था।





अनुक्रमणिका

" ...तुम पर सम्पूर्ण अधिकार है।...तुम्हारे सुख-दुख का दायित्व मैं अपना समझती हूँ। " नीलिमा की वाणी में अधिकार की दृढ़ता थी।

"...मेरा तो तुम पर कोअी अधिकार नहीं है न ? "

" मैं ही सम्पूर्णतः तुम्हारी हूँ...। मैं जो कुछ भी हूँ, तुम्हारे ही निर्माण हूँ। "

" फिर, यह अवरोध क्यों ? "

" अवरोध नहीं, यह मुक्ति का आह्वान है। "

" काहे की मुक्ति ?...मैं कुछ नहीं समझ रहा हूँ। "

" स्नेह के पवित्र प्रवाह की। "

" मेरी समझ में नहीं आ रही हैं तुम्हारी दार्शनिक बातें। "

" मुझे लज्जित मत करो, सरोजदा ' ! मैं जो कहती हूँ, तुम्हारे ही शब्दोंमें कहता हूँ। मेरे शब्द, मेरे स्वर ओर मेरी बाणी सब तुम्हारी ही है, तुम अुसे नहीं समझोगे, तो कौन समझेगा ?... "

" तुम मुझ से चाहती क्या हो ? "

" मैं- ? " नीलिमा हँस दी !

" परिहास कर रही हो मेरा ? "

" तुम्हारा परिहास करूँगी ' सरोजदा ' ? "

" तो फिर... ? "

"......"

" सरोजदा ' !...मैं तुम्हें चाहती हूँ, तुमसे प्रेम करती हूँ—आजीवन करती रहूँगी। पर तुम..."

" तुम मुझसे दूर हटना चाहती हो ! "



" अपनी, प्राणप्रिया के साथ तुम संयोग चाहते हो अथवा वियोग ? "

यदि अैसा किसीने मुझे पूछा तो मैं तुरन्त कहूँगा " वियोग ही अच्छा है, संयोग नहीं ! " क्यों कि समागमकी स्थितिमें मैं केवल अुसी अकेली को पाअूँगा परन्तु जब विरह होगा तब तो वह मुझे विश्वके के प्रत्येक अङ्ग प्रत्यङ्गमें दीखने लगेगी।

* * *

" नहीं, तुम गलत समझते हो ! "

" ठीक समझता हूँ, बिलकुल ठीक ! "

" बिलकुल गलत ! ... "

" नीलिमा, अिस तरह मेरी भावनाओं के साथ खिलवाड़ मत करो ! "

" तुम्हारी भावनाओंका मैं हृदय से समादर करती हूँ। पर...मैं मजबूर हूँ। मैं तुम से... "

" सोच लो। अच्छी तरह सोच लो। "

" सरोजदा, मैं खूब सोच कर कह रही हूँ। " नीलिमा के स्वर में विरक्ति थी।

" ... "

" ... "

● ● ●

अुसके बाद नीलिमा सरोज से दूर-दूर रहने लगी थी। सरोज स्वयं अपने से निराश रहने लगा था। कुछ दिनों बाद वह अपने एक सम्बन्धी के यहाँ इलाहाबाद चला गया। वहाँ से दो साल बाद पिता की मृत्यु के समय लौटा था। तो सुना नीलिमा के घरवाले मोहल्ला छोड़-कर दूसरी जगह चले गये। यह भी सुना कि, नीलिमा की यहाँ काफी बदनामी हो चुकी थी, अिसकी वजह उन्हें मोहल्ला छोड़ना पड़ा। सरोज के मन को एक और ठेस लगी।..." तो क्या नीलिमा अुच्छृँखल भी हो सकती है ? " " अवश्य, " अुस के मन ने ही समाधान किया —" नारी नग्न सेक्स के सिवा और है ही क्या ? "

पिता के कुछ दिनों बाद माँ भी बीमार पड़ी और कुछ ही दिनों बाद चल बसी। अिस सिलसिले में सरोज को वहाँ लगभग छः महीने रहने पड़े। पिता की मृत्यु के बाद माँ के नाम कराये गये बीमे के पाँच हजार रुपये अुसे ही मिले। अिसी समय नीलिमा के विवाह का निमंत्रण अुसके नाम मिला, साथ ही विवाह के पूर्व अेक बार अवश्य मिल लेने के आग्रह के साथ स्वयं नीलिमा का पत्र भी। चाह कर भी वह वहाँ जाने से अपने को नहीं रोक सका। अुसकी शादी में अुपहार देने के लिअे, अेक सोने का हार भी खरीदा...अुस दिन सरोज को नीलिमा देखती ही रह गयी थी, मानों अुसमें कुछ ढूँढ़ने की कोशिश में हो। बाद में नीलिमा ने ही मौन तोड़ा था—" सरोजदा, ' तुम आगये ! मैं जानती थी, तुम अवश्य आओगे !..."

"नीलिमा, मुझे पहचान लेती हो ?" सरोज के स्वर में तीव्र व्यंग्य था।

नीलिमा ने आँखों में आँसू भर कर हँस दिया था। फिर सरोजने पूछा था—" जीवन-सहचर तुमने स्वयं पसंद किया होगा ?..."

" हाँ ! "

" संतुष्ट हो ?..."

" हाँ ! "





अनुक्रमणिका

* * *

सरोज को अिच्छा हुअी कि मोहल्ले में अुसके बारे में सुने हुअे समाचार के सम्बन्ध में कुछ पूछे, पर न पूछ सका। कुछ देर के बाद नीलिमा ने साहसपूर्वक पूछा—

"तुम अपनी जीवन-सहचरी कब चुन रहे हो?"

सरोज की देह में जैसे आग छू गअी—"जरूरत नहीं समझता।"

"गलत समझते हो।" नीलिमा की चंचलता जैसे मुखर हो अुठी।

"जो हो! अच्छा अब चलूँ!"

"शादी के दिन आओगे न?"

"नहीं, मुझे कल ही अिलाहाबाद चला जाना है।" सरोजने रुक्षस्वर में कहा।

"क्या, मेरा अब अितना भी अधिकार नहीं कि रोक सकूँ?" नीलिमा का स्वर आर्द्र था।

"मजबूरी है!...हाँ, यह तो मेरी ओर से तुच्छ उपहार।" कह कर अुसने जेबसे निकल सोने का हार दे दिया।

आँखों से लगाते हुए नीलिमा ने डिब्बा खोला और शून्य दृष्टि से सरोज की ओर देखते हुए बोली—"इतना खर्च करने की क्या जरूरत थी?...मेरे लिए कुछ छोटा-मोटा ही उपहार लाते।...यों तो मैं ही सम्पूर्णतः तुम्हारी...।" कह कर नीलिमा मौन हो रही।

सरोज ने सकरुण नेत्रों से अुसकी ओर देखते हुए कहा—"कितनी बार तुम्हारी वेणी में बकुल के फूल गूँथ चुका हूँ, आज यदि अिस हार को भी स्वयं पहना पाता......।"

नीलिमा ने स्वर में उल्लास लाते हुए कहा—"लो, पहना दो।"

सरोज ने काँपते हाथों गले में हार पहना दिया और आवेशाकुल दृष्टि से अुसकी ओर निहारता रहा। नीलिमा को लगा, अब वह मूर्च्छित हो जायगी। अुसकी आँखें सहसा मूँद गयीं। सरोज अुसे अपनी आँखों से पी जाना चाहता था...पर किसी अननुभूत कुण्ठाने अुसे जड़ बना दिया था। अधिक देर वह नहीं खड़ा रह सका, कहा—"अब जाने दो नीलिमा!..."

भरी-भरी आँखों से देखते हुअे नीलिमाने सरोज के चरणों की धूलि ले ली।"

पाँच वर्षों पूर्व की यह आकृति मि० के सरकार सामने सजीव हो अुठी। अिस अर्से में अुसने भी अपने जीवन को किस-किस प्रवाह में नहीं डाला; पर न डूबा और न अपने को डूबने से बचा सका।... नारी के माँसल शरीर की गर्मी अुसने रुपये और अपने व्यक्तित्व के प्रभावसे बहुत बार महसूस की होगी; पर शीतलता की छाँह अुसे कभी न मिल सकी। अुसकी दीदी ने बहुत चाहा, वह विवाह करके जीवन को व्यवस्थित कर ले; पर वह हमेशा कहता—"दीदी, जीवन के प्रवाह को मुक्त ही रहने दो।...अपने भाई को जबरदस्ती मृत्यु मुख में धकेल न दो।"

नीलिमा की संक्षिप्त जीवन-गाथा सरोज के सामने विस्तृत बन गअी।...मि. सरकार को यह ध्यान भी नहीं रहा कि, आफिस

का काम बहुत बाकी है। मासिक बैलेंस-शीट सामने पड़ा था।...अिसी समय किरानी ने केबिन के द्वार पर आवाज दी—

"आ सकता हूँ, सर?"

"कम अिन्" कहते हुअे मि. सरकार मैनेजरी रोब में गम्भीर हो बैठ गये। किरानी से एकाद बातें पूछ अुन्होंने कहा—"देखिये, मैं अभी जरा बाहर जाऊँगा! चपरासी को भेजिये, देखे शोफ़र है कि नहीं!"

"अच्छा, सर!"

"कहाँ जाओगे अभी?" नीलिमा ने साश्चर्य पूछा!

"डेरे चलूँ!...चलोगी न?"

"सरोजदा' अेक बड़े आवश्यक काम से तुम्हारे पास आयी थी...?" नीलिमा ने ससंकोच कहा?

"...कहो!..." वहीं कहना तो क्या हर्ज है?"

"नहीं, यहीं का काम है!"

"तो झिझकती क्यों हो?..."

"...बात यह है, सरोजदा,' कि अब दूसरा कोअी चारा नहीं देख आज तुम्हारा ही धन तुम्हारे बैंक में गिराह रखने आयी हूँ।... अुनकी हालत आज बहुत खराब है।...आज तक अिसे अपने प्राणों के जतन रखा था, पर आज मजबूर हूँ।...अिसीलिअे, तुम्हारे पास आयी हूँ।" कहकर नीलिमा ने सोन का हार मेजपर रखा।





सरोज ने अुसे बिना अुठाये ही कहा—" नीलिमा, मेरा तिरस्कार करने में तुम अब भी बाज नहीं आती ! ... रख लो, चलो, मैं तुम्हारे साथ चल रहा हूँ, तुम्हारे घर ! "

नीलिमा के होंठ कुछ कहने को फड़फड़ा रहे थे, पर शब्द बाहर नहीं निकल सका।

तब तक चपरासीने आकर खबर दी—

" हुजूर, मोटर तैयार है। "

" चलो "

नीलिमा चुपचाप आगे-आगे चल दी। शोफर को विदा कर, मि. सरकार खुद मोटर ड्राइव करने लगे रास्ते में नीलिमाने कहा-" सरोजदा' वे बड़े चिड़चिड़े स्वभाव के हो गये हैं।...कहीं तुम्हारा जाना बुरा लगे अुन्हें, तो ? "

" क्यों ? "...बुरा लगने की अिसमें क्या बात है ?...चलो, डाक्टर को भी साथ लेते चलें।..."

" चलो, पहले अुन्हें देख लें, तब फिर जैसा वे कहेंगे, किया जायगा। रवा और फल लेते चलें ! "

* * *

" मैं कअी बार कह चुका हूँ कि, अपने दोस्तों को तुम अपने ही आँचल में समेटे रखो, मेरे पास अुन्हें लाने की क्या जरूरत है ? " और तुम अुनके साथ नहीं जाओगी, तो क्या मेरे साथ रहोगी ?... दरवाजे पर खड़े मि. सरकार के कानों में मानों किसीने जलती हुअी सुलाख घुसेड़ दी। अुनके सामने त्यागमयी नीलिमा और अुसके अस्थिशेष पतिदेव के अनेकों संस्करण आने लगे।... अुनकी समझ में नहीं आ रहा था कि, नीलिमा ने क्या देखकर अिस शिशिर दत्त को अपना जीवन सहचर चुना था ? और अब भी क्यों अिस गतप्राण मनुष्य के लिए वह अपने को इस तरह तिल-तिलकर गाल रही है ?...वह अभी भी सुंदर है, अभावने अुसके शरीर को दुर्बल कर दिया है, अुसकी सौंदर्य-माधुरी ज्यों-की-त्यों है !...वह चाहे, तो नौकरी भी अुसे मिल सकती है, फिर यह निरंतर की घुटन क्यों ?...सतीत्व की मर्यादा का अुसे बड़ा मोह है, सो कहा नहीं जा सकता।...फिर यह सब वह क्यों कर रही है ?...तो क्या, अपनी आत्मा को शांति देने के लिए, अपने कृत अपराधों का दंड स्वतः भोग रही है !... मि. सरकार अपने ही मनसे अुलझे हुए नीलिमा के बाहर आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। अुन्होंने अुसके पति से औपचारिक बातचीत जरूर की, पर वह भी अुन्हें नहीं अच्छा लगा। अुन्हीं के सामने वे नीलिमाके पति, अुसे अश्राव्य गालियाँ भी देने लगे थे। मि. सरकारका सुसंस्कृत मानव इस विद्रूपको नहीं बरदाश्त कर सका। वे उठकर बाहर चले आये। कुछ देर बाद नीलिमा उनके सामने सस्मित आ खड़ी हुई- " मैं अपने यहाँ तो तुम्हें चाय भी नहीं पिला सकती-। चलो, अब तो तुम जाओगे न ? "

इतने में भीतरसे जोर से खाँसने और रक्तके वमनकी आवाज आयी। नीलिमा भीतर चली गयी। मि. सरकार दिङ्मूढ़ से वहीं खड़े रहे। कुछ देर बाद वह फिर बाहर आयी और थके हुए स्वर में बोली- "सरोजदा देखो, यदि आजका दिन कट जाय, तो देखेंगे ?..."

" मैं अभी जाकर डाक्टरको भेज देता हूँ। स्वयं दो-तीन घंटे बाद आ जाअूँगा !..."कह कर मि. सरकारने अपने पर्स से बिना गिने ही कुछ रख कर बाकी सब नोट नीलिमा के हाथों पर जबरदस्ती रख दिये। वह 'न' भी न कह सकी। मोटर गली बाहर सड़क पर खड़ी थी। मि. सरकार के मना करके रहने पर भी वह कुछ दूर तक साथ पहुँचाने आयी। अुन्होंने सहानुभूति के स्वर में कहा—" तुम अकेली कैसे यहाँ

रहती होगी ?...वह भी ऐसी अवस्था में। रातमें चिल्लाओ, तो कोई आवाज तक नहीं दे।..."

"पड़ोसी तो हैं न ?...किसी की अुपस्थिति का भान भी कम आश्वासन-प्रद नहीं होगा।" नीलिमा के होठों पर शुष्क मुस्कराहट थी।

मि. सरकार के दिमाग में मोटर की गति के साथही कितनी रेखाएँ बन-बिगड़ रही थीं। आफिस में भी तबीयत न लग सकी।...

और, अुस दिन से मि. सरकार अपने ईर्ष्यालु पुरुष को नियंत्रित कर शिशिर दत्त को जिलाने के प्रयत्न में स्वयं लगे। शिशिर दत्त का मनोगत द्वेष शरीर की जर्जरता के साथ बढ़ता जा रहा था; पर न मि. सरकार और नीलिमा अुस पर ध्यान देते। नीलिमा अपनी आँखों में कृतज्ञता भर कर कहती—" सरोजदा,' तुम्हें मेरे लिअे कितना सहना पड़ता है ?..."

मि. सरकार के स्वर में 'चिर जाग्रत सरोज' बोलता—" तुम्हारे दुख सुख में मेरा भी तो भाग है।"

मि. सरकार से आने-जाने की वजह मोहल्ले के लोगों में नीलिमा और अुनके सम्बन्ध में तरह तरह की अफवाहें अुठने लगी थीं; पर किसी में कुछ प्रत्यक्ष कहने की हिम्मत नहीं थी।...

पर दो महीने तक भी वह नया अध्याय नहीं चल सका। मि. सरकार...और नीलिमा के सभी यत्नों के बावजूद शिशिर दत्त के प्राण अुस की जर्जरित काया में नहीं रह सके।" नीलिमा की माँग का सिन्दूर पुंछ गया, पर कोअी नहीं समझ सका कि अुस के मन में विषाद है या अुल्लास। अुसका स्थिर-गम्भीर मुखमंडल अपरिवर्तित रहा। पड़ोस के जो लोग अुनसे समवेदना प्रकट करने आते, अुन के शब्दो में भी करुणा की अपेक्षा तीव्र व्यंग्य ही अधिक मुखर होता। नीलिमा निश्चित अुन्हें सह लेती।

मि. सरकार ने बहुत यत्न किया कि नीलिमा अुन के यहाँ ही चल कर रहे, पर अुसने स्वीकार नहीं किया। कभी-कभी वह करुण शब्दों में निवेदन भी करती—" सरोजदा,' तुम सड जीवित शव में अब तक प्राण फूँकते रहोगे ?..."

मि. सरकार अुसकी मानसिक अवस्था ताड़ चुप ही रहते। अपने मानसिक द्वन्द्व को अुन्होंने दबाने की बहुत कोशिश की, पर अधिक दिन अुनका शरीर अुनका साथ न दे सका। वे बीमार पड़ गये नीलिमा अुनकी सेवा के लिए अुनके यहाँ ही रहने लगी। अुनकी बड़ी बहन भी कलकत्ते से आ गयी थी। नीलिमा दिन-रात अक्लांत भाव से मि. सरकार भी सेवा करती। एक-डेढ़ महीने बाद जब मि. सरकार रोग-मुक्त हुए अुस दिन नीलिमा को लगा, अुसे नया जीवन मिल गया। वह सर-नेह अुनका सर सहलाते हुअे बोली—" सरोजदा,' कम-से-कम मेरे लिए तो अपने स्वास्थ्य की रक्षा करो।... मैं जानती हूँ। तुम्हारे बीमार पड़ने में मै ही कारण हूँ।"

" नीलिमा, कम से-कम मेरी शांति के लिअे अैसी बातें मत किया करो...।"

नीलिमा के चहेरे पर स्वास्थ का अुल्लास चमक अुठा। पर दूसरे ही क्षण अुसकी आँखों में अवसाद भर गया। मि. सरकार ने अुसकी पतली अुँगलियों को जोर से अपने कपाल पर दाब लिया और निर्बोध शिशु की भाँति अुसकी आँखों में देखने लगे। नीलिमा निस्पन्द रही।

दीदी रूढ़िवादिनी होती हुअी भी सरोज और नीलिमा की आन्तरिकता से प्रसन्न लगती। अुन्हें लगता, सरोज के जीवन को सुव्यवस्थित करने के लिअे नीलिमा अनिवार्य है।... और, अेक दिन बहुत संकोच के साथ अुन्होंने अपना मनोभाव प्रकट कर दिया— " सरोज, अब तो अैसे विवाह होते ही हैं, क्या बुरा हो यदि तुम दोनों...।"

सरोज ने अपने मन के विषाद को छिपाते हुअे कहा... " दीदी,तुमको बस हमेशा मेरे विवाह की ही बात सूझती है।... अब अनित (अपने भांजे) का विवाह करना।..."

दीदी अुस दिन और बातें नहीं कर सकी। नीलिमा अनार का रस लिए मुग्ध भाव से स्वस्थ होते हुअे सरोज के प्रदीप्त मुखमंडल की ओर देख रही थी। दीदी वात्सल्य-दृष्टि से दोनों को देखती बाहर हो गयी।

निकट खड़ी नीलिमा की ओर सरोज प्रश्न सूचक आँखोंसे मौन देख रहा था। नीलिमा ने ही सस्मित मौन भँग किया—" लो रस पी लो।"

सरोज देखता ही रहा। आज नीलिमा में वह अद्भुत निखार देख रहा था। सद्यःस्नाता नीलिमा के खुले बाल अुसके कंधोंको घेरे हुए थे, बड़ी-बड़ी आँखों में स्नेह की उर्मियाँ हिलोरें ले रही थीं और मुख पर खेल रहा था आत्म विभोर किशोरी का सरल आकर्षण।

" सरोजदा,' रस पीलो न! बहुत देर हो गयी है। अभी तुम्हारे लिए टमाटो-सूप बनाना है।..." नीलिमाने सरोज का ध्यान अन्य ओर खींचने का प्रयत्न किया। आज वह भूल चुका था कि वह मि. सरकार हैं, अघोरबन्धु बैंक का सुयोग्य मैनेजर। आज वह मात्र सरोज था और अुसकी आँखों में नीलिमा शिशिरदत्त की विधवा नहीं होकर वर्षों पूर्व की किशोरी नीलिमा थी। अुसने अपना हाथ बढ़ा कर नीलिमा का हाथ पकड़ा और अपने समीप खींचा— " मेरे पास ही बैठो नीलिमा!"



अमृत

पीने को तुम लायी हो कुछ
नहीं दिखाती छुपा छुपा घट
पिलायेगि यदि स्वयं मुझे फिर
क्या विष, क्या मदिरा क्या अमृत ?

— लेकिन छोड जाती हो घट
मुझे आँसु के साथ पिने को
अगर पिना है बैठ अकेला
क्या विष, क्या मदिरा, क्या अमृत!

अनुक्रमणिका

* * *

नीलिमा भी अपने को नहीं रोक सकी। चुपचाप आकर सरोज के सिरहाने बैठ गयी। सरोजने आग्रह के स्वर में कहा–" यहाँ तुम्हें देखने के लिए आँखें अूपर करनी पड़ती हैं। यहाँ नीच में बैठो..."

नीलिमा चुपचाप चली आयी–"लो अब तो पी लो।"

"अपने हाथ से ही पिला दो न।...कोई एतराज है?"

नीलिमा ने गिलास अुसके मुँह से लगा दिया। बच्चे की तरह अुसका हाथ पकडे सरोज एक ही बार में सारा रस पी गया! अुसके बाद नीलिमा ने हाथ हटाना चाहा, तो सरोज ने अुसके हाथ से गिलास तो खुद पास ही मेज पर रख दिया और अुसका हाथ पकडे ही रहा। नीलिमा ने आर्द्र कंठ से कहा–" छोड दो न।"

"नहीं, नीलिमा। अब इस हाथ के सहारे के बिना मैं नहीं चल सकूँगा। मुझे जिलाना चाहती हो, तो ऐसे ही इसे मेरे हाथ में रहने दो।" कह कर अुसने नीलिमा को और निकट खींच लिया। अुसके खुले बाल सरोज के शरीर का स्पर्श करने लगे।...कुछक्षण अुसकी आँखों में देखते रहने के बाद सरोजने अुसे धीरे से अपनी ओर और अधिक झुकाया और जरा-सा अुठते हुअे अुसके कपाल को चूम लिया। वह कुछ नहीं बोली। अुसकी गर्म साँसें सरोज के मन में अेक नवीन आकांक्षा कर रही थी। अुनके अुभरे वक्षज सरोज को जीवन का नवीन आमंत्रण दे रहे थे। वह मुग्ध था।...पर कुछ क्षण बाद ही सहसा अुठते हुअे नीलिमा ने कहा—" सरोजदा,' अब तुम अच्छे हो गये न?..."

सरोजने अिस आकस्मिक प्रश्न से चौंकते हुअे कहा—"मतलब।..."

"मैं अब कलकत्ते चली जाना चाहती हूँ...।" नीलिमा ने क्षीण स्वर में कहा।

"नीलिमा...!"

"..."

"... नीलिमा!" सरोज विह्वलता से अुठने लगा!

नीलिमा ने समीप आ सस्नेह अुसे सुलाते हुअे कहा—"अभी मिहनत मत करो, सरोजदा! अभी बहुत दुर्बल हो।"...

"तुम जाने की बात कहती हो?...क्या कभी भी तुम मेरे जीवन को सुखी रहने दोगी?"

"यह तुम बार-बार क्यों कहते ही हो, सरोजदा'!" नीलिमा की आँखों में आँसू थे।

"जितनी बार मैंने तुम्हें निकट पाना चाहा है, तुम हमेशा अुतनी ही दूर होती गयी हो।... अिसका क्या अर्थ है?" सरोज के स्वर के खीझ थी।

"स्वस्थ हो तो; फिर अिन-सब बातों पर सोचना।—"

"तुम मुझ पर विश्वास नहीं करती?"

"सरोजदा,' अिन शब्दों को कहने के पहले मुझे यदि मार डालते तो अच्छा होता!" नीलिमा का चेहरा विषण्ण था।

"फिर मुझे, अितना विश्वास दो कि, अब मुझे छोडकर नहीं जाओगी।..."

"नहीं"

"नहीं जाओगी न?"

"नहीं।"

"आश्वासन मात्र है कि विश्वास!"

"मैं शब्दों का अितना अंतर नहीं जानती।" नीलिमा ने हँस कर कहा।

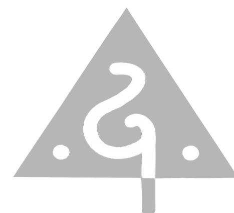
"अगर जाना ही चाहती हो, तो एक बार तो सत्य बोलती जाओ!" मि. सरकार के स्वर में रोष और करुणा का अद्भुत समिश्रण था।

"सत्य?...तुम से कभी झूठ नहीं बोली, सरोजदा!"

"तो, कह दो—तुमने मुझे कभी नहीं चाहा। सिर्फ मेरी सरलता से खेलती रही, मुझे छलती रही!..."

"सरोजदा'!...ऐसा कह कर मुझे लाँछित मत करो!..."

"...तो आज अपने विचित्र, असम्बद्ध बर्तावों का हेतु बताती जाओ।...इस तरह सारे जीवन भर मुझे संतप्त रख कर तुम्हें क्या मिलेगा? सात वर्षों से झुलसता रहा हूँ।...न तुमने मुझे सद् ही रहने दिया। न असद् ही होने दिया...मेरे अस्तित्व के साथ अिस तरह निष्ठुर क्रीडा क्यों करती हो?......

नीलिमा की आँखों से आँसू बह रहे थे। सरोज ने कभी बार अुसकी आँखों में आँसू देखे थे पर अुनको अिस तरह प्रवाहित होते कभी नहीं देखा था। नीलिमा हमेशा अपनी दुर्बलता को बड़ी निष्ठुरता से जब्र कर लेती। पर आज वह असमर्थ थी। सरोज को करुणा आये बिना नहीं रही।

मि. सरकार ने क्रूरता से व्यंग्य किया—"अिस तरह आँसू बहा कर, मुझे क्यों गलाना चाहती हो?... मैंने जहाँतक हो सका है, हमेशा तुम्हारी भावनाओं का साथ दिया है, हमेशा तुम्हें सुखी करना चाहा है; पर तुमने कभी भी मेरे जीवन मरण की परवाह नहीं की।..."

"कह तो, सरोजदा'! दो कुछ कहना हो, कह दो। मुझे तुम्हारी कड़ी बातें सुनना अच्छा लगता है।..."

"नीलिमा, अिस तरह मुझे मरने के लिए बाध्य न करो? मैं जीना चाहता हूँ..."

"सरोजदा...!"

"नीलिमा आज तुम्हें बताना ही होगा। वह कौन सी कुण्ठा रही है, जिसने तुम्हें मेरे सामने कभी स्पष्ट नहीं होने दिया है।... बार-बार तुम क्यों मेरी अुपेक्षा करती रही हो?"

"तुम्हारी अुपेक्षा?...अैसा क्यों कहते हो, सरोजदा?"

"...तो आज तुम्हें सबकुछ बताना ही होगा।"

"अच्छा! तुम्हारी इच्छा है, तो बताकर ही जाअूँगी।...अभी क्षमा कर दो।..." कहकर नीलिमा वहाँ से चली गयी।

दूसरे दिन आफिस से लौटने के बाद मि. सरकारको नौकर से पता चला, नीलिमा कलकत्ते चली गयी है और एक पत्र छोड़े गयी है। मि. सरकार ने जल्दी से पत्र खोलकर पढ़ा। पत्र छोटा था, कई जगह अस्पष्ट भी। पत्र में लिखा था–"सरोजदा,' मैं तुम्हें प्यार करती हूँ, करती रही हूँ और जबतक जीअूँगी तुम्हारे सिवा और किसी को प्यार नहीं कर सकती।...शायद तुम्हें मेरी बातों पर विश्वास नहीं आता होगा। तुम्हारे कई बार चाहने पर भी मैंने तुमसे विवाह की स्वीकृति नहीं दी। यह इसलिए नहीं कि मैं तुम्हें नहीं चाहती, बल्कि इसलिए कि मैं तुम्हारे जीवन को सुखी नहीं कर पाअूँगी। तुम्हारे पवित्र प्रेम की ज्वाला सह लेने की मुझमें शक्ति नहीं।...मैं अपराधिनी हूँ।...जब मैं १२-१३ साल होअूँगी,अुस वक्त अपने ननिहाल गयी थी। वहाँ पर मेरे एक मौसेरे भाअी रहते थे। स्वभावतः ही समवयस्क-से होने के कारण हम हमेशा साथ ही रहते, साथ ही खेलते। यों तो वे उम्र में मुझ से पाँच छः साल बड़े थे, पर कम अुम्र की होती हुअी भी मैं स्वस्थ होने के कारण अुनकी समवयस्का ही दिखती थी।...मैं अुनके सामीप्य में अननुभूत सुख अनुभूत करती। वे भी मेरी ओर आकर्षित थे। और, एक दिन आवेश में आकर उन्होंने मुझे अंक में भर लिया और...। मैं नहीं समझ सकी। मुझे कैसा महसूस हुआ, मैं नहीं कह सकती। पर अितना अवश्य है कि, कोअी एतराज मैंने नहीं किया। बाद में जब-जब अुन्होंने चाहा, मैं अुनकी अिच्छा पर समर्पित होती रही। अुस समय मैं अुसका अर्थ नहीं समझती थी।...पर बाद में लगभग चार वर्षों बाद जब मैं समझने लगी, मुझे बड़ा अनुताप हुआ। मुझे लगता, मैंने बहुत बडा अपराध किया है; हालाँ कि किया मैंने ना समझी में ही।...अिसी बीच तुम मेरे जीवन में आये। तुम्हारा पवित्र प्रेम देख कर मुझे अपने पर बड़ी विरक्ति होती, घृणा होती।...काश,मैं तुम्हारी पवित्रता के अनुरूप अपने को बना पाती।... और, अिसी-लिये मैं हमेशा तुमसे दूर होती रही।... एक दिन जब तुमने मुझसे विवाह का प्रस्ताव किया था, मुझे अच्छी तरह याद है कि मैंने चाहा था अपनी पाप-कथा तुम्हें बता दूँ। पर मुझसे नहीं हो सका। क्योंकि मैं नहीं चाहती थी कि किसी भी तरह मैं तुम्हें दुःख पहुँचाऊँ। यह भी जानती थी कि मेरी अस्वीकृति से तुम्हें बहुत दुःख होगा पर मैं मजबूर थी।... चाहती तो थी कि मैं जन्मभर कुमारी ही रहूँ। तुम्हारे अिलाहाबाद जाने के बाद पडोस और मोहल्ले के कइयों ने मुझसे घनिष्ठता स्थापित करने की कोशिश की। अुनमें एक भैया का परिचित होने के कारण मेरे यहाँ आने-जाने भी लगा था। भैया की इच्छा भी थी कि मैं अुससे विवाह कर लूँ। पर, मैं अपने मनको नहीं समझा पा रही थी। तुम्हें भी भूलना मुश्किल था। पर एक दिन रविवार को जब भाभी और भैया सिनेमा गये हुए थे, पिताजी भी कहीं बाहर गये थे, वह मेरे घर आया। नहीं चाहते हुए भी मैंने भद्रता की खातिर अुसे बैठाया, चाय बनाकर पिलायी और बातें करती रही। सहसा मैंने देखा, अुनकी आँखों शैतान अुतर आया था। मैंने कहा—"आप अब जाइये, मुझे अपनी अेक सहेली के घर जाना है।" वह नहीं गया और अब मैं उसकी तीखी दृष्टि से बचने के लिये दूसरे कमरे में जाने लगी अुसने मुझे जबर-दस्ती पकड़ लिया और मेरे होठों पर बलात् अपना विष अुँडेल दिया।...मैंने अुसे जबरदस्ती धकेल दिया ओर गरजते हुअे बोली थी–"खैरियत चाहते हो, तो अभी यहाँ से निकल जाअिये।"— वह चला तो गया, पर अुसी दिन से मोहल्ले भर मेरे नाम पर बदनामी का

डंका भी पिटने लगा। मेरे पिताजी को बड़ा दुःख हुआ। भाभी भी हमेशा मुझे व्यंग्य-बाणों से बेधा करती।...निदान हम लोग वह मोहल्ला छोड़ कर दूसरी जगह गये।...मेरी शादी के लिअे पिताजी और भैया दोनों परेशान रहते, पर अर्थाभाव के कारण अुपयुक्त पात्र नहीं ढूँढ पाते।...और मैं भी विरोध ही किया करती। अंत में मैंने तंग आकर शिशिर दत्त से विवाह करने की स्वीकृति दे दी।...वे मेरी अेक सहेली के दूर के रिश्ते में भाओी होते थे और अुन की पहली पत्नी वर्षों पूर्व मर चुकी थी। अेक बार पहले भी अुन्हें यक्ष्मा हो चुका था, पर अच्छे हो गये थे। यह मुझे मालूम था और अिसीलिए मैंने अुनके विवाह स्वीकृति दी। क्यों मेरे मन में यह धारणा जम चुकी थी कि मैं किसी भी अच्छे पुरुष के योग्य नहीं।... अुस के बाद की सारी बातें तुम जानते ही हो।... कृपा कर के मुझे भूल जाने का प्रयत्न करना। मैं तुम्हारे योग्य नहीं।... अगले जन्म की बात यदि सत्य है, तो मैं चाहूँगी कि तब मैं तुम्हारी ही होकर रहूँ।... अभी कलकत्ते जा रही हूँ। कोशिश करूँगी कि कोओी नौकरी मिल जाय।...न-जाने क्यों, अभी भी जीवन का मोह दूर नहीं होता। बाद की बात मैं नहीं जानती क्या होगा?...सरोजदा', यह तुम गलत समझते हो कि मैं तुमसे दूर हटना चाहती हूँ। मेरी पाप-दग्ध अंतरात्मा तुम्हारी पवित्रता को नहीं सह पाती है, अिसीलिए मैं तुम्हें अपनी अपवित्र छाया से दूर रखना चाहती हूँ।... मेरी वजह जो तुम्हें सहना पड़ा है, अुसके लिए क्षमा नहीं मागूंगी। मैं नहीं चाहती की तुम्हारी क्षमा पा कर शाँति पा लूँ। ज़िन्दगी भर जलती रहूँ, यही मेरे पाप का प्रायश्चित्त है।...बस, और कुछ नहीं कहना है।– तुम्हारी ही—नीलिमा"

पत्र पढ़ कर मि. सरकार ने एक लम्बी साँस ली। कुछ देर सड़क ओर देखते फिर अुस पत्र को मोड़ते हुए अपने ही से कहा–"नान्सेन्स!...मैं पवित्र हूँ?...नीलिमा, तुमने अबतक कोई अपराध नहीं किया।... अगर पुरुष–नारी का शारीरिक सम्पर्क ही अपराध है, तो मैं तुमसे भी बड़ा अपराधी हूँ।...पाप और पुण्य?...यह सब हमारे मन का भ्रम है।...यदि वही पाप है, जिसे हम पाप मानते हैं, तो जीने की कामना ही सबसे बड़ा पाप है।..." अपने ही आप बुदबुदाते मि. सरकार मोटार में आ बैठे और शोफर से कहा–"कलकत्ता मेल तो चली गयी होगी न?..."

"हाँ, हुजूर।"

"फिर, गाड़ी हाँको। अभी कलकत्ता चलना है"

"हुजूर, अभी!..." शोफर ने साश्चर्य कहा।

"हाँ, इसी क्षण!"

मोटर अपने पूरे वेग से दौड़ने लगी। मि. सरकार ने शोफर को आदेश के स्वर में कहा— "तनिक भी मत रुको, कलकत्ता मेल के हावड़ा पहुँचने के पहले ही हमें स्टेशन पहुँच जाना है।...

● ●



हमारे नौजवानों की जवानी

हमारे नौजवानों की जवानी देखते जाओ
नयी चप्पल हुई जैसे पुरानी देखते जाओ॥
वे किस अंदाज से सड़कों पे बल खा-खा के चलते हैं
यह अुन के कमर की टूटी कमानी देखते जाओ॥
हुई है 'व्हाइट वार्शिंग' जैसे कोई काले तख्ते पर
जरा-सा गौर कर चेहरे का पानी देखते जाओ॥
बिना मूँछों की सूरत है न हैं पुरुषत्व के लक्षण
कहाने मर्द, पर सूरत जनानी देखते जाओ॥
हुए हैं सूख कर ऐसे गोया टेनिस के रैकेट हों
अुछलती बॉल जैसी जिन्दगानी देखते जाओ॥
उफनता जोश है लेकिन, उफन कर फिस्स हो जाता
नहीं है खून, है सोडे का पानी देखते जाओ॥
लगाते ही लगाते रोज चश्मा और यह सुर्मा
ये आँखें बन गयी हैं सुरमेदानी देखते जाओ॥
कभी मर्दों में ढूंढा तो कभी खोजा जनानों में
नहीं मिलता है कोई इनसा सानी देखते जाओ॥
पाँसी आँखें हैं निकली नाक टूटे दाँत पिचका मुँह
यही सौन्दर्य की है चोमुहानी देखते जाओ॥
लड़े दिल से हुए घायल गिरे चौचक, मरे कुछ कुछ
यही बेधड़क अिन की पहलवानी देखते जाओ॥
जवानी देखकर अिनको बुढ़ापा आ गया हमको
जवानी क्या, बुढ़ापेकी है नानी देखते जाओ॥
भले अितिहास या भूगोल की बातें न आये पर
सुना दे हाल फिल्मों का जबानी देखते जाओ॥
हँसे अिनपर कि रोयें हम समझ में कुछ नहीं आता
करुण है हास्यरस की यह कहानी देखते जाओ॥
'समझते हो नहीं फादर कि दिल क्या और 'लव क्या' है?
बुजुर्गों की यही है कद्रदानी देखते जाओ॥
सिनेमा–स्टार बन जाएँ, यही अिनको परम पद हैं;
अिसीसे बंबई में खाक छानी देखते जाओ॥
नुमाइश में अिन्हें रक्खो या चिड़ियाघर में रख छोड़ो
यही है बाप दादों की निशानी देखते जाओ॥

—बेधड़क 'बनारसी'

अनुक्रमणिका





आजसे हजारों वर्ष पहले मनुष्यने निश्चय किया था कि वह दरिद्रता की अवस्थामें नहीं रहेगा। अमङ्गलका अन्त, अुल्लास और अुमंग का अधिराज्य–। दीपावली का अुत्सव अुसी सामाजिक मङ्गलेच्छा का मूर्तरूप है और अिसीलिए



—डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी



दीवाली इस साल भी आ गई; हर साल ही आती है। न जाने किस भले आदमी के मन में अिस शुभ मुहूर्त में दीपकों के उत्सवकी बात आई थी। पंडितों ने इस पर्व का इतिहास खोजने का प्रयत्न किया है। भक्ति का विश्वास कुछ और हैं, पंडितों के अनुसंधान कुछ और, मगर उत्सव है पुराना। बुद्धदेव के जीवन–काल में यह अुत्तर भारत में अवश्य मनाया जाता था और सबूत मिला है कि गुप्तकाल में भी मनाया जाता था। मतलब यह है कि कम-से–कम ढाई–तीन हजार वर्षों के मानवचित्त के अुमंग और अुल्लास की कहानी इस पर्व के साथ जुड़ी है। इतना क्या कम है? दो सौ पीढियों तक जो पर्व मनुष्य के चित्त को आनन्द से अुद्वेलित कर सका है वह क्या मामूली पर्व है? राज्यों और राजवंशों के अुत्थान–पतन होते रहे, बड़े–बड़े धर्म–संप्रदाय अुठते-गिरते रहे, चंचला लक्ष्मी का प्रसाद न जाने कितने लोगों को प्राप्त हुआ और कितने अुस से वंचित हो गए पर दीपमाला का अुत्सव नहीं रुका। साधारणतः यह विश्वास किया जाता है कि यह लक्ष्मी–पूजा का दिन है। बंगाल में दूसरी परम्परा है। वहाँ अिस तिथि को काली जी की पूजा होती है। लक्ष्मी-पूजा वहाँ आश्विन मास की पूर्णिमा के दिन होती है। अुसे कोजागर पूर्णिमा कहते हैं। पर पूजा लक्ष्मी की हो या काली की, दीपमाला सर्वत्र जगमगा अुठती है। देवी–देवता और अुनकी पूजा गौण है, मनुष्य–चित्त का अुल्लास प्रधान, वीर अुत्सव यह अुल्लास का ही है।

वैसे निश्चय ही अिसके दीर्घ अितिहास में अैसे अवसर आअे होंगे जब शक्तिशाली समझे जानेवाले लोगों को यह अुत्सव पसन्द नहीं आया होगा। अैसे अवसरों पर अिस अुत्सव को बन्द करा देने की आज्ञाअें भी निकलती होंगी। शकुन्तला नाटक की गवाही के आधार पर कहा जा सकता है कि शक्तिशाली नरपतियों का मन जब अुदास हुआ करता था तो वे अैसे परम्परा–प्रचलित अुत्सवों को रोक देते थे। राजा दुष्यन्त प्रबल प्रतापी राजा थे। प्रिया–वियोग से अुनका मन दुखी हुआ था तब वसन्तोत्सव मनाया जाना बन्द कर दिया गया था। आतंक ऐसा कि आम-जैसा अनायास खिल अुठनेवाला मौजी वृक्ष भी आधी बौर तक खिलकर रुक गया। किसी को शंका हुअी कि शायद कामदेव जैसे महाप्रताप-शाली देवता ने भी चकित होकर अधखिंचे धनुष को समेट लिया हो। मुद्राराक्षस की गवाही पर कहा जा सकता है कि चंद्रगुप्त ने भी कौमुदी महोत्सव रोक दिया था। शक्तिशाली राजाओं की कुंचित भ्रूकुटियों का शिकार कभी न-कभी अिस अुत्सव को भी होना पड़ा होगा, पर हुआ नहीं। मनुष्य की संमिलित सामाजिक मंगलेच्छा को दबाना क्या संभव है? दिवाली का अुत्सव हर साल यह संदेश दुहराता जाता है– राज्य बदल जाएंगे, राजमुकुट पुराने हो जाएंगे, मठ दल जाएंगे, सम्प्रदाय नष्ट हो जाएंगे-बची रहेगी मनुष्य की सामूहिक मंगलेच्छा।

आजसे हजारों वर्ष पहले मनुष्य ने निश्चय किया था कि वह दरिद्रता की अवस्था में नहीं रहेगा, वह सामाजिक रूप में समृद्ध रहेगा। एक व्यक्ति नहीं, एक परिवार नहीं, एक जाति भी नहीं, बल्कि समूचा मानव-समाज समृद्धि चाहता है, अदारिद्र्य चाहता है, अमंगल का अन्त चाहता है, अुल्लास और अुमंग चाहता है। दीपावली का अुत्सव अुसी सामाजिक मंगलेच्छा

अनुक्रमणिका

का दृश्यमान मूर्तरूप हैं। समूचा समाज आज दरिद्रता के अभिशाप से मुक्ति चाहता हैं। अभाव के शिकंजे से छूटना चाहता हैं। दीवाली अुसके अिस संकल्प की जलती हुअी दीपशिखा है। राजवंश आअे और गअे, बड़े–बड़े समृद्धिशाली नगर बने और बिगड़े किन्तु मनुष्य की वह चिरप्रार्थित आकांक्षा नहीं पुरी हुअी। आज भी वह लक्ष्मीजी की पूजा कर रहा है। परन्तु पूजा करता है— दरिद्रता की पीठ पर बैठकर। आज भी वह महाकालिका की पूजा करता है, आतंक और भय से कंपित हृदय लेकर। कब यह पूजा सफल होगी? कब महामाया का वह प्रसन्न–मुख प्रकट होगा जिसे देखकर मनुष्य अभाव की मार से बच सकेगा? कब अुनका वह रुद्र रूप दिखाई देगा जिससे वह भय और आतंक को ध्वस्त होते देखेगा? अभी तक तो अैसा नहीं हो सका है। महामाया की चिन्मयलीला अभी दुर्भाग्य के विकट अट्टहासों से क्षुधा ग्रस्त है। क्या कभी मनुष्य की स्वाभाविक मंगलेच्छा पूरी होगी?

चारों ओर जब अभाव का करुण हाहाकार सुनाअी दे रहा है, दीपावली अपना मंगल संदेश लेकर आअी है। कअी हजार वर्ष पहले मनुष्य ने सामूहिक रूप से समृद्ध होने का संकल्प किया था। वह संकल्प आज भी जी रहा है। क्यों न मनुष्य अब अिच्छा के बाद प्रयत्न शुरू करे? सामाजिक मंगलेच्छा को आज तक कोअी नहीं दबा सका वह न मरी, न बूढ़ी हुअी, जबकि न जाने कितनी व्यक्तिगत आकांक्षाअें मरकर भूत हो गअी, कितने व्यक्तिगत प्रयत्न हमेशा के लिअे समाप्त हो गये। दीवाली यह सन्देश लेकर आ रही है कि व्यक्ति मनुष्य की अिच्छा भी नश्वर है। प्रयत्न भी नश्वर हैं। परन्तु सामाजिक मनुष्य की अिच्छा भी अमर है और प्रयत्न भी अमर होगा। अब व्यक्तिगत प्रयत्नों का जमाना बदल गया। उसकी पूरी परीक्षा हो चुकी। अब सामाजिक मनुष्य की मंगलेच्छा जिएगी और सामाजिक मनुष्य को सब प्रकार के अभावों और बंधनों से मुक्त करने की साधना की जिएगी।

व्यक्ति की अिच्छा का कंठरोध हो सकता है। सामाजिक अिच्छा का कंठरोध नहीं हो सकता। अिसी प्रकार व्यक्तिगत सुख–समृद्धि की सब योजनाएं समाप्त हो जाएंगी। जिएगी तो केवल समूचे समाज की अभावों और बंधनों से मुक्त करने की सामूहिक मंगलेच्छा। व्यक्ति की सफलता समाज के मंगल में है। वही मनुष्य सार्थक जन्मा हैं, उसीका जीवन कृतार्थ कहा जा सकता है जो समूचे समाज को मंगल की ओर ले जाने में अपने आपका उत्सर्ग कर दे। शरीर के नाना जाति के जीवकण अपने-अपने कर्तव्य में लगे रहते हैं। भिन्न-स्थानोंपर काम करते रहने पर भी वे संपूर्ण शरीर को स्वस्थ रखते है। जब अुनके अनुपात में अन्तर आता है, अर्थात् जब कुछ कण अधिक मोटे हो जाते हैं, कुछ दुर्बल पड़ जाते हैं तो संपूर्ण शरीर रोगग्रस्त हो जाता है। क्योंकि अुसमें भयंकर वैषम्य है। समाज का प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने अुचित स्थान पर रहकर अपने को समाज के हित के लिअे अुत्सर्ग नहीं कर रहा है। यही रोग है। समाज का शरीर रोगार्त बना हुआ है। समस्त कठिनाइयों के मूल में यहीं वैषम्य है। दीवाली का अुत्सव हजारों वर्षोंसे बतलाता है कि मनुष्य की सामाजिक इच्छा क्या है। अभी तक वह इच्छा फलवती नहीं हुई। दीपावली अूँचे स्वर से घोषणा कर रही है कि सामूहिक समृद्धि की साधना करो, सामाजिक मंगल की चेष्टा करो।

दिवाली इस साल भी आ गई, हर साल ही आती है।

● ●

अनुक्रमणिका

“ नमस्कार ! सब लोगोंको नमस्कार !
मैं जा रहा हूँ ... ”
ठण्....ठण् ! ठण्...!!
होशियार !
“ जा रहा हूँ,...नमस्ऽ... ”
अब खुल रहा--



मौत का दरवाज़ा

— ना. ग. गोरे

वह कैसे भी हो, मेरा मन भीतर भीतर रो रहा था। और रोते हुए यह भी कह रहा था-“मृत्यु जितनी भयानक जान पड़ती है, नहीं है। जीवन और मरण के बीच की सीमा रेखा कितनी झीनी है।”

यरवदा जेलका अन्दरका फाटक पार कर के बाईं और आप मुड़ जाइये, आपको अंधेरी वार्ड मिलेगा। अुसके सामने खास परकोटे की दीवार में एक लोहेका फाटक हैं। वह अकसर कम खुलता है। जैसे कोई आदमी राज छिपाये रखना चाहता हो अुसके होठों की तरह अुस दरवाजें के कपाट प्रायः सदा बंद ही रहते है। साथ के वार्डर से अगर आप पूँछें कि यह फाटक कैसा है तो सिर्फ़ मानीसे भरी हँसी हँसेगा या अेक शब्द में अुत्तर देगा--‘ फाँसीका ’। जरा आगे बढनेपर अेक चार पाँच कमरों का छोटा सा आहता मिलता है। अिसे कहते हैं फाँसी गेट। फाँसी की सजावाले कैदी यहाँ बंद कर के रखे जाते हैं। फाँसी गेट के आहते से अुस रहस्यमय लोहे के दरवाजे तक की सफर अुस फाँसी की सजावाले कैदी की अिस दुनिया की आखिरी सफर होती है।

जुलाअी १९२० में यरवदा में पहला कदम रखा तब अिस मृत्युद्वार का प्रथम दर्शन हुआ। संभोग, जन्म और मृत्यु-अिन तीन बातों के बारेमें अदमीको हमेशा कुतूहल जान पड़ता है। न जाने क्यों ? मृत्युके अिस बंद दरवाजेके बारेमें मुझे अुसी समयसे बहुत अचरज और कुतूहल जान पड़ता था। सो कल-परसोंतक बना हुआ था। अिस सालके दिसंबरमें वे दरवाजे जरा खुले। नचिकेता की भाँति मृत्यु सामने खड़ी है और मैं अुसके साथ संभाषण कर रहा हूँ अैसा संयोग नहीं हुआ। परंतु जिस रहस्यमय आवरणसे मृत्युका मुख सदा अवगुंठित रहता है वह अभेद्य आवरण मानों अेक क्षणभरमें दूर हट गया। और मृत्युकी हलकी सी झलक मिलने की संधि मानों प्राप्त हुअी। वह बात यों हुअी कि—

आर्थर रोडसे मेरी बदली १९४५ के अंतमें यरवदा जेलमें हुअी। अंधेरी में सब आगके कमरे भरे हुअे थे। इस कारणसे पिछली बेरक में १० नम्बरकी ‘ खोली ’ में मैंने अपना सरंजाम फैलाया

अनुक्रमणिका





साथी ना. ग. गोरे : साहित्य कलाक्षेत्रमें जिस समादर सहित अुल्लेखित किए जाते हैं वैसे ही राजनीतिके परिसरमें भी। जीवन संघर्ष के सभी सर्गोंका–स्वीकारार्ह तथा निषधार्ह–आपने स्वाद लिया है और फलतः आपकी कलामें अनुभूतियोंका विस्मयकारी वैविध्य प्रतिपल प्रदर्शित हुआ है।

था। मेरे कमरे के सामने के आँगन में से फ़ाँसी गेटमें रखे हुए कैदियों से अुनके कमरों के पिछले जंगलोंसे बोल सकते थे। हम रातदिन मुक्त थे। इस कारण से खानापीना जहाँ खत्म हुआ कि आँगन में फेरी करने वाले कोई कैदी ग्रह–नक्षत्र देखते। कलाशास्त्र विनोद चलता तो कोअी फाँसे वाले कैदी के साथ बातचीत करता। अपराध कैसे किया, अपराध के कारण क्या हैं, अपील किया है या नहीं, आदि बातोंकी पूँछताछ चलती। कुछ बातें तो निरी बेकार की पूँछताछ होती, तो कुछ बातें सजा-याफ्ता लोगों को दिलासा देने के लिए की जाती। लेकिन बहुत बार ऐसा पाया गया कि आखिरतक फाँसीवाले कैदी आशा नहीं छोड़ते थे। अंतिम घड़ी तक कोअी ना कोअी तो भी आवेगा और मार्कंडेय के गले में का फन्दा जिस तरह से, भगवान् शंकरने स्वयम् अवतरित हो कर, यमराज के द्वारा निकलवाया वैसा कुछ अपने बारें में भी होगा–यही अधिकतर लोगों की भावना थी।

मैं यरवदा में गया तब वहाँ अेक फाँसी वाला था। अुसकी फाँसी में से बचने की सारी आशा समाप्त हो गय थी। रियासतमें फाँसी का कोअी प्रबंध न होनेसे अुसे यरवदा में भेजा गया था। वहाँ के राजासाहबने जीवदान के लिअे दिया हुआ प्रार्थनापत्र नामंजूर कर दिया था। राजा जिसको मारनेपर उतार हो जाय अुसे तारनेवाला कौन है? फाँसीकी तारीख निश्चित हुअी और जेलके अफ़सरने कैदी को अुसकी सूचना भी दे दी।

फाँसी की दिन ज्यों–ज्यों पास आने लगा त्यों–त्यों फाँसीवाले कैदी के मनमें क्या तरंग अुठते हो वही जाने, हमारे मनमें अुस विषय की चर्चा बारबार होने लगीं। रातको दीये जलने पर जेल बंद हो जाता और हमारी तरफ अफसर वर्ग और सिपाही की आवाजभी कम हो जाती कि एक के खंदेपर दूसरा चढना और फाँसीवाले की पूँछताँछ करना यह मानों वहाँ का तरीका ही हो गया था।

मैं अकेला अुस कमरेमें नहीं झाँका। यह नहीं कि मुझे अुत्सुकता नहीं थी। पर मनकी हिम्मत नहीं होती थी। मौतके पंजेमें जो फँसा है अुसकी ओर कैसे देखूँ, अुस की हिम्मत कैसे बाँधी जाय यही विचार मन में अुठते। परंतु मुझ से जो अधिक प्रश्नाकुल थे अुनसे अगर जानकारी मुझे मिल जाती तो वह मुझे नहीं चाहिअे थी यह बात नहीं थी। मेरे मित्रोंसे मुझे यह पता चला कि—

कैदी एक बूढा ब्राह्मण था। कथावाचक। कथावाचक और खूनी! हाँ। वह इल्जाम अुसपर साबित हुआ था। वह और अुसका अेक भाअी न जाने कहाँ के गावमें कथा बाँचने गये। जजमान के यहाँ खाना खा पीकर सब लोग सो गये। रातको जजमान के घर में किसीका खून हुआ

* * *

सारे गाँवमें यह कथावाचक और अुसका भाअी यही दो परदेसी थे। स्वाभाविक सन्देह अुनपर हुआ। पकडा गया। मुकद्मा चला। कथा-वाचक भाई गरीब। सिफ़ारश बिचारोंके पास कहाँ थीं, प्रतिष्ठामें भी छोटा। वे ही गुनहगार माने गये। एक भाअी को फाँसीकी सजा हुअी। दूसरे को हुअी अठ्ठाअीस बरस की कडी सजा। कड़ी सजा की जिसे सज़ा हुअी वह भाई जरा कच्चे दिल का रहा होगा। सजा सुनते ही बेचारे की कमर टूट गयी। वहीं अुसने जान दे दी। और यह भाअी? यह मौत का दरवाजा कब खुलता है अिसकी राह देख रहा था। यह खबर सुनकर मुझे न जाने कैसा लगा। डर कहिये। आत्यंतिक निराशा कहिये—कुछ न कुछ मेरे सारे बदनमें चमक गया, मुझे लगा अुन बुड्ढे के मन की क्या दशा हुई होगी? पर मेरे मित्र कहते हैं कि बुड्ढा जरा भी नहीं घबड़ाया था। भगवान की तसबीर के आगे हाथ जोड़कर बैठा रहता। गीता, श्लोक आदि पढ़ता। कहता कि—"मैं बेगुनाह हूँ। फिर मुझे भगवान के दरबार में जाने का क्या डर है?" अुसकी हिंमत सचमुच बहुत बड़ी होनी चाहिये, अैसे आदमी को देखने का मनमें भाव उठता। परन्तु किसी के कंधेपर खड़े होकर देखने की हिम्मत नहीं होती थी।

कैदी को अपने कब्जेमें लेने से पहले मौत को भी शायद अुस के स्वागत की तैयारी करनी पड़ती है। निश्चित तारीख के पहले दो दिन सबेर ठक् ठक् के कुतारी अवाज़ अुस बंद दरवाज़े के अंदर से कानोंपर पड़ी। अुत्सुक मन को और भी चेतना मिली। सिपाही के पास पूँछताछ शुरू की। फाँसी की तख्तेकी पट्टियाँ, चौखट सब ठीक है या नहीं, यह जाँच हो रही है। फिर डाक्टर आये। अुन के पास भी यही चर्चा हुअी। डाक्टर बोले—"मैं भी फाँसी गेट पर भी गया था। कैदी का वजन, अूँचाअी, गले का नाप सब कुछ ले आया।" यह सब तैयारी किस लिअे? यह विधि किस लिए? कैदी को फाँसी सुखपूर्वक मिले, अिसी लिये न? यह मजाक नहीं है। सचमुच कैदी बिना किसी तकलीफ के मरे अिस के लिअे सब अधिकारी पूरी कोशिश कर रहे थे। फाँसी की डोरी मजबूत रहे अिस लिये चौखट और चौखट का हुक ठीक है कि नहीं यह देखा जाता था। फाँसी की डोरी न टूटे अिस लिअे वह कलाअी-अितना मोटा रखा जाता। फाँसीकी गाँठ का फन्दा गर्दन के पास ढीला न बैठे, श्वासनलिकाएँ तुरत बंद हो जाएँ अिस के लिये गर्दन का नाप लिया जाता। फाँसी जल्दी लगे अिस लिअे डोर के पहले दिन मक्खन, साबुन आदि का प्रसाद चढाया करता। तख्तेपर से कैदी छूटा कि कितने जोरों अुसे धक्का मिलेगा इसका अनुमान पालने के लिअे केदी की अूँचाअी और अुसका वजन देखते थे, कैदीके मनमें अंत समय किसी से मिलने की या अपनी दौलत का बँटवारा करने की व्यवस्था हो तो अैसे अनेक काम अधिकारी और सिपाही खुद हां कर करते हैं। इसलिए कि कैदी को आराम मिले। परंतु इस सारी सिद्धता पर एक प्रकारकी भयानक छाया फैली रहती है। कोडे की सजा अब दी जायगी, हम ने बात पर खुश होनेवाले जैसे मैंने कुछ मनुष्य देखे हैं, अुसी प्रकार से कल अेक आदमी फाँसी जायगा, यह तमाशा देखने को मिलेगा हम विचारसे खुश होनेवाले अफसर भी मैंने देखे हैं। परंतु ऐसी विकृत मनोवृत्ति के लोग

अनुक्रमणिका

बहुत बिरले होते हैं। फाँसी की सजाको पूरा करनेवाले अफसर केवल यांत्रिक कर्तव्यबुद्धिसे ही सो करते हैं। कैदी को जितनी सहानुभूति दिखाना अुनके अधिकार में संभव होता, अुतनी दिखानेमें वे कोताही नहीं करते।

यह हमेशा की परिस्थिति थी। इस कैदी के बारेमें तो सहानुभूति का प्रश्न ही नहीं अुठता था। बुड्ढा निरापराध है, न्याय देनेके अंधे पन के कारण फाँसीपा रहा है, यही सब लोक मानकर चले थे। फिर सहानुभूति की आर्द्रता की क्या कमी होती? जेलमें एक ऐसा अलिखित नियम है कि फाँसीकी सजा पक्की हो जानेपर भी अगर कैदी कहे कि वह बेगुनाह है तो अुसे सच माना जाय। मृत्यु निश्चित हो जानेपर वहाँ कोअी झूठ नहीं बोलता, ऐसा जेलमें मानकर चलते हैं। फाँसी के क्षण तक मुखपरकी शांति न ढलने देनेवाले के बारेमें तो अफसरों और सिपाहियोंको खास आदर जान पडता ही है। और बिलकुल सूक्ष्मता देखें तो ऐसा भी दिखाअी देगा कि ब्राह्मणों के बारेमें जो आदरभाव पीढी-दर-पीढी चला आ रहा है और मनमें जमा हो गया है वह जेलके सिपाही प्यादोंके मनमें से अभी भी पूरी तरह नष्ट नहीं हुआ है। हमारा फाँसीवाला उम्रसे वृद्ध, मन शान्त, जातिसे ब्राह्मण और जेलके सामान्य संकेतों अनुसार निरपराधी था। फिर सबको ही उसके प्रति सहानुभूति होती अिसमें क्या आश्चर्य है।

अुस दिन मेरी आँख जल्दीही खुल पड़ी। मेरे सभी साथी कभीके जग गये थे। फाँसी को अब सिर्फ सवा घंटा बचा था। हवामें ठंडक न होते हुअ भी मुझे जरा ठंडक जान पडती थी। विनायक ओक ने पूछा—"देखोगे अुधर जरा झाँककर?" अुसे देखने की अिच्छा तो बहुत तीव्र थी। पर मुँहसे निकल गया—"नहीं! अुसमें क्या देखना है? जब फाँसीकी ओर जायगा तब दिखाअी देगा ही।" परंतु इतना बोलनेपर भी यह विनायकसे मैं पूँछे बिना नहीं रह सका "आज अुसकी मनस्थिति कैसी है, रे?" विनायक बोला—"अभी थोडी देर पहले खिडकी में से हम अुससे बोले। नहा धोकर गीताकी पोथीके सामने वह शांतिपूर्वक बैठा था। हमें देखकर बोला—"मुझे डर नहीं लगता। मैं अपराधी नहीं हूँ। गये चालीस-पचास बरस कथा बाँचनेमें गये। वेदान्त बताया। मौत क्या है? अब अुसमें डर क्या?"

मैं यह सुनकर और भी सुन्न हो अुठा। न्यायासन से भिन्न कोअी और साधन मनुष्यकी कृति और मनकी जाँच करनेवाला हमारे पास न हो यह कितनी शर्म की बात है!

मैं सबेरे के नित्यकर्म पूरे करके आँगनमें जरा चहल कदमी कर रहा था कि अितनेमें बहुतसे बूट बालू पर फटक् फटक् तालबद्ध आवाज करते हुअे सुनाअी दिये। और हम चार पाँच मित्र वहीं ठिठक गये। हमारे मुँह के स्नायु और तन गये और ओठोंपर की लालिमा फीकी हो गयी। न बोलते हुअे हम समझ गये। बिलकुल गहरे में अेक मन ने दूसरे मनसे कहा "ये डोली वाले आ गअे। चार कहार मिलैं लै जाहीं..."

और हमने जल्दी जल्दी कदम अुठाअे, अंधेरी बौनी, परकोटे की दीवार की ओर। सीढ़ियों पर, कॉटकी चौखट पर जहाँ मिल अुस आधार पर चढकर हम अुस इहलोकसे मृत्यु तक के सौ दो सौ कदमों के रास्ते को आँखे फाड कर देखने लगे। मैं मृत्यु के दरवाज़े पर बिल्कुल सामने खड़ा था। दरवाज़े के सामने अेक हथियार बंद सिपाही खड़ा था। दो चार मिनिट बीत गअें। सिपाही ने फाँसी-गेट बैरक के दरवाजे की ओर लक्ष्य किया और झट से 'होशियार' कह कर वह बीचमें खड़ा हो गया और बुदबुदाया—"आअे!"

उसी क्षणमें हमारी गर्दनें आग झुकीं। दस पंद्रह सिपाही, सुपरिटेंडेट। जेलर, डाक्टर और मॅजिस्ट्रेट अैसे अफसरों के गिरोह में वह बुड्ढा आ रहा था। अुसके हाथ पीठ की ओर बँधे थे। सिरपर ढ़ीली सी अेक काली टोपी थी। वह धीमे धीमे आगे बढ़ा आ रहा

था ! अुसकी दोनों बाँहें दो सिपाहियों ने पकड रखी थीं। परंतु यह केवल अुपचार था। क्यों कि अुसके पैर मजबूत पड रहे थे। लडखडा नहीं रहे थे। और—

परंतु यहाँ से आगे के चार-दो क्षणका पूरा चित्र मेरे मन पर गहरा अंकित हो गया। फिर भी वह मुझे पूरी तरह याद हैं अैसा नहीं कह सकता। मनोव्यापार अेक अखंड बहनेवाले प्रवाह की तरह होते हैं। अैसा मेरा खयाल है। प्रवाह अुन दो-चार क्षणों में एकदम रुका, बंद हो गया था क्या, अैसा मुझे लगा।

मौत के दरवाजे से पाँच दस कदमोंपर आते ही किंचित् रुकते "हुअे अुस बुड्ढे ने मेरी ओर देखा और बिल्कुल अकंप दृढ बोली में अुसने कहा—" नमस्कार। सब लोगों को नमस्कार! मै जा रहा हूँ। पर हूँ मैं निरपराध। नमस्कार!"

गर्म सलाख की तरहसे वे शब्द मेरे कलेजे को जलाते हुए। मेरे हृदयके भीतर घुस गये। एक प्रचंड अपराधमें वह न्यायालय, वे फाँसी देने वाले अधिकारी। सारा समाज और मैं, सब शामिल है—अैसा मुझे लगा। और अिस बुड्ढे की गर्दन मैं काट रहा हूँ अैसी भावना मेरे मनमें भर गअी।

मेरे मनमें यह सब हलचल हो रही थी कि अुधर बुड्ढे ने एकबार अूपर आकाश की ओर निहारा याने निहारा और वह दरवाजे के पास आ पहुँचा। एक सिपाहीने आगे बढकर अुसके सिरपर की काली टोपी खींचकर गर्दनतक ले। तबतक इतने दिनों तक मजबूतीसे बंद दरवाज के कपाट खोले गये। देहली पार करके तीन पौडियाँ चढते ही मौत के मंचकपर मानों वह कैदी भी गया। एकदम दोनों पर एक दूसरेसे जुडे रहें इसलिए अुसके टखनों के पास बंद डाल दिये गये। तबतक सिरपर टँगा हुआ फंदा गर्दन के आसपास ढीला होता हुआ आ ही गया था।

अब अन्तिम क्षण। जेलर के अिशारे के साथ ही पैरोंके नीचे के तख्ते की खिडकी अेकदम टूटकर नीचे के गड्ढे में कैदी फेंक दिया जाता है। अेक झटका और फन्दा पक्का कसा जाकर, गर्दन की हड्डी रीढकी हड्डीसे टूटकर अलग होती, साँस लेने की नलिकाएँ अेकदम बन्द हो जाती। संवेदना समाप्त और प्राण भी अुड जाते। हुक से सीधा लटका हुआ वह धड अेक दो बार जरा हिला। निष्प्राण शरीर की वह अन्तिम कोशिश थी।

ठण् ठण्—दो घंटे बजे! अेक आदमी फाँसी दिया गया—अिस बात का यह अिशारा है। सब अधिकारी बाहर आ गये। और मौत के वे लोहे के दरवाजे फिर झट से बंद हो गये। लेकिन अब शायद वे जरा रहस्यमय हँस रहे थे, अैसा अभास हुआ। यह कुछ भी हो, मेरा मन अंदर ही अंदर रो रहा था। और रोते रोते कहता था..."मौत हमें लगती है अुतनी डरावनी नहीं है। जीवन और मरण के बीच की सीमारेखा कितनी झीनी है?"

अनुवादक—प्रभाकर माचवे.

● ●

* * *



दीवाली के बाद

राह देखते श्री लक्ष्मी के शुभागमनकी
बरबस आँख मुँदी निर्धनकी!
तेल हो गया खत्म, बुझ गए दीपक सारे;
लेकिन जलती रही दिवाली मुक्त गगनकी!

चूहे आए कूदे फाँदे और खा गए
सातदेवताओंको आर्पित खील बताशा
मिट्टीके लक्ष्मी गनेस गिर चूर होगए
दीवारें चुपचाप देखती रहीं तमाशा

चलती रही रातभर अुछल कुद चूहोंकी
किन्तु न टूटी नींद थके टूटे निर्धनकी।
सपने में देखा अुसने आअी है लक्ष्मी
पावों में बेड़ियाँ हाथ हाथकड़ियाँ पहने—

फूट फूट रोअी वह और लगी यों कहने
"पगले, मैं बंदिनी बनी हूँ धनवालोंकी
पाँव बँधे हैं कैसे आअूँ पास तुम्हारे?
नाग बने छातीपर बैठे हैं हत्यारे!

राम, तुम्हारी हूँ मैं लेकिन हार गअी हूँ,
सोने की लंका में लाकर धरी गअी हूँ!
बोलो, तुम मुझको कब बंधनमुक्त करोगे
रोग शोकसे मुक्त विश्व संयुक्त करोगे?"

धनवालोंकी दीवालीकी रात ढलचुकी!
अब निर्धन का दिन है, दिनका अुजियाला है!
सभी हुए संगठित फ़ैसला कर डाला है
"एक साथ हम सब रावण पर वार करेंगे,
अपनी दुनिया का दम खुद अुद्धार करेंगे,
अन्नपूर्णा लक्ष्मीको आजाद करेंगे,
स्वर्ग अिसी धरती पर हम आबाद करेंगे!"

—शङ्कर शैलेन्द्र

● ● ●

अनुक्रमणिका

किसीने कहा है: रवि बाबू की कहानी
पढकर संवेदनाक्षम पाठक बीस मिनिटोंमें से
५ मिनिट रोयेगा, १५ मिनिट
विचार करेगा...
यह है कहानी : एक था ब्राह्मण
युवा केशरलाल,
एक थी
मुसलमान
जवान शहाजादी।
पता नहीं, क्या
अुनकी हुई—



दुराशा

— रवींद्रनाथ ठाकुर

दार्जिलिंग पहुँच कर देखा वृष्टि से दसों दिशायें आच्छन्न हैं। घर से बाहर जाने की इच्छा नहीं होती और घर के भीतर रहने की प्रवृत्ति भी नहीं थी।

होटल में प्रातःकाल का भोजन समाप्त करके भारी बूट और आपदमस्तक 'म्याकिन्टश' पहन कर घूमने निकल पड़ा। जनशून्य 'क्यालकाटा-रोड' पर एकाकी पदचारण करते वक्त सोच रहा था कि अवलम्बन-हीन मेघ राज्य में तो अब अच्छा नहीं लगता. शब्दस्पर्शरूपमयी विचित्रा धरती माता को पुनः पाँच इन्द्रियों से प्राप्त करने की प्रबल इच्छा मन में उठने लगी।

इसी समय थोड़ी दूर पर किसी रमणी कंठ की सकरुण रोदन गुंजन ध्वनि सुनाई पड़ी। रोगशोक संकुल इस विचित्र संसार में रोदनध्वनि जरा भी विचित्र नहीं है, अन्यत्र किसी समय इधर दृष्टिपात भी नहीं करता किन्तु इस असीम मेघराज्य में वह रोदन समस्त लुप्त जगत् के एक मात्र रोदन की तरह मेरे कान में आकर बजने लगा।

रोदनध्वनि को लक्ष्य करके जानकर देखा गैरिकवसनावृत्, एक नारी रास्ते के किनारे एक शिलाखंड पर बैठी मृदुस्वर में रोदन कर रही है।

मन में सोचा, यह भी खूब रही, मानों काल्पनिक कहानी की तरह आरम्भ हो रही है, अपनी ओरसे कभी किसी सन्यासिनी को पर्वतशृंग पर बैठी रोती हुई देखूँगा ऐसी आशा कस्मिन् काल में नहीं थी।

लड़की की जात क्या है, यह समझ में नहीं आई। फिर भी हिन्दी में पूछा, "कौन हो तुम? क्या चाहती हो?"

अुसने कोअी अुत्तर नहीं दिया, मानों मेघ के भीतर से अुसने सजलदीप्तनेत्रों से मेरी ओर एकबार देखा।

मैंने पुनः कहा, "मुझ से डरो मत। मैं भद्र आदमी हूँ।"

सुनकर अुसने हँसते हुअे खास हिन्दुस्तानी में कहा, "बहुत दिनों से डर भय का रोग मुझ से हट गया है; शर्म-लाज भी मुझे छूती नहीं है। बाबूजी, अेक समय मैं जहाँ रहती थी वहाँ मेरा सहोदर भाअी भी बिना अनुमति के नहीं जाता था। आज विश्वसंसारमें मैं किसी से पर्दा नहीं करती।"

पहले जरा गुस्सा हुआ; मेरी चाल-ढाल बिल्कुल साहब जैसी है

अनुक्रमणिका

फिर इसने मुझे 'बाबूजी' कैसे कहा। अेकबार सोचा यही मेरे अुपन्यास को शेष करके सिगरेट का धूँआ अुड़ाता हुआ जाअूँ। किन्तु मन में रमणी के प्रति असह्य कुतूहलता हो रही थी। अन्त में कुतूहलता ने ही विजय पाअी। मैंने कुछ अुचभाव से पूछा, मैं तुम्हारी कुछ मदत कर सकता हूँ? तुम्हारी कोअी प्रार्थना है?"

अुसने मेरे मुँह की ओर स्थिर भाव से देखा और कुछ देर बाद संक्षेप में कहा, "मैं वद्रावन के नवाब गुलामकादर खाँ की कन्या हूँ।"

वद्रावन किस मुल्क में है और नवाब गुलामकादर कौनसा नवाब है और अुसकी कन्या किस दुःख से सन्यासिनी के वेश दार्जीलिंग में 'क्यालकाटा रोड' पर बैठ कर रो सकती है अुसके बारे में मैं कुछ भी नहीं जानता हूँ और विश्वास भी नहीं करता हूँ, फिर भी सोचा रसभंग नहीं करूँगा, कहानी खूब जम रही है।"

अुसी क्षण गंभीर होकर सलाम कर के बोला, "बेगम साहिबा माफ कीजियेगा, मैंने आपको पहचाना नहीं था।"

न पहचानने के अनेक कारण थे, अुनमें से सर्व प्रधान युक्तियुक्त कारण यह थी कि इतिपूर्व मैंन कभी भी उन्हें नहीं देखा था। तिसपर जैसा कुहरा था उसमें अपने हाथ पैरों को भी पहचानना कठिन था।

बीबी साहिबा ने भी मेरा कसूर नहीं लिया और संतुष्ट कंठ से

* * *

दाहिना हाथ उठा कर अुंगली से स्वतंत्र शिलाखंड दिखा कर कहा, "बैठिये!"

देखा, रमणी में आदेश करने की अपूर्व क्षमता है। वद्रावन के गुलामकादर खाँ की कन्या नूरउन्निसा या मेहेरउन्निसा या नूर-मुल्कने मुझे दार्जिलिंग में 'क्यालकाटा रोड' के किनारे अपने आसन के सामने बैठने की अनुमति दी है। यह बात होटल से 'म्याकिन्टस' पहन कर निकलते वख्त स्वप्न में भी नहीं सोची थी।

हिमालयवक्ष के शिलातल पर एकान्त में बैठे दो पान्थ नर नारी की रहस्यालाप कहानी सहसा सद्य सम्पूर्ण काव्यकथा की तरह ही लगती है। पाठक के हृदय में दूरागत निर्जन गिरिकंदर की निर्भर प्रपात ध्वनि और कालिदास रचित मेघदूत कुमारसंभव का विचित्र संगीत जाग अुठता है। तथापि यह मानना ही पड़ेगी कि बूट और 'म्यानिन्टस' पहने 'क्यालकटा-रोड' के किनारे कर्दयासन पर एक दीनवेशिनी हिन्दुस्तानी रमणी के साथ एकत्र अुपवेशनपूर्वक सम्पूर्ण आत्मगौरव को अक्षुण्ण भाव से अनुभव कर सकें ऐसे लोग विरल ही हैं। किन्तु अुस दिन घनघोर बाष्प से दसोंदिशायें आवृत थी। लज्जा करने योग्य कुछ भी दिखाअी नहीं पड़ रहा था; केवल अनन्त मेघराज्य में वद्रावन के नवाब गुलामकादेर खाँ की पुत्री और मैं। एक नवविकसित बंगाली साहेब—दोनों दो शिला खंडों पर विश्व-जगत् के दो खंड प्रलयावशेष की तरह बैठे थे। अिस विसदृश सम्मिलन का परम परिहास केवल हमारे अदृष्ट को ही गोचर था। किसी के दृष्टि-गोचर नहीं थी। मैंने कहा, "देवीजी, आपका यह हाल किसने किया?"

वद्रावन की कुमारी ने कपाल पर कराघात कर कह, "अैसा कौन किया करता है यह मैं क्या जानूँ? अितने बड़े पत्थर के कठिण हिमालय को किसने सामान्य बाष्प मेघ से अंतराल में कट रखा है?"

मैंने किसी प्रकार का दार्शनिक तर्क न अुठाते हुअे सब कुछ स्वीकार कर लिया।

देवी ने कहा, "मेरे जीवन की आश्चर्य कहानी आज ही समाप्त हुअी है। यदि फरमाअिश करें तो कहूँ।" मैंने आग्रह से कहा, "जरूर, जरूर! अिस में फरमाअिश की क्या बात है। यदि अनुग्रह पूर्वक कहें तो सुनकर अपने को धन्य समझूगाँ।"

देवी साहिबा ने कहाः "मेरे पितृकुल में दिल्ली के सम्राट वँश का तख्त था। अुसी कूपगर्वकी रक्षा करते रहने पर ही मेरे लिये अुपयुक्त दुल्हा नहीं मिल रहा था। लनखअू के नवाब के साथ मेरी सगाअी की बात चल रही थी। अिसी समय दाँत से कारतूस काँटने को लेकर सिपाहियों के साथ सरकार की लड़ाअी छीड़ गअी। हमारा किल्ला यमुना के किनारे था। हमारी फौज का अधिनायक था एक हिन्दू। अुसका नाम था केशरलाल।"

रमणी ने अिस केशरलाल के शब्द पर अपने कंठ का मानों सारा संगीत अुड़ेल दिया। मैं हिल-डुल कर ठीक से बैठ कर सुनने लगा।

"केशरलाल निष्ठावान हिन्दू थे। मैं प्रतिदिन सुबह अुठ कर अन्तःपुर के गवाक्ष से देखती, केशरलाल यमुना के जल में निमग्न रह कर

कर नवोदित सूर्य को अुद्देश्य करके अंजलि प्रदान करते थे। अिस के बाद सिक्त वस्त्रों से ही भैरव राग का भजन गाते गाते घर लौटते थे।

"मैं मुसलमान बालिका थी, किन्तु कभी भी स्वधर्म की व्यवस्था नहीं सुनी थी। अपने धर्म की अुपासना पद्धति भी मुझे ज्ञात न थी। उस समय विलास, सुरा और स्वेच्छाचार से हमारे पुरुषों में धर्म का बंधन शिथिल हो गया था। अन्तःपुर के प्रमोद भवन में भी धर्म सजीव नहीं था।

विधाता ने शायद मुझमें स्वाभाविक धर्मपिपासा दी थी। अथवा और कोई निगूढ़ कारण था या नहीं यह मैं नहीं कह सकती। किन्तु प्रत्यह प्रशान्त प्रभात के नवोन्मेषित अरुणालोक में निस्तरंग नील यमुना के निर्जन श्वेत सोपानतट पर केशरलाल की पूजा अर्चना को देखकर मेरा सूक्ष्म सुप्तोत्थित अन्तःकरण एक अव्यक्त भक्ति माधुर्यसे पूर्ण हो जाता।

संयत शुद्धाचार से ब्राह्मण केशरलाल की गौरवर्ण तरुण देह धूमलेशहीन ज्योतिः शिखा की लौ लगती थी; ब्राह्मण का पुण्य महात्म्य अपूर्व श्रद्धा के साथ इस मुसलमान दुहिता के मूढ़ हृदय को विनम्र कर देता।

मेरे एक हिन्दू बाँदी थी। वह प्रतिदिन केशरलाल के चरण स्पर्श करके प्रणाम करती और उनकी पद धूलि लेती थी। उसे ऐसा करते देख मेरे मन में आनन्द होता और बाँदी के प्रति ईर्ष्या भी होती। बीच बीच में वह बाँदी ब्राह्मण भोजन करा कर दक्षिणा देती। मैं आर्थिक सहायता देकर कहती, "तुम केशरलाल को निमंत्रण नहीं दोगी?" वह कहती, 'केशरलाल ब्राह्मण हैं, लेकिन किसी का अन्न ग्रहण या दान प्रति ग्रह नहीं ग्रहण करते हैं।"

इस तरह प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से केशरलाल को किसी प्रकार का भक्तिचिन्ह नहीं दिखा सकने पर मेरा चित्त मानों क्षुब्ध और क्षुधातुर हो गया।

हमारे किसी पूर्व पुरुष ने किसी ब्राह्मण कन्या से बलपूर्वक ब्याह किया था। मैं अन्तः पुर में बैठी उसी का पुण्यस्मरण अपनी शिराओं में अनुभव करती और उसी एकतत्व से केशरलाल के साथ एक ऐक्य की सम्बन्ध की कल्पना करके कुछ शान्ति पाती थी।

अुसी समय कम्पनी की सिपाहियों के साथ लड़ाअी छिड़ गअी। हमारे वद्रावन के छोटसे किले में विप्लवें की तरंग जाग अुठी।

केशरलाल ने कहा, "अब गो-माँस भक्षी गोरों को आर्यावर्त से निकाल कर ही दम लूँगा।"

मेरे पिता गुलामकादेर खाँ सावधानी व्यक्ति थे। अुन्होंने कहा, अंगरेज लोग असाध्य साध्य कर सकते हैं। हिन्दुस्तान के लोग अुनसे नहीं लड सकेंगे। मैं अनिश्चित प्रत्याशा में मेरा छोटासा किल्ला नहीं खोअूँगी। मेरे सैनिक अंगरेजों के साथ नहीं लड़ेंगे।"

जब हिन्दुस्तान के सारे हिन्दु-मुसलमानों का रक्त अुत्तप्त होगया था। तो भी अुस वक्त मेरे पिता की बनिये जैसी सावधानता को देखकर मेरे मन में अुनके प्रति घृणा पैदा हो गअी थी। मेरी बेगम माताअें तक चंचल हो गयी थीं।

अिसी समय सशस्त्र फ़ौज लेकर केशरलाल ने मेरे पितासे कहा, "नवाब, आप यदि हमारे पक्ष में नहीं मिलेंगे तो जब हमारी लड़ाअी चलेगी आपको बंदी करके आपके किले का आधिपत्य अपने हाथ में रखूँगा!"

पिताने कहा, "यह सब कुछ नहीं करना पड़ेगा। तुम निश्चिन्त रहो, मैं तुम्हारे ही दल में रहूँगा।" केशरलाल ने कहा, "धनकोष से कुछ अर्थ चाहिये।" मेरे पिता ने विशेष कुछ न देकर कहा, "जब जब आवश्यकता पड़ेगी तब तब देता रहूँगा।"

मेरे पास जितने आभूषण थे अुसे एकत्र करके हिन्दु दासी के हाथ केशरलाल की भेज दिये। अुन्होंने जब मेरे गहने ले लिये तो आनन्द से मेरा रोम रोम पुलकित हो अुठा था।

केशरलाल ने पुरानी तलवारों और बन्दूकों की सफाअी करनी शुरू कर दी। सहसा अिसी समय जिले के कमिश्नर साहब गोरों की फौज लेकर हमारे किल्ले में आगये।

मेरे पिताने चोरी से अुन्हें विद्रोह का संवाद भेज दिया था।

वद्रावन की फौज पर केशरलाल का अैसा प्रभाव था कि अुनके कहते ही टूटी हुअी बन्दूकों और पुरानी तलवारों को लेकर वे लड़ने को प्रस्तुत हो गये।

विश्वासघातक पिता का घर नरक की तरह लगने लगा। क्षोभ, दुःख और लज्जा से हृदय विदीर्ण हो रहा था। मेरे डरपोक भाअी की पोशाक पहन कर मैं चुपचाप किसी से कुछ न कह कर घर से निकल पड़ी।

धूल और बारूद के धूँअे के सारा आसमान भर गया था। यमुना के जल को रक्तराग में रंग कर भास्कर भगवान अस्त हो गये। संध्या के आकाश में परिपूर्ण पार्थ चन्द्र का अुदय हुआ।

रणक्षेत्र का दृश्य अति भयानक था। दूसरे समय में मेरा हृदय अिस दृश्य को देख कर विदीर्ण हो जाता। किन्तु अुसदिन स्वप्नाविष्ट की तरह मैं केवल केशरलाल का ही संधान कर रही थी।

ढूँढते ढूँढते रात्रि के द्वि-प्रहर में अुज्वल चन्द्रालोक में देखा रणक्षेत्र से थोड़ी दूर पर यमुना के किनारे आम्र कानन की छाया में केशरलाल

और अुनके भृत्य देवकीनन्दन का मृतदेह पड़ा है। समझते देर न लगी कि भयंकर आहट अवस्था में या तो प्रभु ने भृत्य को अथवा भृत्य ने प्रभु को रणक्षेत्र से अिस निरापद स्थान पर लाकर मृत्यु के हाथों में आत्म समर्पण कर दिया है।

मैंने भ्रू-लुटित होकर अपनी बहुदिनों की अभिलाषा चरितार्थ की। केशरलाल के पैरों पर गिर कर मेरे केश खोल कर बारंबार अुनकी पदधूलि पोंछने लगी। मेरे उत्तप्त ललाट पर अुन के पादपद्म का स्पर्श किया। अुनके चरणों का चुम्बन करते ही बहुत दिनों की निरुद्ध अश्रुधार अुद्वेलित हो अुठी।

अिसी समय केशरलाल का देह विचलित हुआ। अुनके कंठ से वेदना का स्फुट सुन कर मैं अुनके चरणतल छोड़ कर चौंक अुठी, सुना। निमीलित नेत्रों से, शुष्क कंठ से अुन्होंने कहा, 'पानी'।

मैं तत्क्षणात् मेरे गात्रवस्त्रों को यमुना के जल में भिगो कर ले आई और वस्त्रों को निचोड़ कर अुसका पानी उनके मुँह में डालने लगी। केशरलाल के क्षतस्थानों पर पट्टी बाँध दी।

इस तरह कई बार यमुना से पानी लाकर अुनके मुँह पर डालती रही। धीरे धीरे अुन्हें चेतना हुई। मैंने पूछा "और पानी दूँ?"

केशरलाल ने पूछा, "कौन हो तुम?"

मैंने कहा, "आपकी सेविका, नवाब गुलामकादेर खाँ की कन्या हूँ।" यह कह कर सोचा था कि मृत्यु के समय केशरलाल अपने भक्त का शेष परिचय लेते जायेंगे। अिस सुख से मुझे कोई वंचित नहीं कर सकता।

मेरा परिचय पाते ही केशरलाल सिंह की तरह गर्जन कर उठे, "बेइमान की बेटी, विधर्मी! मृत्यु के समय भी यवन का पानी पिला कर मेरा धर्म खा गई।" कह कर प्रबल शक्ति से मेरे कपाल पर दहिने हाथ से आघात किया। मै मूर्छितप्राय होकर चारों ओर अंधकार देखने लगी।"

मै मंत्रमुग्ध की तरह बैठा था। कहानी सुन रहा था या संगीत सुन रहा था मालूम नहीं। मेरे मुँह से एक भी शब्द नहीं निकला था। अितनी देर बाद सहसा असह्य होकर बोला, "जानवर!"

नबाब कन्या ने कहा, "कौन जानवर? जानवर क्या मृत्यु यंत्रणा में मुँह का पानी फेंक देता है?"

मैंने कहा, "तब, केशरलाल देवता है!"

नवाब दुहिता ने कहा, "कैसे देवता? देवता क्या भक्त की अेकाचित्त की सेवा प्रत्याख्यान किया करते हैं?"

"यह भी ठीक है!" कह कर मैं चुप होगया।

नबाब पुत्री कहने लगी, "पहले तो मैं विस्मित रह गअी। अैसा लगा मेरे अूपर आसमान टूट पड़ा है। चेतना पाकर कठोर कठिन निष्ठुर निर्विकार पवित्र ब्राह्मण को दूर से प्रणाम किया।

नबाब दुहिता को मूर्छित होकर प्रणाम करते देख कर केशरलालने मन में क्या सोचा था यह तो कह नहीं सकती किन्तु, अुनके मुँह पर किसी प्रकार का भावान्तर नहीं आया। केवल शान्तभाव से मेरी ओर देख कर चले गये। यमुना के घाट पर एक छोटीसी नाँव थी। अुस नाँव पर बैठ कर केशरलाल ने नाँव खोल दी। देखते देखते नाँव अदृश्य हो गअी।" यह कह कर नबाब कन्या चुप होगअी। मैं भी कुछ नहीं बोला।

बहुत देर बाद वक्ता ने फिरसे शुरू किया, "अिसके बाद की घटनावली अत्यन्त जटिल है। एक गंभीर जंगल के भीतर से यात्रा की थी। कौन से रास्ते से चली थी अब क्या अुसे ढूँढा जा सकता है? किन्तु जीवन के अिन कुछ दिनों में ही समझ गअी कि असाध्य या असंभव कुछ नहीं है। नबाब के अन्तःपुरकी बालिका के लिये बाहर की दुनिया एकान्त ही दुर्गम हो सकती है, किन्तु वह काल्पनिक है। एकबार निकल पड़ने पर चलनेके लिये एक न एक रास्ता मिलेगा ही। वह रास्ता नबाबों का नहीं है। अुस पर चिरकाल के लोग चलते आये हैं-वह विचित्र है, सीमाहीन है, पर, है तो रास्ता ही!"

अिस साधारण मानव के चलने के पथ पर एकाकिनी नबाब दुहिता की सुदीर्घ यात्रा का वृत्तान्त मनोरंजक नहीं होगा, होनेपर भी अुन बातों की पुनरावृत्ति करने का अुत्साह मुझ में नहीं है। संक्षेप में यही कह सकती हूँ, दुःख कष्ट मुझे बहुत सहने पड़े हैं फिर भी जीवन असह्य नहीं लगा। आतशबाजी की तरह जितनी जलती गअी अुतनी ही अुद्दाम गति पाती गअी। जब तक वेग से चलती रही तब तक जलती रही हूँ, अैसा बोध नहीं हुआ। आज सहसा अुस परम दुःख के चरम सुख की आलोक वर्तिका के बुझते ही पथश्रान्त की धूलि पर जड़ पदार्थ की तरह गिर पड़ी हूँ-आज मेरी यात्रा शेष हो गअी है। यही मेरी कहानी भी समाप्त होती है।"

यह कह कर रमणी खड़ी हो गअी और बोली, "नमस्कार बाबूजी।"

दूसरे क्षण मानो संशोधन कर के बोली, "सलाम बाबू साहाब!" अिस मुसलमानी अभिवादन के साथ ही वह अुस हिमाद्री शिखर के धूसर कुहरे में अदृश्य हो गअी।

आँखें खोल कर देखा, सहसा, मेघ के भीतर से स्निग्ध सूर्यालोक से झलमलाता हुआ आकाश दृष्टिपथ पर अुद्भासित् हो अुठा। गाड़ी पर अंगरेजी रमणी और अश्वपृष्ठ पर अंगरेज पुरुषगण हवाखोरी के लिये निकले हैं।

द्रुत अुठ खड़ा हुआ। अिस सूर्यालोक में वह मेघाच्छन्न कहानी सत्य नहीं लगती थी। मेरा विश्वास है, मैंने पर्वत के कुहरे के साथ अपनी सिगरेट की धूमकुंडली मिला कर अेक कल्पना की थी। वह मुसलमान ब्राह्मणी, वह विप्रवीर, वह यमुना के तीर का किल्ला, यह सब शायद कुछ भी सत्य नहीं है।

अनुवादक : राधेश्याम पुरोहित







हमें आज मनुष्य के सामने जीवन के शाश्वत मूल्यों और आदर्शों को फिरसे प्रतिष्ठापित करना चाहिए।



—रतनलाल जोशी



युद्धोत्तर विश्व जिस व्यापक संक्रांति के बीच से गुजर रहा है वह अपने स्वरूप में केवल राजनीतिक या आर्थिक विघटन का ही प्रतिफल नहीं है, वरन् सामूहिक रूप से सारी मानव-संस्कृति का संकट है। विश्व संस्कृति अपने विकास में एक निर्णायक बिन्दु पर आकर रुक गयी है। यह विकास अितना सरल और एकरूप नहीं रहा है जैसा कि अक्सर हम सोचते रहे हैं। साथ ही, यह एक देश या महाद्वीप तक भी सीमित नहीं रहा है। अपने प्रभाव में यह विश्व-व्यापी है एवं विभिन्न समाज में अिसका रूप भी विभिन्न होता गया है। भारत की समस्यायें अमेरिका की समस्याओं से एकदम भिन्न हैं और अिसी प्रकार अमेरिका की समस्यायें रूस की समस्याओं की अपेक्षा भिन्न दर्जे की हैं। लेकिन सब एक ऐसे विराट एवं जटिल गोरखधंधे में अन्तर्ग्रथित हो गयी हैं कि, हमारे राजनीतिज्ञ और अर्थशास्त्री अुनको सुलझाने के लिये व्यर्थ एवं असफल संघर्ष कर रहे हैं। वास्तव में, अुनकी सामर्थ्य का काम यह नहीं है। अुनकी योजनायें समाज को एक बने-बनाये तंग यांत्रिक ढांचे में बलात् घुसेड़ना चाहती है-एक राजनीतिक अथवा आर्थिक नक्शे की स्थिर सीमाओं में एक सक्रिय सामाजिक विकास को बंदी बनाना चाहती हैं। यह वस्तुस्थिति की एकदम अवहेलना है। समस्या का समाधान अिसके अेकदम विपरीत है। राजनीतिक या आर्थिक विधानों का निर्माण अैसा होना चाहिये कि वे सामाजिक विकास की शर्तों को पूरा कर सकें और अुन आवश्यकताओं के अनुशासन का पालन करते रहें।

पाश्चात्य देशों में असंतुलित औद्योगिक विकास का सबसे पहिला परिणाम यह हुआ कि गांव खाली होते गये और नगरों की जनसंख्या बहुगुणित होती गयी। ग्राम्य समाज का काफी बड़ा अंश नागरिक समाज का अंग बन गया। फलतः गांवों के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन में अेक विशाल रिक्तता पैदा हो गयी, जिसकी पूर्ति का अभी तक कोई प्रयत्न नहीं किया गया। क्योंकि राष्ट्र के सभी सबल तत्व बड़े नगरों में ही केंद्रित हो गये थे। इस प्रकार सारा सामाजिक विकास असंतुलित हो गया और सांस्कृतिक प्रवाह में भी स्वभावतः व्यतिक्रम पैदा हो गया। आज के पतनोन्मुख पाश्चात्य समाज की यह मूल विशेषता है। भारत में भी यह प्रक्रिया शुरू हो गअी है। जनसंख्या का प्रवाह गांवों से शहरों की ओर व्यापक होता जा रहा है। फलतः राष्ट्र के सामने सांस्कृतिक वैषम्य की समस्या अुत्तरोत्तर जटिल होती जा रही है। वह किसी नियंत्रण के अभाव में निरन्तर विस्तृत ही होती जा रही है। यदि अिस समस्या का समाधान नहीं खोजा गया, तो हमारा सांस्कृतिक जीवन भी निकट भविष्य में अिसी प्रकार संकट-ग्रस्त हो जायगा जैसा कि पाश्चात्यजगत् का सांस्कृतिक जीवन आज हो गया है। अतः सामाजिक असंतुलन का निराकरण हमारी आज की सबसे बड़ी समस्या है जिसको हल करने के लिए हमें सांस्कृतिक विकेंद्रीकरण की योजनायें अपनानी चाहिये; क्योंकि विकेंद्रीकरण के द्वारा ही सांस्कृतिक वैषम्य का निराकरण होगा और संस्कृति को स्वस्थ विकास के लिये एक समन्वयात्मक आधार-भूमि प्राप्त हो सकेगी। आर्थिक विकेंद्रीकरण पर जोर देना अनुचित नहीं है; किन्तु अेक राष्ट्र के अन्तर्गत आर्थिक क्षेत्रों या स्रोतों से परे अन्य अैसे स्रोत भी है, जिनका अधिकाधिक समान वितरण गांव अेवं नगर के बीच में बना रहना चाहिये। सांस्कृतिक विकेन्द्रीकरण की योजना के अन्तर्गत अैसे ही स्रोतों का समावेश रहता है।

नागरिक ब्यूरोक्रेटिक केन्द्रीकरण के घातक प्रभावों का प्रतिरोध संसार की कोअी भी संस्कृति अभी तक नहीं कर सकी है। यह अेक सुप्रमाणित अैतिहासिक सत्य है। अतः अेल्डस हक्सले जब नगर को ‘संस्कृति की समाधि’ कहता है,

तो उसे अेक मनीषी के अनुभवजन्य सत्य का साक्षात्कार ही मानना चाहिये। पाश्चात्य जगत् की संस्कृति आज क्षयग्रस्त अिसलिये हो गअी कि वहां के सामाजिक जीवन के आत्मप्रेरित विकास को केंद्रीभूत ब्यूरोक्रेटिक नियंत्रण द्वारा स्थानापन्न कर दिया गया। संस्कृति के प्रकृत अुन्मेष पर नियंत्रण और प्रतिबंध थोपे गये। विजातीय तत्वों की व्यापक सड़ान से संस्कृति का सारा शरीर विषाक्त हो गया और परिणामतः सारा सामाजिक संगठन निर्जीव बन गया। अिसी क्षयग्रस्त पाश्चात्य संकृति का अवतरण भारत में बड़ी तेजी से हो रहा है। राजनीति के जटिल विधानों से लेकर शिक्षा के सरल क्रम तक में पश्चिम का अंधानुकरण किया जा रहा है। ब्यूरोक्रेटिक शक्तियों को अपने प्रभुत्व के केन्द्रीकरण का अुपयुक्त अवसर मिल रहा है। सामाजिक मूल्यों को फिर से परीक्षित करने और स्थितिगत यथार्थताओं के अनुकूल जन-शिक्षण की कोअी योजना नहीं बनाअी जा रही है।

विज्ञान और टेकनोलाजी की अुपयोगिता का दायरा नगरों की कृत्रिम समृद्धि तक ही सीमित बना दिया गया है। ग्राम्य जीवन की आवश्यकताओं के साथ अुनका सामंजस्य जोड़ने का अभी तक कोअी प्रयत्न नहीं किया गया। विज्ञान पर नगरों के अिस अेकाधिकार ने देश के सामाजिक जीवन को विशृंखल कर दिया है। अेक राष्ट्र की संस्कृति दो विभिन्न मार्गों में विभाजित होकर अेक-दूसरे के काफी विपरीत पड़ती जा रही हैं। अिस विग्रहात्मक संकट से सामाजिक जीवन को सुरक्षित रखने के लिये यह आवश्यक है कि गांवों और नगरों के बीच विज्ञान के समान अुपयोग द्वारा फिर से संतुलन कायम किया जाय। जिस विज्ञान और टेकनालाजी का अुपयोग नागरिक व्यवसायों के विकासार्थ किया जा सकता है अुनका लाभ ग्राम्य जीवन के लिए भी संचाया जा सकता है। आधुनिक संयुक्त-राज्य-अमेरिका अिस अभियान की सफलता का ज्वलन्त प्रमाण है। बीस वर्ष पूर्व वहां अिस संबंध का एक आन्दोलन शुरू किया गया था, जिसकी योजना थी कि कोअी भी गांव विद्युत्-शक्ति के प्रयोगों से वंचित न रहे। हमारे यहां भी महात्मा गांधी की प्रेरणा से ग्राम्यसुधार की योजनाओं का काफी प्रचार हुआ है। उन्होंने स्वयं उदाहरण पेश करते हुए सेवाग्राम को एक तरह से भारत की राजधानी ही बना दिया था। लेकिन अुनके अन्य अनुगामियों ने अिस आन्दोलन को शाब्दिक सहयोग ही दिया और आज तो अैसे आन्दोलनों के अस्तित्व तक का स्मरण हमारे नेताओं को शायद नहीं रहा है।

संस्कृति और सभ्यता में परस्पर बड़ा अन्तर है। दोनों एक नहीं हैं जैसा कि अक्सर समझ लिया जाता है। संस्कृति का क्षेत्र हमारा वह दैनिक जीवन है जिसमें हमारी चेतना अनेक रूपमें अपना स्पष्टीकरण करती है। संक्षेप में, हम जैसे भी कुछ है वही हमारी संस्कृति है। सभ्यता की परिधि अुससे बिलकुल भिन्न है। सभ्यता का सम्बन्ध अुस सामग्री से है जिसका हम अपने दैनिक जीवन में प्रयोग करते हैं। वायुयान से लेकर हथौडे तक जो जीवनोपयोगी अुपकरण हमारे कर्मक्षेत्र में व्यवहृत हो रहे हैं वह सभ्यता की देन है।

संस्कृति का कर्मक्षेत्र इससे बिल्कुल भिन्न है। अेक निरक्षर व्यक्ति भी अेक दार्शनिक की अपेक्षा अधिक सुसंस्कृत हो सकता है। संस्कृति का सम्बन्ध अपने मूल में हमारी मानवीयता से है। वस्तुतः मनुष्यता ही संस्कृतिके मूल्यांकन का मापदंड होना चाहिये। क्योंकि अिसी स्तर पर जीवन प्रणाली के अन्तिम गंतव्य का निर्णय सम्भव हो सकता है। अिसी धरातल पर जीवनका परीक्षण स्पष्ट करता है कि मनुष्य स्रष्टा है और वह अपने विचारों को अैसे अनश्वर आकार भी दे सकता है, जिन्होंने स्वयं काल को पराजित किया है। यहां सभ्यता और संस्कृति का अन्तर और भी स्पष्ट हो जाता है। सभ्यता का तकाजा उपयोगिता में केंद्रित है। यह हमारे जीवन का पाशविक पक्ष है। दूसरी ओर संस्कृति सारा महत्व सृजनानन्द को ही देती है। परिपूर्ण आत्म-साक्षात्कार एवं मानवता की अुत्तरोत्तर गहरी अनुभूति संस्कृति के विकासोन्मुख रूप की देन है। यह हमारा मानवीय पक्ष है-हमारे समृद्धतम क्षणों का आचरण है।

भारतीय संस्कृति की परम्परा ने मनुष्य को ही सर्वोपरि गौरव प्रदान किया है। शांतिपर्व में भगवान व्यास ने व्यक्ति किया है-" गुह्य ब्रह्म तदिदंब्रवीमि नहि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित्-" अर्थात् मैं तुम्हारे सम्मुख अिस रहस्यमय तत्व का स्पष्टीकरण करता हूँ कि मनुष्य से श्रेष्ठ यहां अन्यथा कुछ भी नहीं हैं।

मनुष्य के वास्तविक रूप का रहस्योद्‌घाटन भारत की सांस्कृतिक परम्परा का मूल बिन्दु रहा है। मानव में विराट् की जिस अनुभूति के दर्शन हमने गांधीजी के अवतरण में किये वह एक आकस्मिक घटना नहीं थी, वरन् सदियों की सतह पर अप्रतिहत बहता हुआ एक अदम्य प्रवाह था। जो भारतीय संस्कृति की मूल प्रेरणा है। पिंड में ब्रह्मांड की कल्पना में मनुष्य के प्रकृत गौरव की ही घोषणा है। अथर्ववेद की अिस ऋचा में यह कल्पना कितने अूंचे स्तर का स्पर्श करती है-" समुद्रो यस्य नाड्यः पुरुषेधि समाहिताः " (अथर्ववेद १०. ७. १५)

अर्थात् समस्त समुद्रों का अनन्त प्रवाह अिस मनुष्य की नाड़ी में ही स्पंदित होता रहता है।

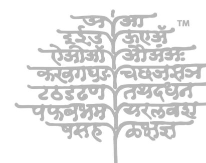
मुंडकोपनिषद् में तो अेक स्थल पर मनुष्य को ही ' विश्वात्मा ' और ' परमअमृत ' माना है— "मनुष्य ही ब्रह्म हैं और मनुष्य के महत्त्व की अनुभूति प्राप्त करना ही मुक्ति प्राप्त करना है।"

" अेतदयो वेद निहतं गुहायां सो विद्याग्रंथि विकिरतीह सोम्या। "—(मुंड २. १. १०)

लेकिन आज विश्व की अन्य संस्कृतियों की भांति भारतीय सांस्कृतिक जीवन में भी मनुष्य का कोअी महत्त्व नहीं शेष रहा है। विश्व-संस्कृति के संकट का अेकमात्र निदान यही है। विज्ञान और टेकनालाजी के दानवीय जडत्व के सामने व्यक्ति की स्वतंत्र सत्ता अेकदम अन्तर्धान हो गयी है। अपने ही द्वारा निर्मित यंत्रयुग के चक्रव्यूह में व्यक्ति अपनी व्यक्तिमत्ता को खो चुका है और परिणाम में अेक अभिशप्त अस्तित्व की अनन्त परम्परा ही अुसके सामने शेष बच गयी है। व्यक्ति अपने स्वयं से आज कितना दूर भाग गया है?

यह सब बौद्धिक समीकरण के अभाव का ही परिणाम हैं। सभ्यता की प्रगति के प्रत्येक कदम

अनुक्रमणिका







मेरा घर मुझसे कहता है—" मुझे छोडके मत जाओ। तुम्हारा अतीत क्या, यहीं बसेरा नहीं करता ? "

और राह मुझे खींचती हुई कहती है : " चलो भाई, चलो मेरे साथ, क्यों कि मैं तुम्हारा भविष्यत् हूँ। "

पर व्यक्ति के जीवन और विचारों में वैषम्य घनीभूत होता गया और जीवन-यापन की जटिलताओं ने अग्रसर होने से मुंह न मोड़ा। फलतः व्यक्ति अपने समाज से भी दूर हटता गया। मशीन-युग के प्रारम्भ ने अुत्पादन को निरंकुश महत्त्व देकर पारस्परिक प्रतियोगिता और संघर्ष की अैसी परिस्थितियां पैदा कर दीं कि पारस्परिक संहार द्वारा आत्म-विनाश के सिवाय व्यक्ति के सामने कोअी चारा ही न रहा। संक्षेप में, आज का व्यक्ति अेक लंगरहीन जहाज की भाँति निरुपाय मँडरा रहा है।

मनुष्य के सांस्कृतिक संकट का यह विश्लेषण आज हमारे सामने अेक अनिवार्य दायित्व लेकर पेश होना चाहिये।यह दायित्व है आधुनिक मानव का पुनर्मानवीकरण। हमें आज के मनुष्य के सामने जीवन के उन शाश्वत मूल्यों और आदर्शों को फिर से प्रतिष्ठित करना होगा जिनके अभाव में हमारा वर्तमान अस्तित्व एक खोखला स्वप्न ही है। जीवन के मापदंडों में आमूल परिवर्तन करने के लिये हमें तत्पर हो जाना चाहिए।

यह एक व्यापक नैतिक क्रान्ति का मार्ग है जिसमें कान्फ्रसों और प्रस्तावों की भाषा के लिये कोअी स्वाकृति नहीं है। राज्य-सत्ता और उसके कानून भी अिस अभियान में अपना योग नहीं दे सकते। कर्म की उत्पत्ति मनुष्य के मस्तिष्क से ही होती है। अिस सदी में जो दो नरमेध हुए उनका बीजारोपण मनुष्य के मस्तिष्क में ही हुआ था। आगामी महायुद्ध के विषय में भी यही सत्य हमारी चेतना के सामने स्पष्ट हो रहा है। प्रस्तावों, व्याख्यानों और बाह्य आश्वासनों से अिस बीजारोपण का निराकरण नहीं हो सकता। नैतिक अनुशासन ही-चाहे वह किसी भी रूप में हो। अिस समस्या का एकमात्र समाधान है। क्योंकि मनुष्य के मस्तिष्क को नियंत्रित करने की वास्तविक सामर्थ्य केवलमात्र नैतिक अनुशासन में ही है।

दूसरे महायुद्ध के बाद काफी बड़े लोकसमाज का ध्यान अिस ओर आकृष्ट हुआ है और राष्ट्र-संघ में भी एक विभाग ' यूनेस्को ' के नाम से खोल दिया गया है। लेकिन अैसी संस्थाओं द्वारा नैतिक क्रान्ति के लिये जिन साधनों का अवलम्ब लिया गया है वे अेकदम पंगु हैं और अुनका अवलम्ब व्यक्त करता है कि अुन संस्थाओं ने अभी तक रोग के लक्षणों तक को नहीं समझा है। क्योंकि जिस जन-समाज का मस्तिष्क असाध्य रूप से विषाक्त हो चुका है, अुसे शुष्क बौद्धिक प्रचार द्वारा नये मार्ग पर लाना बिल्कुल असम्भव है। अैसी परिस्थितियों में और अैसे पंगु साधनों द्वारा नैतिक क्रान्ति की शर्तों को पूरा नहीं किया जा सकता। नैतिक क्रान्ति का लक्ष्य सारी जीवन-प्रणाली को नये ढांचे में ढालना है।

नैतिक क्रान्ति मानवीय व्यक्तित्व की प्रत्येक विशृंखल रेखा को आत्मस्फूर्त अिकाई बनाकर अेक अैसे विन्यास में संग्रथित करनेवाली रचनात्मक शक्ति होनी चाहिये जो आधुनिक मानव की अनेकांगी विभक्तियों के कारणों को निर्मूल कर दे और अुनसे अुत्पन्न सामाजिक असंगतियों और विकृतियों को सदैव के लिये मिटा दे। नैतिक क्रान्ति की अिस लक्ष्य-परिधि से यह स्पष्ट हो जाता है कि वर्तमान सांस्कृतिक संकट से त्राण पाने के लिये हमें अपनी शिक्षा-प्रणाली में आमूल परिवर्तन करना पड़ेगा। यह बिल्कुल स्पष्ट हो गया है कि अपने वैयक्तिक अेवं सामाजिक सुस्वास्थ्य के लिये हमें आज अैसी प्रणाली अपनानी होगी जो हमारी चेतना की समस्त प्रवृत्तियों को आस्थात्मक और रचनात्मक मार्ग पर आगे बढ़ा सके और जो पतनोन्मुख अवसाद-परम्परा के विरुद्ध हमें सुरक्षा दे सकें। धर्मसंघों के मतवादों, राजदंडों और कानूनी प्रतिबंधों के प्रेरणा-विनाशक आयोजनों से संस्कृति के रोगों का निराकरण नहीं हो सकता। मनोवैज्ञानिक स्तर पर नैतिक सुधारवाद की यह प्रणाली असफल हो चुकी है। क्योंकि प्रतिबंधों के भय से व्यक्ति की समाज-विरोधी प्रवृत्तियां भीतर ही दबकर सड़ने लगती हैं। मानस के गहरे गर्त्त में शरण लेकर वे सड़ान की रासायनिक प्रक्रिया से अैसे विस्फोटक और विध्वंसात्मक तत्त्वों को जन्म देती हैं, जो सारे समाज और संस्कृति को विषाक्त और विघटित कर देते हैं और अपने अुग्र रूप में विश्वव्यापी नरसंहार का सृजन करते हैं। दंड-विधान और प्रतिबंधों से अुत्पन्न अवसाद अन्ततः मनोवैज्ञानिक धरातल पर आक्रमण और हत्या का ही प्रतिरूप होता है।

● ●



खेत फसलसे
लहलहाने लगे कि
भादोंमे : शुरू होता है

कर्मा उत्सव

— दुर्गा भागवत



खेत फसलसे लहलहाने लगे कि भादों में कर्मा अुत्सव शुरू होता है। मध्य भारत के किसान वर्गों अेवं वन्य कौमों में इसको काफ़ी महत्त्व है। अुच्च वर्णियों को अिसका कोअी महत्त्व नहीं है। अिस अुत्सव के तीन प्रमुख अंग है : विधि, नाच और गान। तथापि कतिपय स्थानों पर विधि का लय हुआ है और शेष क्या है नाच अेवं गान! कर्मा-अुत्सव मध्य प्रदेश, छोटा नागपूर, बिहार, ओडिसा के पास वाले रियासती राज्य (जैसे बस्तर और सारंगगढ) मिर्जापूर जिला, और कैमूर पर्वत के अधिकांश प्रदेश में प्रमुखतया सम्पन्न होता है। फिलहाल, मध्यप्रदेश के कर्मा अुत्सव के अवलोकन के आधार पर अुसकी महत्त्व की प्रवृत्तियों का निर्देशन करना अिस लेखका प्रयोजन है।

मध्यप्रदेश मे हिन्दु धर्म की निम्न जातियों में कर्मा बडा ही लोकप्रिय बना है। वन्य जातियों में भी अुसके प्रति असाधारण आकर्षण पाया जाता है।

विशेषत : मंडला, बालाघाट, रायपूर का अुत्तर प्रदेश, दुग का अुत्तर प्रदेश, जशपूर, सारंगगढ़, रायगढ-परिसर में कर्मा-गान सदा गूँजते हैं। तथापि रामपूर के दक्षिण में, दुग की आग्नेयको, औंधी व पाबरस विभाग में, जहाँ कर्मठ गोंड संस्कृति विद्यमान है, वहाँ कर्मा अप्रवेशित है। बस्तर में भी 'कर्मा' का अभाव है अिस अभाव का तात्पर्य है कर्मा गोंड-संस्कृति से विनिर्मित अुत्सव-विशेष नहीं है। अुसका मूल स्रोत मध्यप्रदेश के बाहर का अथवा ऑस्ट्रोलाअिड वंश के आदिवासियों में होनेकी अधिक सम्भाव्यता है।

मध्यप्रदेश में गोंड और विशेषतः बैगा जातिमें विभिन्न ढँगों से कर्मा नृत्य नाचे जाते हैं तथा असंख्य गीत गाये जाते हैं। घसियों का 'कर्मा' भी काफी प्रसिद्ध है। और बिलासपूर के मझवारोंका तो अुस से भी बढकर! सहसाओंका कर्मा अुल्लेखनीय है। ध्यान में रखना होगा कि ये तीनों जातियाँ मध्यप्रान्त के बाहर के प्रदेश में ही बहुसंख्या में पायी जाती हैं। मझवारोंको छोड़कर अन्य अुल्लिखित जातियों में "विधि'—प्रवृत्ति लुप्त हो गअी है।

मझवारोंकी कर्मा की अेक कहानी है : सात भाअी थे। छः भाअी खेतीपर जाते और भौजाअियोंने खाना तैयार होनेपर सातवाँ भाअी अुसे लेकर खेतपर जाता। अिस छोटे भाअीने, कर्मा की-करमर की -डाली आंगनमें कलमी; और अुस कलम को वर्तुलकर वह अपनी भौजायियोंके संग नाचता और गाता जाता—! अिसी कारण अेक बार भाअियोंके पास भोजन ले जानेमें अुसे देरी हुअी। फलतः भाअी गुस्सा हुअे और अुन्होंने कर्मा की कलम अुखाड फेंक कर नदीमें फेंक दी। ये देख, छोटा भाअी रुष्ट हुआ और अुसने घर को त्यागा। संकटोंके पहाड अुसपर गुजरे। अन्तमें नदीमें तैरनेवाली "कर्मा" देविको अुसे साक्षात्कार हुआ और अुसका भाग्योदय हुआ। तबसे अुसने कर्मा-देविको प्रतिवर्ष पूजा करने का व्रत लिया। वह घर लौटा। भाअी विपन्न और दरिद्री बने थे। अुन्हें अुसने कर्मा देविका साक्षात्कार की कथा बयान की और तबसे कर्मा अुत्सव हर घर-पर सम्पन्न होने लगा।

कर्मा की विधि और नृत्य

भाद्रपद शुद्ध ऐकादशीपर कर्मा का प्रारम्भ होता है और अुपरान्त दस दिनोंतक यह उत्सव सम्पन्न होता रहता है। पुरुष अुस दिन अनशन करते हैं। दायें बाहुमें मंत्रित गण्डा बांधा जाता है। अुपरान्त वनमें जाकर कर्मा की–करमर न होनेपर आँवले की–डाली तोडकर आँगनमें कलमी जाती हैं। पुरुष अुस डालीको प्रणिपात करते हैं और स्त्रियाँ अुसे सेंदूर लगाती हैं। पश्चात् स्त्री-पुरुष मद्य का नैवेद्य कर्मा-राजा को अथवा देविको दिखाकर यथेच्छ सुरापान करते हैं और फेर लगाकर नाचते और गाते जाते हैं। अैसे प्रसंगोंपर कर्मा-गीत अधिकतः अश्लील और बीभत्स होते हैं। युवा युवतियोंके विवाह इन्हीं नृत्योंमें तय किए होते हैं। जब किसी लडकीको कोई लड़का पसन्द आता है तब वह अुसके पैर के पाँवकडे पर अपने पैरसे प्रहार करती हैं। अुपरान्त घरके बडे आदमी अुनके विवाह को तय करके सम्पन्न भी करते हैं। इस नृत्यमें स्त्री और पुरुष जुदा जुदा कतारें कर आमने–सामने खडे होते हैं, और आगे पीछे झुकाव–झूलते, कदमोंको आगे पीछे करते हुअे नाच नाचते–गाते हैं। रातभर यह नाच अविरत चालू रहता है। सुबह नदीं या ताल में कर्मा की डाली का विसर्जन किया जाता है।

मध्यप्रदेश में चार ढँगोंके कर्मा–नृत्य पाये जाते हैं: १ खड़ा कर्मा २ तडी कर्मा ३ लहकी कर्मा और ४ झुमर कर्मा।

खड़ा कर्मा में नाच का आरोह चक्राकार होता है। जैसे पहले दाअें कदमको आगे लेनेका, बाद में बाअें को अुसके पास लानेका; आगे, बाअें कदमको फौरन पीछे लेनेका और वैसेंही दाअें कदम को अपने पूर्व स्थानपर ले जानेका और कमर में झुकनेका।

तडी कर्मामें आगे–पीछे की झुलती गति अपनाअी जाती है। बायाँ पैर आगे लेना, अुपरान्त दायाँ पैर बाअें के नजदीक लाना और अुसके तलुअेसे भूमिको स्पर्श कर तुरन्त अुसे पूर्वस्थानपर ले जाना! अेक बार बाअें पैरसे तो दूसरी बार दाअेंसे और यही क्रम अुपरान्तमें भी।

लहकी कर्मा में भावुक गीतोंको प्रधानता होती हैं। गानकी भावनाअें विभिन्न विक्षेपोंसे व्यक्त करनी होती हैं। जैसा गाना वैसा अभिनय।

झुमर कर्मा में सर्व क्रिया व्यापार तीव्र गति से होते हैं। सभी कर्मा नृत्योंमें यही नाच देखनेकी दृष्टिसे सुहाना और मस्त होता है। दायाँ कदम आगे लेना और फौरन अुसे वापस अपने ठिकाने लाना, वैसे ही बाअेंके बारेमें अुसे आगे लेने का और फिरसे पीछे करना।

कर्मा के गान

कभी कर्मा–गीत हिन्दीके उपबोलियोंमें पाये जाते हैं: मसलन् छत्तीसगढी और तत्सम। गोंडी में कर्मा गीत नहीं है। मध्यप्रदेश के वन्य मराठी विभागोंमेंभी कर्मा गीत नहीं है। अिससे यह आसानीसे समझा जा सकता है कि कर्मा–गीत केवल मात्र अुत्तरीय प्रदेशके है। गीत चार प्रकारके होते हैं:

१: राजा और विधि के वर्णन परक २: प्रणय परक ३: बीभत्स—लैङ्गिक परके और ४: कुछ प्राचीन अथवा अर्वाचीन लैंगिक घटी हुअी स्थानीय घटनाओं के विवरण परक।

अुन गीतों में से कुछ सुसंस्कृत गीत निम्नानुसार है: गोंडों का निम्न द्वंद्व गीत देखिये।

प्रिया :

लहर वहर आये कर्मा नाचूके
कर्मा कर्मा छोडदे बैठदे
खुरनकटा पेलैजा
सनाधारी खडेरा.

बड़ी तेजी से मतवाला होकर तुम कर्मा नाच के लिअे आये हो। ठीक है। जिस समय बचपना और नटखटप्पना तुम अब छोड दो तब ही तुम अिधर बैठ सकोगे। अन्यथा दिवार के पास सटकर खडे रहो।

प्रियकर :

लाल भाजी नसर फस्सर
हरदी नंगर गढगे
अरे वार टूरी
तोर देखेला सुरीत
वार दियाला

(लाल शाक भी बिल्कुल अैसी वैसी ही निकली। (यानी दूसरी लडकियोंमें कोअी विशेष देखने लायक नहीं हैं। अिसलिअे तुम लंपटताका अिल्जाम मत लगाओ। हलदी में तो हल दिल बैठा है (तुम

पर मैं रिझ गया हूँ) अरी ! सुन्दरी ! जरा दीया तो जलाओ ! तेरी सूरत तो जरा देखूं ।)

प्रिया :

अरे तोर घरा गये हो
आगी मंगाये
चूर खल करे सरी राती
चले आरे डौका
बने लगे सरी कुरियामे

(सारे लोग तो तेरेहीं घर आगी लाने गये हैं । वहीं सारी रातभर आगी धधकती हैं । (तो फिर मैं इधर भला क्यों दिया जलाअूँ ? अरे युवक, तुम इधर से चले तो जाओ, भला ! तुम अब तक जिधर बैठा करता था वह झोंपडीही तुम्हारे लिए ठीक है ।)

बैगा लोगोंके कर्मा—अुत्सवके कुछ गीत अिस प्रकार के :

अचरा देखत गोरी देखत है
जोडी छुटत है

(गोरी छोरी, अंचल सम्हालकर आँखे गडाकर निहारती हैं । देखो, बन्दूक की दो गोलियाँ मानों अुधर से छूट निकली हैं ।)

नदिया के तीर मे जोगीयाके डेरा। धमक गिरे
छोड देवे जोगिया डेरा तुम्हारे धमक। यहां गिरे
आमाके डार कलराम समलोकरो लगावे

(नदी के तीर पर जोगिया का डेरा क्या बसा है ! अचानक-सा ! अरे जोगिया, तू अपना डेरा यहाँसे चुपचाप अुठाओ ! अचानक-सा बसाया हुआ तेरा डेरा अिधर से निकाल दो ! कलराम को आम का कलम लगाना है ।)

अिस गीत में कलरामकी प्रिया को विदेश से आओे हुअे जोगीने भुलावा करने की कोशिश की, चूँकि कलराम का आम का कलम अिधर लगाया गया है अिसलिये जोगीको अिधर स्थान नहीं। अतः वह अिधर से तुरन्त निकल जाअे ।

अपनी स्त्री के आचरण के प्रति सन्देह अुठाकर युवा पति व्यथासक्त हो अुठता है—

ये जीवला कहां लुकावू गोंदली फूल
वागे भालू खाले गोंदली फूल
ये जीवला कहां लुकावे गदली फूल
मैकेमे पठावे हरामजादी तोला जानके
वैरी मांग सेंदूर

(अरे झंडूके फूल ! इस जनके जी को मैं कहाँ छिपाअूँ ? शेर-गिद्ध यदि अिसे खाअेंगे तो ठीक ! अरे झंडू के फूल, कहाँ छिपाअूँ मैं अपने जी को ? अरी हरामजादी, मैं तुम्हें कबका पूरा जानता हूँ । तुम्हें मायके ही भेज देता हूँ । वह बैरी सिंदूर (सौभाग्य) माँगता है ।)

मयूर के बारेमें अेक अच्छा गीत देखिए

उंच टेकरिया मंजुर टेरी देवायरे
सिकारी के आलमें जीव जाही तोर रे

(अूँची पहाडीपर मयूर केकाअें लगाता है । अरे मयूर ! पारधी के जालेमे या शिकारी के चमडेके थैलीमें तुम्हारे प्राण जा बैठेंगे ।)

वाघेलों की प्रसिद्धि है डकैती के लिये । लेकिन अिन राजपूतों की अैठ से घोडे पर बैठने की रीत और अुनकी ठिठाई का अिन देहातियों पर बडा परिणाम रहा है ।

अेक युवती कहती है

खैरागढमें बिजोली चमके रे तरवार
हाथे धरे गोली मुठी तरवार
घोडा उपर चघे वघेला सरदार

(खैरागढ़ में तरवार के अुठने के कारण बिजली की चमकाहट होती सी लगती है । कारण अेक हाथ में बंदूक और दूसरे में तलवार लेकर वाघेला सर्दार घोडे पर सवार हुआ है ।)

सहीसों के कर्मा-गीतों में राजा भर्तृहरी के जन्म के बारेमें पाया जानेवाला गीत निम्नानुसार है ।

नाम ललिकारा राजा भर्तारी
जे दिन जनम लेअिस राजा भर्तारी
वाजे तवला निसान
हरी हरी गोवरा मंगायके
छे खुट अंगना लिपाय
तेने कलस भढाय
रूपे दियान जलाय
कासीले पंडित बुलाके
गाये मंगलाचार
अलती कलथी करमा नाचते है
मुह हरखे किसान
नाम ललिकारा राजा भर्तारी

(भर्तृहरी अिस नामसे जिस राजाकी जय-जय होती है, वह जिस समय पैदा हुआ अुस दिन नगारे और नौबतियाँ बजने लगी । हरा गोबर लाकर छः खूँटोंका विस्तृत आङ्गन लिपाया गया । अुसमें रखे कलश । चाँदीके दीप लगाअे गये । काशीके पण्डा बुलाअे गअे । अुन्होंने मंगलाचार गाअे और बाकीके सर्वसाधारण जन कर्मा नाचने लगे ।)

अिस तरह से सहर्षता से वर्षाका अन्त मना कर अदिवासी शारदश्री के सामने जाते हैं ।

● ●

अनुक्रमणिका





* * *

शेष भाग पृ. ५२ से आगे शुरू

डॉक्टर ने नज़र घुमाकर ऊपर इस्पताल की तरफ देखा।

ढलवान पर वही युकलिप्टस् का दरख्त था। मगर कितना बड़ा हो गया था। डॉक्टर का सीना जोर जोर से धक धक करने लगा। अपने सीने में सांस इक फांस की तरह चुभती हुई मालूम हुई। क्यों कि युकलिप्टस् की शाख पकड़े हुए एक लड़की खड़ी थी। हूब हूँ नाज़ाँ, वही सुनहले बाल, वही गोरा चेहरा, वही छुरेरा कलसकी वदन, उसकी नीली क़मीसपर चान्दी के बटन चमक रहे थे। और उसके गले में चांदी की हँसली थी। नाज़ाँ है नहीं। यह नाज़ाँ नही है। नाज़ाँ...

एकाएक मसऊद अपने बंगले से बाहर निकल आया। और वह अपने बुजर्ग से लिपट गया। बूढे डाक्टरने कांपते हुए हाथों से मसऊद को अपने सीने से लगा लिया उसके माथे को चूमा।

मसऊदने बार बार मुसर्रत और खुशी से कहा। ' मुझे उम्मीद नहीं थी आप आएंगे और मैं किसक़दर खुश हूँ, अब्बाजान। "

मसऊद के मुँह से 'अब्बाजान' सुनकर बूढे डाक्टर का सीना दूना हो जाता था। मसऊद ने बूढे डाक्टर का हाथ पकड़ के कहा ' अन्दर चालिए ना। '

एकाएक मसऊद की निगाहें यूकलिप्टस् के पेड़ की तरफ गई जहाँ वह लड़की शाख को झुलाते हुए खड़ी थी। वह एक लमहे के लिए ठिठका, रुका, फिर उसने बूढे डाक्टर की तरफ देखकर कहा—"चलिए मेरे साथ अन्दर चालिएना, अब्बाजान......"

बूढे डाक्टरने अपना हाथ मसऊद से छुड़ा लिया, आहिस्ता, से बोला,—" नहीं...बेटा, पहले तुम वहाँ से हो आओ। "

बूढे ने यूकलिप्टस के पेड़ की तरफ इशारा किया।

मसऊद शरमा गया :

बूढे ने कहा। " कोई नहीं जानता, कल क्या हो जाए, इस दूसरे लमहे में क्या हो जाए...एक लमहा मेरी जिन्दगी में भी आया था। मगर मैं ने उसे खो दिया। अब तुम नहीं गलती कर रहे हो। जाओ, मेरे बेटे जाओ, खुदा इन्तज़ार कर सकता है मगर मुहब्बत इन्तजार नहीं कर सकती। अन गिनत सदियों के बाद एक लमहे के लिए मैं अपने खुदा के पास गया और उसने मुझसे प्यार किया। उसने बड़ी शफ़क़त से मेरे माथे पर हाथ रखा और मैं अपने खुदा से खफ़ा हो के चला आया। क्यों कि मुझे शफ़क़त पसन्द नहीं थी। फिर एक लमहे की भूल के बाद अनगिनत, सदियों तक मैं अपने महबूब के पास जाता रहा। लेकिन एक लमहे के लिए उसने मुझसे बात न की, क्यों कि जब वह बात कर सकता था और मैं सुन सकता था। वह लमहा गुजर चुका था, खुदा वक्त का खालिक़ है। लेकिन मुहब्बत का तबस्सुम है। एहसास का सूरज है। कौनोमकांकी कहकशाँ है। तुम अभी जाओगे मेरे बेटे और उससे वह सब कुछ कह दोगे, जो मैं कह सका..."

मसऊद का चेहरा अपने रोमानी बाप के लिए बड़े फ़िख़र और गुरूर से रोशन हो गया। उसने आहिस्ता से अपना सिर झुका लिया और फिर घूमकर यूकलिप्टस के पेड़ की तरफ चलता गया। डॉक्टर उसकी तरफ देखता रहा—जबतक कि मसऊद यूकलिप्टस के पेड़के पास न पहुँच चुका—जबतक कि उसने उस लड़की का हाथ अपने हाथ में न ले लिया—उस वक्त तक डॉक्टर बड़ी बेखबरी से उधर देखता रहा, फिर वह आहिस्ता से घूम गया। उसकी आँखें धुन्दली हो गई। इसने कॉंपते हुए हाथों से अपना चष्मा दुरुस्त किया और नाशपाती के बुढे तने से टेक लगा के दूर पहाड़ों की तरफ देखने लगा। आज हवाओं में नाज़ाँ के जुल्फों की खूशबू थी। और शफ़क के होंठों पर उसके लबोंकी सुरखी थी। और नीला पैराहन उफक़ता उफक़ फैला हुआ था। और दूर दूर तलक शाहे बलूत के गुन्बदों, देवदार के क़ुगुरों और चिनार के रोशन मीनारों तले गोया हज़ारों मस्जीदों सौ मुकद्दस अज़ान बुलन्द हो रही थी... ● ● ●







शेष भाग पृ. ५५ से आगे शुरू

लगता है। क्या इसीलिये वह अभी तक पाशबद्ध नहीं हुआ? या शायद यह कोई नयी केशभूषा है? थकेमाँदे आये हुए की छातीसे अगर गीले बालोंको स्पर्श हो जाय तो उसका तपा हुआ शरीर और व्याकुल अंतःकरण खुश हो जायगा। मानों उस सुखद स्पर्श के लिये सुगन्ध का साथ चाहिये इसीलिये, इसनेबालों में फूल गूँथे है। आने वाले सुख की कल्पना से ही इसका शरीर रोमांचित हुआसा लगता है। मानों, इसीलिए वह उस फूलपर से भी मुलायम अदासे अपना हाथ फिराती है।

प्रोषितभर्तृका

रसमंजरीमें प्रोषितभर्तृकाकी निम्नानुसार व्याख्या की है :

देशान्तरगते प्रेयसि सन्तापव्याकुला प्रोषितभर्तृका।

जिसका पति भविष्य में प्रवासके लिये जानेवाला है या अब प्रवासपर जानेवाला हैं। केवल उसी नायिकाका समावेश प्रोषितपतिका इस वर्गमें होता है। यह उस व्याख्यामें बैठती नहीं हैं इसलिये शृंगारमंजरीमें इसकी व्याख्या इस तरह की है—

पतिप्रवासखिन्ना प्रोषितभर्तृका।

प्रोषित संज्ञामें भूत, भविष्य, और वर्तमान इन तीनों कालोंका समावेश होता है। अतः इस वर्गके तीन उपभेद होते हैं :—प्रवत्स्यत्पतिका : प्रियप्रवासप्रयत्नोधमम् ज्ञात्वा वेदनावदी : पति प्रवासपर जानेवाला है, इसीसे जो व्याकुल हुई है; प्रवसत्प्र पतिका : वर्तमान प्रवासपतिका : जिसका पति अभी प्रवासपर जा रहा है, प्रोषितपतिक : जिसका पति भूतकालमें प्रवासपर गया है। शृंगारमंजरीमें प्रोषित पतिका की और भी दो भेद दिये है। नायक की प्रवास की तैयारी देखकर भावी विरह की कल्पना से ही व्याकुल हुई नायिका को देखकर नायकने प्रवास पर जाने का विचार बदल दिया, वह नायिका है। सख्यनुतापिता।

सख्यनुतापिता नायकपरदेशगमनान्तरं स्वसमाधानकर्त्री सख्यपि चेत्कचित् प्रयाणं करोति सा।

नायक के परदेश में जाने से व्याकुल हुई नायिका को तसल्ली देनेवाली प्यारी सखी भी प्रवास पर जाने से आर्त व्याकुल हुई नायिका।

'प्रोषितपतिका' यह अवस्था स्वीया, मुग्धा मध्या आदि सर्व प्राथमिक अवस्थाओं में हो सकती है। प्रोषितपतिकाओं के भी उत्तमा, मध्यमा आदि भेद हैं। पति प्रवास पर जानेवाले है यह सिर्फ सुनकर जो व्याकुल होती है वह उत्तमा, पति जब प्रत्यक्ष प्रवासपर जा रहे है उस वक्त जो व्याकुल होती है वह मध्यमा; पतिके प्रवासपर जानेपर जिसको विरह वेदना मालूम होती है वह अधमा।

'प्रोषितपतिका' इस विषय पर गाथासप्तशतीमें बहुत सुभाषित मिलते हैं।

प्रवत्स्यत्पतिकाका यह उद्गार सुनिये।

कल्लं किल खरहिअओ पवसिहिइ पिओत्ति सुण्णइ जणम्मि
तह वड्ढ भअवइ णिसे जह से कल्लं विअ ण होइ॥

भोर होतेही निष्ठुर पति प्रवास पर जानेवाला है यह बात लोगों से सुनती है और कहती है—"भगवती रजनी, तू इतनी वृद्धिंगत हो जाओ कि सुबह ही न होने पाए।"

* * *

इस नायिकाको खुद के आदमी के बारेमें यह खबर लोगों से क्यों मालूम होनी चाहिये? यह उद्गार शायद शामके वक्तका होगा संसार के झंझटोंमें और संयुक्त परिवारके पचड़ेमें फँसे हुए पति-पत्नीको तड़केही अपने सुखदुखकी बातें करने के लिये मौका कैसा मिलेगा? इसलिए नायिकाने शामके वक्त पर आनेवाली रातसे प्रार्थना की है। रजनी वृद्धिंगत नहीं होगी यह उसे पूरी तरह से मालूम है। जो होता नहीं है, और नहीं होनेवाला है उन्हीं के लिये तो अक्सर हम प्रार्थना करते रहते हैं। नायक और नायिका दोनोंने वह सारी रात एक दूसरे के सहवास में बिता दी। "मुझे छोड़कर न जाइए। कह कर नायिका ने नायक के साथ तरह तरह से आर्जुयें की होंगी और नायक ने उसको भाँति भाँति से समझाने की कोशिश की होगी। घरबार तो चलना चाहिये? प्रवास के दिन आज कल कहते बीत जायेंगे, ऐसे कारण बताये होंगे। सांत्वनायें दी होंगी। आखिर सुबह होती ही है और पति प्रवास पर चला जाता है। गाथासप्तशती में प्रवसतपतिका के (क्र. ९८) यह उद्गार देखिये—

रामिऊण पअं पि ण गओ जाहे उवऊहिउं पडिणिउत्तो
अहअं पउत्थवइआ व्व तक्खणं सो पवासी व्व॥

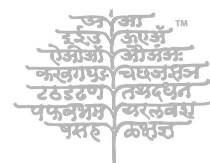
रममाण होने के बाद वह प्रवास पर चले, एक कदम भी न बढाया होगा कि मुझे आलिंगन देने वह वापस आए बीच के एक क्षण में वह प्रवासी बन गये और मैं विरहन। पत्नी की यह हालत देख कर अपने विरह में यह जिन्दा नहीं रह सकेगी ऐसा विश्वास पतिको होता है और प्रवासपर जानेका अपना इरादा बदल देता है। गाथासप्तशती (क्र. ७८०) में का विगलित प्रवासपतिकाका यह उदाहरण देखिये...

आउच्छणोवऊहणकंठसमोसरियबाहुलइयाए।
वलयाइ पहिअचलणे वहूएँ णियलाइ व पडंति॥

पति प्रवास पर जानेवाला था। पत्नीने उसके गलेमें बाँहें डाल दीं और आलिंगन का दाब छुटा तब उसकी कलाईयों पर के कंगन टूटकर पतिके चरणों में जा गिरे; मुसाफिरको ऐसा लगा कि मानों उसकी पैरोंमें बेडियाँ सी पडीं। पतिके प्रत्यक्ष प्रवास पर जाने के पहले नायिका की यह अवस्था है, फिर जिसका पति बहुत दिनों से प्रवास पर गया हुआ है उसकी क्या हालत होती होगी? प्रोषितपतिकाको अंदेशित करके निकाले हुए यह उद्गार (गाथासप्तशती क्र. ७७८) देखिये।

अज्ज चिअ छणदिअहो मा पुत्ति रुएहि एहइ पिओत्ति
सुण्हं आसासंती पडियत्तमुही रुवइ सासू॥

"बेटी, तुम्हारा पति जरूर वापस आयगा, आज त्यौहारका दिन है। रोओ ना," इस तरह बहुको आश्वासन देकर उसने तसल्ली दी और वह खुद मुँह फिराकर रोने लगी। इस प्रकार प्रोषितपतिकायें विरह की अवधि में शुष्क होती जाती है। पतिके संकल्पित प्रवास की दीवार पर निकाली गयी मापनरेखाओं से रोज एक एक को काटकाटकर दिन बिताती है। और कल्पना से ही अपने प्रियतम के सहवास का लाभ उठाती है। इस प्रकार नायिका जब अपना दुर्धर जीवन बिताती रहती है तो एकाएक खबर आती है कि पति प्रवाससे वापस आ रहा है, फौरन वह आँगनके प्रवेश द्वार के पास जाती है और भाल पर हाथ रखकर दूर दूर तक देखने की कोशिश करती है। वह देखो, आया।





अत्थक्कागअदिट्ठे वहुआ जामादुअम्मि गुरुपुरओ ।
जूरइ णिवडंताणं हरिसविफंदंत वलआणं ॥

पति को एकाएक आता हुआ देखकर वधुको इतनी खुशी होती है कि उसके हाथ के कंगन नीचे गिरते हैं। उस वक्त गुरुजन आसपास में होते हैं उनका उसे गुस्सा आता है (गाथासप्तशती क्र. ८१६)। कंगन गिर गये इस लिये कि वह विरह से कृश हो गयी थी, गुरुजनोंपर गुस्सा आया, वह इसलिये कि अगर वे वहाँ न रहते तो वह खुशी से अपने पति के गले में बाँहें डालती और अपने आनन्दाश्रुओंसे उसका हृदय और कन्धा भिगो देती। इस नायिका को 'अवसित-प्रवास-पतिका' यह संज्ञा है। शृंगारमंजरी में उसका जो लक्षण बताया है वह है—

प्रवासादागतनायकापेक्षासन्तोषकृतप्रयत्ना ।

कोई कोई इसका समावेश स्वाधीनपतिका इस वर्ग में करतें हैं क्योंकि पति उसके अधीन में रहता है। कोई कोई उसे वासकसज्जा भी कहते है क्योंकि वह पति के आगमन की अपेक्षा किये हैं।

विरहोत्कण्ठिता

भरतने नाट्यशास्त्रमें (२२ : २०६) विरहोत्कण्ठिताकी व्याख्या इस प्रकार की है—

अनेककार्य व्यासङ्गात् यस्या नागच्छति प्रियः ।
तस्यानुगमदुःखार्ता विरहोत्कण्ठिता मता ॥

रसमंजरीमें इस नायिकाको उत्का यह नाम भी दिया गया है और उसकी व्याख्या इस प्रकार की है :—

सङ्केतस्थलं प्रति भर्तुरनागमनकारणं या चिन्तयति सा उत्का।

प्रियतम के संकेतस्थान पर न आने से विपन्न हुई नायिकाको उत्का कहते है; और कहा गया है कि इस वर्गमें प्रोषितपतिका का समावेश नहीं होता। ऐसी व्यवस्थाओंके कारण प्रोषितभर्तृका, विरहोत्कण्ठिता और विप्रलब्धा इन के व्यक्तित्वमें भिन्नता नहीं रह जाती, ऐसा आक्षेप उपस्थित करके शृंगारमंजरीमें विरहोत्कण्ठिता की व्याख्या इस प्रकार दी है :—

निवास एव कार्यान्तरव्यासङ्गप्रयुक्तप्रियविरहोत्कण्ठिता ।

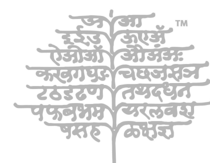
नायक और नायिका एकही निवासस्थान में होनेपरभी जिसका प्रियतमके साथ मिलन नहीं हो सकता और जो इस विरह के कारण व्याकुल हो गयी है वह 'विरहोत्कण्ठिता' है। विरहोत्कण्ठिताके बारेमें प्रियतमके न आनेके लिये अन्य किसी स्त्रीका प्रेम कारण न होना चाहिये, इस तरह दशरूपक में स्पष्टतया लिखा है।

मुग्धा, मध्या, प्रौढा, परकीया, और सामान्या—यह विरहोत्कण्ठिताके पाँच उपभेद रसमंजरीमें दिये हैं।

प्रियापर कितना भी प्रेम क्यों न हो लेकिन पुरुषको अपने कर्मकाण्ड की और ध्यान देनाही पड़ता है। काम में मग्न होनेके कारण घरपर आनेको देर किये हुए पतिको उद्देशित करके 'गाथा सप्तशती' की एक नायिका (क्र. ९७) कहती है।

कज्जाइं व्विअ गरुआइँ मामि को वल्लहो कस्स ?

"मामी, पुरुषोंको प्रेमकी अपेक्षा कामकाही महत्त्व अधिक रहता है। कौन किसका प्रियतम और कौन किसकी प्रिया!" और एक नायिका क्र. (४८६) सखीसे कहती है।





अहअं विओअनणुई दुसहो विरहाणलो चलं जीअं
अप्पाहिज्जउ किं सहि जाणति तुं चेव जं जुत्तम् ॥

विरह से मैं क्षीण हो गयी हूँ। विरह की आग मैं सह नहीं सकती। जीवन चंचल है सखी और क्या कहूँ ? तुम्हें तो सब कुछ मालूम है जो योग्य लगेगा सो करना।

विरह में उत्कण्ठित हुई नायिका को कुछ भी नहीं रुचता है, कुछ भी नहीं सूझता। बदनपर चन्दन लगाती है फिर भी ज्वाला वैसी ही रहती है। बालों में फूल गूँथती है पर उत्कण्ठाकी आग के कारण वह मुरझा जाता है। न घर में चैन है, न बागबगीचों में। उसे कुछ सान्त्वना मिल जाय इसलिये सखी वीणापर कोई तान छेड़ने लगी, तो नायिकाने कहा "तोड दे उन तारों को।" उसकी प्रिय हीरनी नायिकाको खुश करने के लिये हमेशा की तरह उसके जाँघपर अपनी ग्रीवा घिसने लगी, सिर्फ आदत के कारण नायिका ने उसको लाड़ किया! इतने में उसको दुत्कारा। उसको शान्त करने के लिये हवा की एक लहर उसके मुँहपर सुगंधी फूलों से भरी हुई एक डालीको झुकाने लगी। नायिकाने उस डालीकोही तोड दिया और नायिकाने अपनी आर्त अवस्था का वर्णन अपने सखीसे इस तरह कियाः "नहीं नहीं सखी। मैं इस विरह की तीव्रता को सह नहीं सकती। मेरे प्राण मेरे मुँहको आये है जिसके कारण मैं साँसतक नहीं ले सकती। जहाँ देखो वहाँ मुझे प्रियतमही दिखाई देते हैं। और अब मानों साफ दिखाई देने लगते हैं, उतने में वह वहाँसे अदृश्य होते हैं। सखी उठो तो चलो, प्रियतम जहाँ भी होंगे उनको ढूंढ निकालो, नहीं तो मेरा बुरा हाल होगा।"

विप्रलब्धा

रसमंजरीमें विप्रलब्धा का लक्षण इस प्रकार बतलाया है...

सङ्केतनिकेतने प्रियमनवलोक्य समाकुलहृदया विप्रलब्धा।
अस्याश्चेष्टा। निर्वेदनिःश्वाससन्तापाऽऽलापभयसखीजनोपा-
लम्भचिन्ताऽश्रुपातमूर्च्छादयः।

नायिका संकेतस्थान पर आयी परंतु प्रियतमको वहाँ न आया देखकरव्याकुल बनी नायिका विप्रलब्धा है। स्वीयाने या सामान्याने अगर स्वस्थानमेंही संकेत किया हो तो उसका समावेश इस व्याख्यामें नहीं होता। प्रतापरुद्रीय में की (१ : ४७) यह व्याख्या अधिक व्यापक है।

क्वचित्संकेतमावेद्य दयितेनाथ वञ्चिता।
स्मरार्ता विप्रलब्धेति कलाविद्भिः प्रकीर्तिता ॥

परन्तु इस व्याख्यामें दूतिवंचिताका समावेश नहीं होता और वंचना विप्रलब्धाका मुख्य लक्षण है। इसलिए शृंगारमंजरीने उसकी अधिक व्यापक व्याख्या इस प्रकार से की है।

वञ्चनाप्रयुक्तविरहवेदनावती विप्रलब्धा।
परिहासार्थं वञ्चिता सखीवञ्चिता।

शृंगारमंजरीमें विप्रलब्धा के दो भेद दिये है; नायकवंचिता और सखी वंचिता। लेखक कहता है 'सख्या नायकं क्वचिन्नोपायित्वा केलीस्थलमानीय' सखीसे की गयी नायिकाकी यह वंचना कौतुकस्वरूपी कृत्रिम और क्षणिक होनेकी वजहसे यह उपभेद मान्य नहीं होगा परंतु स्वीया, मध्या, प्रगल्भा, परकीया व सामान्या ये नायिकावर्गके उपभेद यहाँ सर्वमान्य है। दूति या सखीवंचिताका अच्छा उदाहरण गाथा सप्तशतीमें आया है।

सो णा गओ त्ति पेच्छइ परिहासुल्लाविरीएं दूइए
णूमंतीअ पहरिसो ओसट्टइ गण्डापासेसु ॥

नायिका संकेत स्थानपर आयी। नायक वहाँ न था। इसलिये उसे बुलानेके लिये सखीको भेजा। काफी देरके बाद सखी अकेली वापस आयी और कहने लगी—"देखो। मैंने क्या पहलेही नहीं बताया था वह आज आयेगाही नहीं, उसको फुरसतही नहीं।" लेकिन उसे कहते वक्त उसके मुखपर हँसी भरी थी। तब नायिकाने सच्ची बात जान ली। उसने समझ लिया कि प्रियतम जल्दीही आनेवाला है।

विप्रलब्धाकी अवस्था बहुत ही करुणास्पद है। बहुत कोशिश करके संकेत निश्चित करना, और भी कोशिश करके संकेतस्थान निश्चित करना, बहुत से विश्वसनीय कारण बताकर घर से वे मौके बाहर निकलना और तिसपर प्रत्येक प्रयत्न के साथ समागमन की उत्कण्ठा तीव्र होते जाना और सबसे मजेदार बात यह कि इतना सब कुछ करने के बाद प्रियतम का वहाँ न होना—कैसी निराशा और कितना अपमान। गाथासप्तशतीमें (क्र. ८४८) कवि कहता है।

दूई ण एइ चंदो वि उग्गओ जामिणी वि वोलेइ
सव्वं सव्वत्तो च्चिअ, विसंठुलं कस्स किं भणिमो ॥

सखीके गये काफी देर हो गयी। वह अभीतक वापस आयी नहीं। क्या हुआ किसको पता ? चंद्रमा उग गया। रात बीतने लगी। चारों ओर का वातावरण भी अधीर हो उठा। तिस पर मेरे मनकी व्याकुलताभी क्षणक्षण बढती जा रही है। मैं किसको कहूँ ?

नायिकाको निराश करनेवाला नायक भी कितना निर्दय! वह तो अधम नहीं, अधमाधम है। प्रेयसीका इससे अधिक अपमान कौन और कैसा कर सकता है। वह तो अकेली जंगलमें बैठी है उत्सुक नजरोंसे वह चारों ओर देखती है! बगलमें सखी भी नहीं है। साथमें सिर्फ प्यारा और सुंदर हंस है वह भी मानों नायिकाका उपहास ही कर रहा है।

खण्डिता

रसमंजरीमें खण्डिताकी व्याख्या इस प्रकार की है :

अन्योपभोगचिन्हितः प्रातरागच्छति पतिर्यस्याः सा खण्डिता।

गाथासप्तशतीमें खण्डिताका एक सुंदर उदाहरण (क्र. ६५३) आया है, जो इतना समर्पक है कि लगता है कि उसीसे यह व्याख्या बन पडी।

पच्चूसागअ रञ्जिअदेह पिआलोअ लोअणाणन्द
अण्णत्त खविअसव्वरि णहभूसण दिणवइ णमो दे।

सुबह उगनेवाले सूरजको और सुबह घरमें आनेवाले प्रियतमको उद्देशियत करके सूर्यपक्षीः "हे हिमपति सूरज, तू कहीं और रात बिताकर सुबह उठता है, तेरी देह कैसे लाल बन गयी। तेरा दर्शन हृदयको प्रिय और आँखोंको आनन्द देनेवाला है। तू आस्मानका भूषण है। तुझे मेरा प्रणाम।"

और पतिपक्षीको उद्देशियत करके--"हे दिनपति-सिर्फ दिनमें घरमें रहनेवाले पतिदेव-तुम सुबह घर आते हो तो रातमें अन्यत्र कहीं तेरे शरीरपर उमगे हुये रंगोंके चिन्ह दिखाई देते हैं; तुम देखनेमें कितने मधुर हो पर तुमसे हमें सिर्फ नेत्रसुखही मिलता है। तुम सारी रात और कहीं किसी स्त्रीके सहवासमें बिताते हो। तुम अन्य स्त्रियोंको दूषण देते हो और उनके द्वारा अर्पित किये दाँत और नाखूनोंके क्षतोंको धारण करते हो। ऐ, दिनपति तुम्हें दूरसेही नमस्कार"—

अनुक्रमणिका





प्रियतमके प्रेममें किये गये अपराधसे चित्तमें निर्माण हुये गुस्सेके कारण नायिका जो मौन धारण करती है उसको मान कहते है। मान यह गुरु, मध्य या लघु हो सकता है। 'लघु' मान विनोद की वार्ता या कथन से शान्त होती है। 'मध्य' मान शान्त करने के लिये कसमें वगैरह खानी पड़ता है और बहुत कोशिश पड़ती है। 'गुरु' मान शान्त करने के लिये मौका आनेपर पाँवभी पकड़ने पड़ते है, अर्थात् बहुत प्रयत्न करना पड़ता है।

नायक प्रेम के बारे में क्या बोलता है, क्या चेष्टा करता है इनकी ओर नायिका की सूक्ष्म नजर होती है। उस नजरसे कुछ भी नहीं बचता। इतना संशय और इतना संशय कि इधर उधर देखभी नहीं सकती। गाथासप्तशती की एक नायिका (क्र. ९३३) प्रियतम से कहती है...

तइआ मह गंडत्थलणिमिअं दिट्ठिं ण णेसि अण्णत्तो
एण्हिं स च्चेअ अह ते अ कवोला ण सा दिट्ठि ॥

उस वक्त तेरी निर्निमेष दृष्टि मेरे गालों पर थी। एकाग्रता से जम गयी थी। अब वही मैं हूँ और वही मेरे गाल है परंतु इनकी ओर तुम्हारी नजर तक जाती नहीं। उसके (नायिका के) कपोल मधुर और आयने की तरह चमकनेवाले थे; आसपास की चीजें उसमें प्रतिबिम्बित होती हैं, इतने चमकते थे वे कपोल 'अधिक तो' क्या, नायिकाके उन कपोलोंपर उसकी सखी का प्रतिबिंब झलक रहा था। नायिका के सामने उसकी सखी की ओर ताकना नायक के लिये अशक्य था। इसलिये उसने उन कपोलोंके आयनोंमें सखीका रूप जी भरकर देखा वह भी नायिकाकी नजर से छुटा नहीं (क्र. ९३२) इस गाथाका नायक इससे भी एक कदम आगे बढा है। प्रतिबिंब अप्राप्य था सो उसने नायिकाके कपोलोंकाही चुम्बन ले लिया और इतने आवेश के साथ कि नायिकाको वह अभूतपूर्व लगा। उसने आसपास देखा। बगलमें सखी थी। इस ओर इसके कपोल भींग गये थे और, उस ओर उसके। इसके गाल प्रत्यक्ष चुम्बनके कारण और उसके मनोभावनाओं के उद्योग के कारण। फौरन मानों बिजली गरजी। नायिकाने कहा– निर्लज्ज, तेरा अपराध मैंने अपनी आँखों से देखा।

फिर क्या करता नायक। दोनों हाथ और एक मस्तक उसके पाँवोंपर रखे। पर औरतोंके झंझटही ज्यादह। नायिकाके पाँवमें घुंगरू थे और उनमें नायकके बाल (उस जमानेमें पुरुषोंके बाल काफी लम्बे होते थे) फँस गये। गाथासप्तशतीमें कवि (क्र. १८८) कहता है—

णेउरकोडिविलग्गं चिउरं दइअस्स पाअपडिअस्स
हिअअं पउत्थमाणं उम्मोअन्ती च्चिअ कहेइ ॥

नायिका गुस्सेमें थी पर उसकी अवस्था देखकर उसको दया आयी। उसने अपने हाँथोंसे उन बालोंको उलझा दिया और जब उसने उन मधुर बालोंमें से अपनी उँगलियाँ फिराईं तो उसका मान मिट गया। कभी कभी ऐसाभी होता है नायिका अपने प्रियसखीको संदेशेके साथ साथ भेजे वहाँ उनकाही नेह जमे। गाथासप्तशती की ऐसीही दूतिवंचिता नायिका सखी से कहती है। (क्र.८५५)

जं तुहं कज्जं तं च्चिअ कज्जं मज्झ त्ति जं सआ भणसि
ओ दूइ सच्चवअणे अज्ज सि पारं गआ तस्स ॥

सखी आजतक हमने आपसमें कुछ भेदभाव माना नहीं। एक दूसरेके कामको हमने अपनाही समझकर किया। सचमुच सखी आज हम दोनों के प्रेम की सीमा हो गयी। वह खण्डिता देखिये–प्रियतम की बाँट जोहते बेचारी की पहले भी सूख गयी थी। आखिर किसी तरह प्रियतम घर आये हों, वे उसके प्रिय थे। कोई भी खुश हो जाय ऐसाही था वह जवान—सुंदर, सुदृढ रसिक और विलासी। यह उसका जितना सौभाग्य था उतना ही दुर्भाग्य क्योंकि वह उसका तो और भी बहुत सी औरतों को प्रिय था। ऐसी उड़नी खबर तो उसने भी सुनी थी। पर इन बातों पर विश्वास करने जितनी वह कमजोर नहीं थी। उसकी वाणी कितनी मधुर थी कि उसने मफाई के साथ कहे गये वचनोंपर विश्वास करते ही बनता था। लेकिन आज वह आया तो जरा देरी से ही आया, जरा थका हुआ भी था। यह क्या–उसके शरीर पर ताजे नखक्षत थे। अपराध के वे प्रत्यक्ष प्रमाण थे। अपने कपड़ों से उन्हें ढंकने की वह कोशिश कर रहा था जो सधा नहीं। इन चिह्नों को देखते ही उसके मनमें गुस्सा आया। फिर उसके आँखों से आँसू बहने लगे उसे। अपनी दीनताका अनुभव हुआ। भविष्य के बारेमें चिन्ता लगी। अपराध था तो उसका, लेकिन उसे ऐसा लगा मानों कसूर उसनेही किया हो। उसकी नजर से नजर टकरानेकी हिम्मत उसे नहीं हुई। वह उससे (नायकसे) सफाई चाहती थी और उसके मुँहसे शब्द न निकले। होठ बन्द करके उसने चुप्पी साधी। नायकका ओर पीठे करके वह खम्भेको टेककर बैठ गयी। अब वह जरा विनती करेगा, पाँव पकडेगा, वचन देगा और नायिकाको कैसी तरह खुश करेगा और उनके जीवनका यह चक्र ऐसेही चलते रहेगा।

कलहांतरिता

रसमंजरीमें कलहांतरिताकी व्याख्या इस प्रकार दी है —

पतिमवमत्य पश्चात्परितप्ता कलहान्तरिता।

शृंगारमंजरीकी व्याख्या इससे जरा ज्यादह ठोस है।

कोपात्कान्तं पराभूय पश्चात्तापसमन्विता कलहान्तरिता ।

गुस्से में प्रियतमको दुत्कार देनेके बाद उसके बारे में पश्चाताप करनेवाली नायिका कलहांतरिता है। इस नायिकाके दो भेद किये है। ईर्ष्या कलहांतरिता, अर्थात् प्रियतमके किसी अन्य स्त्री पर आसक्त होनेकी वजहसे दुत्कारता है और प्रणय कलहांतरिता, अर्थात् वह जो अपनी आज्ञा या इच्छा का उल्लंघन करनेके कारण प्रियतमको दुत्कारती है। कारण जो हो बादमें पछताती है। आरम्भ में कलह और अन्तमें पश्चात्ताप ये दो इस नायिका के मुख्य लक्षण है। नायिका के प्राथमिक वर्गों में से मुग्धाको छोड़कर सबमें यह अवस्था हो सकती है। नायिका वैसे तो कलह कर बैठती है, परन्तु जल्दी ही यह बात उसको समझमें आती है कि नायक के जीवन के साथ उसका जीवन इतना बन्ध गया है कि नायक के बिना उसके जीवन में कुछ रहता ही नहीं।

सखियाँ नायिकासे कहती हैं प्रेम का धागा बहुतही नाजुक है, जरा ज्यादह खिंचा तो टूट जाता है। पर कोई कोई नायिकाएँ स्वभावतः अशांत होती हैं। गाथासप्तशती में (क्र. ६०) एक ऐसी नायिका का वर्णन किया है :—

चित्ताणिअदइअसमागमम्मि कअमण्णुआइँ भरिऊण
सुण्णं कलहाअन्ती सहीहिं रुण्णा ण ओहसिआ ॥

प्रियतम से मिलन हुवा ही था कि इतने में बातें बढ़ने लगी तो सखी को इस बातपर खेद हुवा। वे उसका उपवास न कर सकी।

पति से बहुत ही एक निष्ठता की अपेक्षा करनेवाली नायिकाएँ खुद दुखी होती हैं और अपने पतिको भी दुखी करती है। और फिर एक दूसरे के दुख से एक दूसरे को पश्चाताप भी होता है। खिंचने पर प्रेम का धागा टूट भी जाता है। गाथासप्तशतीकी एक (क्र. ४२०) कलहांतरिता कहती है...

अह सो विलक्खहिअओ मए अहव्वाएँअगहिआणुणओ
परवज्जणचरीहिं तुम्हेहि उवेक्खिओ णेन्तो ॥

मैं ही अभागन हूँ। उसने अनुनय किया। मैंनेही उसको दुत्कारा। ऐ सखियों, वह जब जाने लगा तब तुम लोगों ने उसकी उपेक्षा की तुम्हें दूसरों की क्या परवाह ? मेरे प्रियतम तो हमेशा के लिये चले गये।

अभिसारिका :

अमर कोशमें अभिसारिकाकी व्याख्या (२-६-१०) इस प्रकारकी है।

कान्तार्थिनी तु या याति संकेतं साभिसारिका।

संकेत निश्चित करके प्रियतमसे जो मिलने जाती है वह अभिसारिका है। कोषकी इस व्याख्यामें गद्यमयता ज्यादह है। अब भरतकारिकाकी यह व्याख्या देखिये—

उद्दाममन्मथहाज्वरवेपमाना
रोमाञ्चकण्टकित गात्रलतां वहन्ती।
निःशङ्किनी व्रजति या प्रियसङ्गमाय
सा नायिका निगदिता त्वभिसारिकेति ॥

* * *

आशय वही, पर नायिकाकी वृत्तियोंका वर्णन यहाँ अधिक सुस्पष्ट है। रसमंजरीकी व्याख्या इससेभी ज्यादह व्यापक है।

स्वयमभिसरति प्रियमभिसारयति वा या सा अभिसारिका।

नायिका जब स्वयं प्रियतम को मिलने जाती है अथवा प्रियतमको मिलने को बुलाती है, वह नायिका 'अभिसारिका' है।

जिन प्रहरों में नायिका नायकको मिलने जाती है इसके अनुसार अभिसारिकाओंका वर्गीकरण किया है।

१) दिवाभिसारिका—दिनमें जानेवाली
२) नीहाराभिसारिका—प्रातःकालकी धूसरों में से जानेवाली—उषा
३) माध्यान्हाभिसारिका—दोपहरके उष्मामेंसे जानेवाली—प्रभा
४) प्रदोषाभिसारिका—शामके मन्द प्रकाशमें से जानेवाली—संध्या
५) ध्वान्ताभिसारिका—कृष्णपक्षमें रातके अंधनकारमेंसे जानेवाली —कृष्णा
६) ज्योत्स्नाभिसारिका—शुक्लपक्ष में रातको चन्द्र प्रकाश में से जानेवाली-ज्योत्स्ना

नीहारीभिसारिका—प्रत्यूषाके गहरे धूसरोंमें से प्रियतम से मिलने जानेवाली नायिका। यह कल्पना बहुतही मधुर लगती है। गाथासप्तशती (क्र. ६९३) में भी इसका उल्लेख किया है। वहाँ बतलाया है कि 'ओसबिन्दुसे किंचित शुभ्र भासमान होनेवाले तीलके खेतोंमें से चली गयी नीहाराभिसारिका की पगडण्डी हरी हो गयी है'।

दुर्दिनाभिसारिका यह वह नायिका है जो तूफानोंसे डरती नहीं है। संतत वर्षामें भी घने मेंढमें कुछ साहरा मिल सकता है। और ऐसे वातावरण में एकान्त भी नष्ट नहीं हो सकता। इसका उल्लेख गाथा-सप्तशती (क्र. ५६३) में है।

'गर्वाभिसारिका' नामक और एक वर्ग का निर्देश किया है उदाहरण देखिए :—

उपवनमतिरम्यं मञ्जु गुञ्जं पिकं यत्
कुसुमितमतिहृद्यं द्रागवसंतागमेन।
पुरजनरमणीयेऽनङ्गयात्रोत्सवेऽस्मिन्
मम तु परमलाभो यद्भवान् अत्र दृष्टः ॥

गर्वाभिसारिका आयोजन के अनुसार संकेत स्थानपर जाती है। तथापि प्रियकर का दर्शन होते ही संभोग—संकेत की टालमटौल करती है और अचानक ही मानों उसकी भेंट हुई हैं इस बहाने से आश्चर्य प्रकट करती है। अपन तो किसी अन्यकार्यार्थ अन्यत्र गमन करने के लिए चली थी, दरअसल भाग्यवशात् इस दिशा की ओर मुडी है सो बहाना करते हुए मामूली बेतुका वार्तालाप कर, बिना उसे हाथ को हाथ लगाने की सन्धि दिये, अलविदा होती है।

* * *

अबतक इतना जो हुआ उससे मानों पर्याप्त मान-खण्डना नहीं हुई, इसीलिए जाते-जाते एखाद बार अपांगावलोकन करती है और जली जखमपर निमक छिटकाती है। इस प्रकार की नायिका प्रायः नागरिका होती है, अपनी परिचित होती है और सुशिक्षित भी होती है। यदि संकेत स्थान निर्जन एवं सुरक्षित होता है और वह प्रसन्न चित्ता हो तो भी केवल बाह्योपचरों की सीमाको अक्सर उल्लंघित नहीं करने देती। और केवल इसी विधिपर संतुष्ट होनेवाली इस वर्ग की अभिसारिकायें असल में वर्तमान कालमें उपलब्ध भी है और बहुसंख्यात !

स्वीया, अन्या तथा सामान्या और इस प्रत्येक वर्ग की मुग्धा, मध्या और प्रौढा एवं उस प्रत्येक वर्गकी उत्तमा, मध्यमा, व अधमा इस ढंगसे अभिसारिकाओंके उपविभाग किये गए हैं।

स्वीया, पतिव्रता मानी जाती है और इसलिए बाह्यतः इस वर्गका अभिसरण असम्भाव्य लगता है। परकीया नायिका, भला, अभिसरण के लिए संकेत स्थान पर जानेके लिए क्यों तैयार हो? गुरुजनोंकी देखभालके कारण परपुरुषको अपने घर लाना अथवा लिवा लानेका प्रबन्ध करना असम्भवनीय होने के कारण और यदि वह सधा तो भी ससुरालके ननन्द, भौजाइयाँ, और मायकेके भाई, बहनादि की कौतुहली और तीक्ष्ण तथा अप्रस्तुत आव-जाव के कारण उसे सुविधाजनक स्थान अथवा मन-भावका एकांत भी मिलता नहीं है।

अतः प्रिय मिलने के लिए हुए किसी अवसर से फायदा उठाते हुए या मार्मिक बहाना करते हुए घरके बाहर निकलना पडता है। और संकेतस्थान पर जाना होता है :—

—भले, फिर वह बहाना, आरतीवन्दना या मंडीमें जाने का अथवा उत्सव या कथा-कीर्तन का और संकेतस्थान खानगी हो या सार्वजनिन हो! इस प्रकार अथवा तत्संमान अडचनों वश स्वीयाभी पति के एकान्त मिलन के लिए घर के बाहर किसी संकेतस्थानका आश्रय लेती है। और आजकल निवासस्थानोंकी कमी के कारण तो ऐसी अडचनें बार-बार खलती है। अतः इसवर्ग की अभिसारिकाएँ प्रति पगमें मिलती हैं। यह आवश्यक नहीं कि अभिसारिका का प्रिय यह केवल पर पुरुष ही हो। और इसीलिए अभिसारिकाके वर्गमें स्वीयाको स्थान दिया गया है।

> शीघ्रं प्रयाहि सुभगे प्रियसंनिधानमाकल्प एष
> रमणीयतरस्तवाङ्गे।
> त्वद्दर्शनोत्सुकदशस्सुभगेऽधुना न पत्युर्गजेन्द्र—
> गमनात्वमभीष्टमेतत् ॥

भावार्थ : सुभगे! अरी तेरा पति तेरे मिलन के लिए अधीर बना है और तुम तो गजेंद्रगति से धीमी धीमी डुलते-चलती हो! यह तो उसे पसन्द नहीं आने का, अतः जरा सत्त्वरा कर!

अभिसारिका वर्ग में मुग्धा के स्थान के बारे में विवाद है। मुग्धाके मन्मथपर क्रीडा का अवगुंठन होता है तथा रति के प्रति अनौत्सुक्य ये सब लक्षण नयों के द्वारा प्रधान माने गए हैं। उपरान्त कामार्ता शिथिलत्रपा आदि लक्षण भी अभिसारिका के नाम बतलाए जाते हैं। और यह होने के पश्चात् भी आलंकारिकों ने अभिसारिका वर्ग में मुग्धा को प्रश्रय दिया है। मुग्धा के माने अनभिज्ञा नहीं तथापि साहित्यशास्त्रकी मुग्धा के रूपमें! कइयोंने मुग्धा-अभिसारिकाओं के उदाहरण दिए है। रसमंजरी का उदाहरण देखिए।

> दूती विद्युदुपागता सहचरी रात्रिः सहस्थायिनी
> दैवज्ञो दिशति स्वनेन जलदः प्रस्थानवेलां शुभाम्।
> वाचं माङ्गलिकीं तनोति तिमिरस्तोमोति झिल्लीरवैः
> जातोऽयं दयिताऽभिसारसमयो मुग्धे विमुञ्च त्रपाम् ॥

उपरोक्त में से केवल 'मुग्धे विमुञ्च त्रपाम्' वाला भाग ही मुग्ध को अनुलक्षित है। शृंगाररसमंजरी के उदाहरण का 'बालां लालय लीलया मृदुलया मूर्ध्नी शिरीषादपि' केवल इतनाही अनुच्छेद मुग्धाके लक्षणों के साथ मेल खा सकता है।

बाला—संभोग योग्य, इतनाही नहीं सहवास से वह वृद्ध को भी यौवनावस्था प्राप्त करवा दे सकती है इस प्रकारका वर्णन आयुर्वेदमें आता है। कामशास्त्र कार भी उसके उन्हीं विशेषोंको बतलाना भूले नहीं है। तो फिर 'मुग्धा' उन नियमोंके अनुसार भला क्यों न चले—?सम्भवतः इसका उत्तर होगा कि उनकी संवेदनाकी बाला ज्ञान यौवना-विस्नब्धा-नवोढा की सीमाओंकी परी है। उपरान्त अभिसारिका के पास जो कपट, कौशल, नैपुण्य और साहसादि गुण होनेकी आवश्यकता होती है—ये मुग्धाके पास अभावसे है। और इसीलिए मुग्धाको अभिसारिका वर्ग के दूर हटाया है। अधिक से अधिक 'प्रेमवाक्याभिसारिका' वर्ग में उसे दिया जा सकेगा। शृङ्गार मञ्जरी' ने लक्षण बतलाया है कि :

इस नायिका की पहुँच नर्मशृङ्गार को लाँघकर जानेकी नहीं है और नायककी भी उतनी ही कामना होती है।

'रसमञ्जरी' में अभिसारिका के कार्यकलापों को वर्णित किया है: कि

'समयाऽनुरूपवेषभूषण शङ्काप्रज्ञानैपुण्यकपटसाहसादय इति परकीयायाः। स्वीयायास्तु प्रकृत एव क्रमः अलक्ष्यतासम्पादकस्य श्वेताधाभरणस्य स्वीयाऽभिसारिकायामसंभवात्।'

स्वीयाका अभिसरण अपवादात्मक होनेसे उसके लिए वह न तो विशेष वस्त्राभरणा धारण करती है, न नजर चुकाती है, कायान में

अनुक्रमणिका





संकोच अपनाती है, निःशंकतासे द्रुत गति अपनाती है। योग्य ही है, उसके अभिसरणमें चोरीका लुक-छुप मामला नहीं है–न पाप है; न वह प्रियको मोहित करना होता है केवळ संतुष्ट करना होता है और वह भी सत्वरातिसत्वर! पराङ्गनाभिसारिकाका वर्णन शारदातनय के द्वारा भाव प्रकाशन (चतुर्थाधिकार) में निम्नानुसार प्रस्तुत किया है:

विलीना स्वेषु गात्रेषु निश्शब्दपदसञ्चरा।
पश्चान्निर्तितपदा शङ्कमाना पदे पदे ॥
प्रभूतवेपथुमती स्वेदोदस्नपिताङ्गका।
शार्दूलदर्शनत्रस्त हरिणीशाववीक्षणा ॥
ज्योत्स्नीतमस्विनीयानयोग्यवेषविभूषिता।
नीलीकुसुम्भमञ्जिष्ठारागैः पट्टोत्तरीयकैः ॥
अवगुण्ठितसर्वाङ्गी शनैर्याति पराङ्गना।

पराङ्ग अभिसारिका अपनी पूरी काया को अधिक अवगुण्ठित करती हैं; हेतु यह कि नित परिचित भी उसे किसी भी परिस्थिति में न पहचाने, क्या पहरावा, क्या चालचलन! वैसे ही गात्रों का सुडौल सौष्ठव और गतिका लालित्य देखकर उसका पीछा भी न करे। आवरण के वस्त्रों में उसे कितनी सतर्कता रखनी पड़ती है! रात्रि के अभिसार के लिए, कृष्ण पक्षमें कला अथवा नीला, और कृष्ण पक्षमें सफेद साडी पहननी होती है और अवगुंठन या दुपट्टा भी उसी ढंग का! इर्द गिर्द के वातावरण के साथ एकतानता पाने का प्रयास किया जाता है वह भी अदृश्यता संपादित करने के लिए! गाथासप्तशती में ध्वान्ताभिसारिका से कविवर (क्र. ४१५) कहता है:

चोरिअरअसद्धालुइ मा पुत्ति भ्भमसु अन्धआरम्मि
अहिअअरं लक्खिज्जसि तमभरिए दीवसीहव्व ॥

अंधियारी रातमें अभिसरण के लिए सज्जित होनेवाली भरी स्त्री, इस तमपट पर अवलम्बित मत रहो। तुम्हारा गोरा बदन अन्धःकारकी पार्श्वभूमिपर अधिक धवल दिखाई देता है; 'मानों दीपक की लौ!

मैं जिस साहस के लिए उद्युक्त हुई उसमें अपावनता है, व्यभिचार खुल पड़ा तो अप्रतिष्ठा की कलीख पोती जायगी, घर-कबिले से हाथ धोना पड़ेगा, ये सारी बातें अभिसारिका को मालूम रहती है। यद्यपि प्रकृति तमका मण्डप तानती है तथापि इसके मनमें पूनम की राका छिटकी हुई होती है। शंकाएं एवं संदेहोंके कारण उसके कदम रास्तेमें कई बार लड़खडाते हैं, बोझसा लगता है, फिर भी सूखे पत्तोंपर भी उसके पगों की आवाज न हो-इस बात की दखल उसे लेनी होती है। सीना सिहरता है, पलकें थर्राती है, दिल धडकता है, वह भी चिन्ता और आसक्ति के कारण! मैं तो हिम्मत करके निकली, यह सही, लेकिन अब तो बचने के लिए कोई चारा नहीं रहा। यह अन्देशा मनमें बार बार चिल्लाता है। रातके

* * *

समय अभिसार के लिए चलना यानी पूर्वतैयारी भी करने की आवश्यकता है। गाथासप्तशती (क्र. २४९) में कवि कहता है:

अज्ज मए गन्तव्वं घणन्धआरे वि तस्स सुभस्स
अज्जा णिमीलिअच्छी पअपरिवाडिं घरे कुणइ ॥

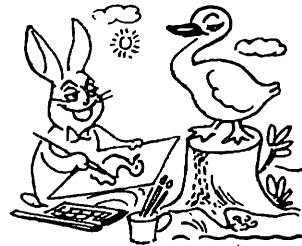
आजकी इस अंधेरी रातमें पिया को मिलने के लिए जाना है इसलिए घर ही घर में आँखें बन्दा कर चलने का अभ्यास आर्या कर रही है।

ये शतपगिया कौतुक की दृष्टिसे भले ही सराहनीय हो परन्तु वास्तविक स्थितिमें उसका किस हदतक उपयोग हो सकेगा? रास्ते पर पत्थर कंकड, गड्ढे-ढाले हैं। कहीं ठेस लगेगी, कहीं पैर फिसलेगा, पता नहीं चलेगा! हर जगह साँप, बिच्छु रेंगते होंगे। उनका लोहा मानूँ तो एक पग भी आगे जाना मयस्सर नहीं। अकेली देखकर जबरदस्ती से अनुचित लाभ उठाने की आदत वाले अनजाने गुण्डे, ऐन मोके पर यकायक मिलने वाले परिचित हितैषि, संदेह के कारण किसी को भी, कभीभी अटकाने के अख्तियारीमन्द अशिष्ट पहरेदार—इन सबों की आहट पाते ही समझने की धूर्तता, उन्हें टालने की चतुरता, उन बन्दियोंको ढहाने के लिए आवश्यक समयोचित नैपुण्य, साहस या कपट के बिना इस साहसमें सफलता किधर? मैं अकेली हूँ, यह देखकर यदि उसने कुछ अनुचित किया तो?

संकेत के अनुसार नायिका उस स्थानपर नियत समय पर गई लेकिन नायक उस दिशा की ओर आया तक नहीं। ऐसे शिकायतों के कई उदाहरण गाथासप्तशती में पाये जाते हैं। अभिसारिका के विलम्बी आगमन के कारण संकेत स्थानपर आराम से सोये हुए नायक के मनका छिपा हेतु प्रकाशित हुआ है। निद्रिस्त को जगाया गया, थला, वह आँखें मलेगा या प्रियको अभिसारेगा?

अनुवादक—**केशव साठे**

● ● ●



बिक्री तथा
घरेलू बगीचों के लिये

कूपर के बीज

सफल प्रमाणित हुए है।

न. कूपर एन्ड कं., 3 क्वीन्स गार्डन, पुना नं. १

